तरुचिंतन

वर्ष 2011

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड)

भारत

कचनार (बिहार)

नेबिल ऑर्किड (सिक्किम)

नागकेसर (त्रिपुरा)

रोडोडेनड्रोन (नागालैंड)

कनिकोना (केरल)

लेडी स्लीपर ऑर्किड (मेघालय)

कमल (कर्नाटक)

लेडी स्लीपर ऑर्किड (अरूणाचल प्रदेश)

जारूल (महाराष्ट्र)

शिरोय लिलि (मणिपुर)

शिपहाली (पश्चिम बंगाल)

कानडल (तमिलनाडु)

कमल (जम्मू और कश्मीर)

फोक्सटेल ऑर्किड (असम)

रोहिरा (राजस्थान)

कमल (उड़ीसा)

गेंदा (गुजरात)

ब्रह्मकमल (उत्तराखण्ड)

लाल वान्दा (मिजोरम)

पलाश (झारखंड)

वाटर लिलि (आंध्र प्रदेश)

पलाश (मध्य प्रदेश)

वह देश कौन–सा है

मन मोहनी प्रकृति की गोद में जो बसा है।
सुख स्वर्ग–सा जहाँ है वह देश कौन–सा है।।

जिसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन–सा है।।

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन–सा है।।

जिसके बड़े रसीले फल कंद नाज मेवे।
सब अंग में सजे हैं वह देश कौन–सा है।।

जिसमें सुगंध वाले सुंदर प्रसून प्यारे।
दिन रात हँस रहे हैं वह देश कौन–सा है।।

मैदान गिरि वनों में हरियालियाँ लहकती।
आनंदमय जहाँ है वह देश कौन–सा है।।

जिसके अनंत धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन–सा है।।

– श्री रामनरेश त्रिपाठी

तरुचिंतन

वर्ष 2011

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

डॉ.वी.के.बहुगुणा, भा.व.से.

महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्

देहरादून

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक

डॉ. रवीन्द्र कुमार, भा.व.से., उप महानिदेशक (विस्तार),भा.वा.अ.शि.प.

सम्पादक

श्री आर.पी. सिंह, भा.व.से., सहा. महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प.

सहायक सम्पादक

श्री रमाकान्त मिश्र, अनुसन्धान अधिकारी (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प.

प्रसंस्करण

श्री डी.एस. रौथाण, फोरमैन (मुद्रण) (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प

आवरण

मुख्य आवरण – केशव मन्दिर, सोमनाथपुरा, कर्नाटक

इनसेट – महर्षि चरक

पृष्ठ आवरण – परिषद में राजभाषा हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला

प्रकाशक

मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग

विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्

डाकघर – न्यू फॉरेस्ट

देहरादून – 248 006 (उत्तराखण्ड), भारत

संरक्षक की कलम से

डॉ. वी. के. बहुगुणा
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

कोई भी देश अपनी एकता, अखण्डता, सांस्कृतिक अस्मिता एवं स्वाभिमान को तभी जीवित रख सकता है जब उसकी अपनी कोई राष्ट्रभाषा हो। हमारे इस गौरवशाली भारतवर्ष में हिन्दी हमारी अस्मिता एवं स्वाभिमान की प्रतीक है। यह हमारी राजभाषा एवं सम्पर्क भाषा ही नहीं अपितु हमारे भारत देश के एकात्मक स्वरूप की संरक्षिका भी है।

राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा संकल्प 1968 तथा राजभाषा नियम 1976 यथा संशोधित 1987 के अनुसार राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार–प्रसार तथा विकास करने के लिए हम सभी आदेशित हैं तथा इस आदेश एवं अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् सदैव ही प्रतिबद्ध है।

राजभाषा हिन्दी के प्रति अपने इसी दायित्व बोध से प्रेरित हो कर भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् द्वारा प्रकाशित वार्षिक पत्रिका "तरूचिंतन" विगत दो वर्षो से परिषद् में राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार में अपना योगदान दे रही है। मुझे आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि यह निरन्तर अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर रहेगी तथा हिन्दी की भागीरथी के अजस्र प्रवाह में सहयोगी होगी।

20.12.11

(डॉ. वी.के.बहुगुणा)

प्रधान संपादक की कलम से

डॉ रवीन्द्र कुमार
उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारत विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषाओं वाला देश है जिसमें अलग – अलग संस्कृति से जुड़े लोगों का रहन–सहन, खान–पान, इत्यादि भिन्न–भिन्न है। इतने विशाल देश के लोगों के मनोभावों को व्यक्त करना तथा उन्हें एक माला के धागे के मनकों की तरह पिरोए रखने के लिए एक ऐसे संप्रेषण माध्यम की आवश्यकता होती है जो सभी को सटीक अभिव्यक्ति दे सके। इस आवश्यकता की पूर्ति हमारी भाषा हिन्दी ने सफलतापूर्वक की है और इसी कारण इसे राजभाषा का गौरवशाली पद प्राप्त हुआ है।

क्योंकि हिन्दी न केवल संघ के सरकारी काम काज की भाषा है वरन् अखिल भारतीय सम्पर्क भाषा भी है इसलिए हिन्दी का प्रचार–प्रसार तथा इसकी गरिमा को बनाए रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। इसी कर्तव्य के सार्थक निर्वहन के लिए परिषद् की वार्षिक पत्रिका "तरूचिंतन" का प्रकाशन किया जाता है ताकि भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् तथा इसके संस्थानों तथा केन्द्रों के पदाधिकारीगण, कर्मचारीगण तथा उसके परिवार के सदस्यगण मनोरंजक एवं ज्ञान वर्धक रचनाएं लिख कर राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार में अपना योगदान दे सकें। मुझे आशा है परिषद् में राजभाषा हिन्दी को सदैव वही प्रेम तथा सम्मान मिलता रहेगा जिसकी वह अधिकारिणी है तथा परिषद् के अधिकारी तथा कर्मचारीगण इस पत्रिका को और अधिक रोचक, मनोरंजक तथा ज्ञानवर्धक बनाने के लिए अपना योगदान देते रहेंगे।

(डॉ रवीन्द्र कुमार)

संपादक की कलम से

श्री राजपाल सिंह
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

संविधान सभा ने 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी भाषा को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता मिलने पर उसके उत्तरदायित्वों में काफी वृद्धि हुई। आज हिन्दी न केवल बोलचाल तथा साहित्यिक भाषा के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वाहन कर रही है बल्कि प्रशासन, विधि, तकनीकी, वाणिज्य, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों में भी आगे बढ़ रही है।

हिन्दी की स्थिति को मजबूत करने लिए सरकार ने राजभाषा अधिनियम 1963 तथा राजभाषा नियम 1976 बनाये तथा राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान को प्रारम्भ किया। राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार तथा विकास में परिषद् की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ही दो वर्ष पहले हिन्दी पत्रिका "तरूचिंतन" का शुभारम्भ किया गया था जिसमें परिषद् के अधिकारियों, कर्मचारियों, एवं उनके परिवार के सदस्यों ने बड़े ही उत्साह के साथ अपना योगदान दिया।

यह वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरूचिंतन" का तृतीय अंक है और मैं आशा करता हूँ, कि गत अंकों की भाँति यह अंक भी आपके लिए मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक होगा तथा परिषद् के सभी अधिकारियों, कर्मियों तथा उनके परिजनों के सहयोग से हम परिषद् में राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार तथा विकास में सहयोगी हो सकेंगे।

20/12/11

(राजपाल सिंह)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखन	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		i
	प्रधान संपादक की कलम से		ii
	संपादक की कलम से		iii
	राजभाषा		
01	भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् में राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन	श्री राजपाल सिंह	1–2
02	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर राजभाषा गतिविधियां वर्ष 2010	श्री एस. आर. शुक्ला	3
03	राजभाषा हिन्दी के प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रमों की प्रगति रिपोर्ट 2010–11	डॉ. एम. एस. नेगी	4–5
04	शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान (आफरी), जोधपुर में आयोजित हिन्दी पखवाड़ा की रिपोर्ट	श्री कैलाश चन्द्र गुप्ता	6
05	वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान में राजभाषा से संबंधित गतिविधियाँ	श्री आलोक यादव	7–8
	वानिकी		
06	अमूल्य वानिकी सम्पदा से परिपूर्णः राजस्थान	डॉ नवीन कुमार बोहरा एवं डॉ. एस. के. शर्मा	11–13
07	सिरोही जिले की अकाष्ठ वन सम्पदा एवं आदिवासी अर्थव्यवस्था में उसकी भूमिका	श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं डॉ. रंजना आर्या	14–15
08	पर्यावरण संरक्षण के परिपेक्ष मे वानिकीः कुछ नये आयाम	डॉ. नवीन कुमार बोहरा एवं डॉ. एस. के. शर्मा	16–20
09	करंज – एक वरदानी पेड़	डॉ. एस. पी. चौकियाल	21–23
10	नीम *(एजाडीरक्टा इंडिका)*	डॉ. के. पी. सिंह	24–25
11	औद्योगिक वृक्ष महुआः पुनरूत्पादन एवं प्रबंधन	डॉ. ममता पुरोहित	26–30
12	लार्वा परिजीव्याभ अपैन्टेलिस स्प0 की हानिकारक कीटों के जैविक नियन्त्रण में भूमिका	डॉ. मौहम्मद यूसुफ एवं कुमारी नीतू वैश्य	31–34
13	परती भूमि सुधार में कृषि वानिकी ही उपयुक्त विकल्प	श्री रामबीर सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे	35–37
14	सीबकथोर्न : उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों की बहुउपयोगी वनस्पति	डॉ. आर. एस. रावत एवं डॉ वनीत जिस्टु	38–40
15	कृषि वानिकी में उपयुक्त औषधीय पौधा : चित्रक *(प्लम्बेगो जेलेनिका)*	डॉ. चरन सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे चौहान	41–42
	विविधा		
16	अंतर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन समझौतों में वानिकी	श्री विजयराज सिंह रावत	45–47
17	मधुमेह के निदान में वनस्पतियों का योगदान	डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी, डॉ. राकेश कुमार एवं श्री विकास	48–52

18	सुगन्धित तेलः स्वाद एवं सुगंध उद्योगों हेतु एक बहुमूल्य प्राकृतिक उत्पाद	डॉ. विनय कुमार वार्ष्णेय	53–56
19	कण्डाली की खेती प्रदेश की आर्थिक उन्नति	श्री एस. आर. बालोच	57–59
20	रेशम उद्योगः शत्रु – रोग एवं उपाय	डॉ. के. पी. सिंह	60–61
21	पर्यावरण एवं प्रदूषण	डॉ. ओमकुमार	62–71
22	बहुउपयोगी, सर्वसुलभ, रोगोपचारक, वनस्पतिः निर्गुण्डी	श्री बाबू लाल शर्मा	72–74
23	प्राकृतिक रंगो का अद्‌भुत संसार	डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी	75–79
24	पादप रसायन विज्ञान के नवीन आयाम एवम् भावी स्वरूप	डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी	80–84
25	ई–बुक्सः नवीनतम प्रवृतियाँ व भविष्य में इनके लक्ष्य	श्रीमती अनुराधा भाटी	85–89
26	वन अनुसन्धान संस्थान द्वारा नव–विकसित तार तकनीक	डॉ. लोकोपूनी एवं श्री एस. आर. बालोच	90–91
27	क्यों आवश्यक है मृदा परीक्षण	डॉ. ममता पुरोहित	92–93
28	सड़क दुर्घटना में वन्य जीवों की मौत–वन्य जीवों की जैवविविधता के लिए एक बड़ा खतरा	श्री संजय पौनीकर एवं श्री नितिन कुलकर्णी	94–95
29	झारखण्ड में समुदाय आधारित प्राकृतिक सम्प्रदा प्रबंधन द्वार जैव विविधता संरक्षणः चुनौतियाँ एवं प्रयास	श्री संतोष कुमार सिंह, डॉ. संजय सिंह एवं श्री रामेश्वर दास	96–103
30	लाख उत्पादन से सामाजिक उत्थान	श्री रामेश्वर दास एवं श्री एस. एन. वैद्य	104–108
31	भारतीय परम्परा में बिल्व	श्री रामेश्वर दास एवं श्री जितेन्द्र नाथ मिश्र	109–111
32	राजाजी राष्ट्रीय उद्यान से गुज्जरों के पुनर्वास का प्रभाव	श्री वी. के. धवन एवं श्रीमती स्नेहलता	112–116
33	हाइमेनोप्टेरा (मधुमक्खियां, बर्र तथा चीटियां) के कुछ रोचक तथ्य	डॉ. सुधीर सिंह	117–120
	लालित्य		
34	मेंहदी	डॉ. रवीन्द्र कुमार	123
35	ठहरा हुआ इन्सान	डॉ. रवीन्द्र कुमार	124
36	पर्यावरण और मानव–मन	श्री सुनील दत्त शर्मा	125–126
37	एक जीवन ऐसा भी	श्रीमती अर्चना जोशी	127–131
38	फौजी	श्री छत्रपाल सैनी	132
39	एक पेड की कहानी	श्रीमती आर.जी अनिता	133
40	बाँस की हरियाली बस्ती	श्री पवन कौशिक	134
41	नारी का स्थान	कुमारी मनिषा. वी. बाचपाय	135
42	आतंकवाद का प्रभाव	श्री निखिलेश. वी.बाचपाय	136
43	चाहते हो भविष्य की सुरक्षा, तो करो पर्यावरण की रक्षा	श्रीमती पूंगोदै कृष्णन	137
44	वृक्ष लगाकर ऋण उतारा	श्रीमती सन्तोष गैरोला	138

45	वृक्षों की मित्रता	श्रीमती सन्तोष गैरोला	139–140
46	जीवन–रस	कुमारी शिप्रा नागर	141
47	हिन्दी– हमारी राष्ट्रभाषा	श्रीमती गीता वोहरा	142
48	हमको आगे बढ़ना है	कुमारी अंजलि दाधीच	143
49	पर्यावरण	श्रीमती आफशाँ ज़ैदी	144
50	जिन्दगी	श्री रमाकान्त मिश्र	145
51	बूंद	श्री रमाकान्त मिश्र	146

नजर नवाज नजारा बदल न जाए कहीं,
जरा सी बात है मुँह से निकल न जाए कहीं।
वो देखते हैं तो लगता है नींव हिलती है,
मेरे बयान को बंदिश निगल न जाए कहीं।
यों मुझको खुद पे बहुत ऐतबार है लेकिन,
ये बर्फ आँच के आगे पिघल न जाए कहीं।
कभी मचान पे चढ़ने की आरजू उभरी,
कभी ये डर कि ये सीढ़ी फिसल न जाए कहीं।
ये लोग होमो हवन में यकीन रखते हैं,
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं।

– दुष्यन्त कुमार

राजभाषा

हर थकन का फरेब है मंजिल
चलने वालों को रास्ता ही मिला

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् में राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन

श्री राजपाल सिंह
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार में निरंतर प्रयत्नशील है। परिषद् में राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार और हिन्दी के कार्य को सुगम बनाने के उद्देश्य से परिषद् तथा उसके अधीनस्थ संस्थानों को हिन्दी साफ्टवेयर 'सारांश' उपलब्ध कराया गया और उसको सभी संगणकों में अपलोड भी कराया गया। इसके पश्चात परिषद् तथा उसके संस्थानों से इस साफ्टवेयर पर कार्य करने में आ रही कठिनाइयों पर प्रतिपुष्टि प्राप्त की गई। हिन्दी साफ्टवेयर 'सारांश' पर कार्य करने में आ रही कठिनाईयों के निराकरण के उद्देश्य से दिनांक 23 नवम्बर 2010 को परिषद् और उसके संस्थानों में सारांश सॉफ्टवेयर पर काम कर रहे अधिकारियों/कर्मचारियों हेतु सारांश साफ्टवेयर प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण कार्यशाला में प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु सर्वश्री आर्यन–ई साफ्ट प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली से दो अभियंता आमंत्रित किए गए और उन्होंने इस सॉफ्टवेयर के बारे में जानकारी दी तथा प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं का निराकरण भी किया।

हिन्दी सॉफ्टवेयर 'सारांश' प्रशिक्षण कार्यशाला में प्रशिक्षण प्राप्त करते प्रशिक्षणार्थी

परिषद् में हिन्दी के प्रचार–प्रसार के प्रयासों के अंतर्गत दिनांक 13 से 17 सितम्बर 2010 तक हिन्दी सप्ताह मनाया गया। इस दौरान विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। हिन्दी सप्ताह समारोह के अंतर्गत विभिन्न प्रतियोगिता जिनमें 'जैवविविधता एवं वानिकी' विषय पर निबंध प्रतियोगिता, टिप्पण प्रतियोगिता एवं स्वरचित काव्यपाठ सम्मिलित हैं, आयोजित की गई। प्रतियोगिताओं में परिषद् कर्मियों ने अत्यंत उत्साह के साथ भाग लिया और इस प्रकार राजभाषा के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दिया।

सप्ताह भर चले इस आयोजन का समापन स्वरचित काव्यपाठ के साथ हुआ। सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून द्वारा पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र प्रदान किए गए। इस सप्ताह के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं के सभी प्रतिभागियों को भी प्रमाण पत्र प्रदान किए गए।

राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबन्धित तिमाही प्रगति प्रतिवेदन को भरने में आ रही कठिनाइयों के निराकरण के उद्देश्य से दिनांक 27 जनवरी 2011 को राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबन्धित तिमाही प्रगति प्रतिवेदन प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण में परिषद् मुख्यालय एवं वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया। इस प्रशिक्षण में डॉ. एम. आर. सकलानी, सहायक निदेशक (राजभाषा) एवं सचिव नराकास, कार्यालय मुख्य आयकर आयुक्त, देहरादून ने प्रशिक्षक और मार्गदर्शक के रूप में भाग लिया। उन्होने राजभाषा नियम तथा अधिनियम के बारे में सहभागियों को परिचित कराया तथा राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबन्धित तिमाही प्रगति प्रतिवेदन को भरने में आ रही समस्याओं का समाधान भी बताया।

राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में आ रही कठिनाइयों का निराकरण करने हेतु दिनांक 27 अप्रैल 2011 को एक हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण कार्यशाला में श्री सुरेश प्रसाद चौबे, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली तथा डॉ. एम. आर. सकलानी, सहायक निदेशक (राजभाषा) एवं सदस्य सचिव, नराकास, देहरादून मुख्य प्रशिक्षक थे। कार्यशाला का शुभारम्भ श्री सुरेश प्रसाद चौबे जी एवं डॉ एम. आर. सकलानी जी द्वारा दीप प्रज्जवलित

करके किया गया। डॉ. रवीन्द्र कुमार, उप महानिदेशक (विस्तार) ने प्रशिक्षकों एवं प्रशिक्षणार्थियों का स्वागत किया। तदुपरांत श्री आर. पी. सिंह, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन) ने परिषद् द्वारा गतवर्ष 2010 में हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए किये गये कार्यों का प्रस्तुतिकरण दिया। उन्होने बतलाया कि परिषद् 'वानिकी समाचार' के नाम से अर्द्धवार्षिक हिन्दी 'न्यूज लैटर' का प्रकाशन करती है तथा 'तरूचिंतन' नामक हिन्दी पत्रिका का भी प्रकाशन करती है।

श्री सु.प्र. चौबे, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार कार्यशाला को संबोधित करते हुए

सत्र को संबोधित करते हुए श्री सुरेश प्रसाद चौबे जी ने कहा कि हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। उन्होने सभी को अपने–अपने स्तर पर हिन्दी के प्रचार प्रसार में सार्थक सहयोग देने का आह्वान किया।

प्रथम सत्र में डॉ. एम. आर. सकलानी ने राजभाषा हिन्दी के नियम तथा अधिनियम पर बोलते हुए इसके सुगम कार्यान्वयन से परिचित करवाया। अनुवाद के बारे में बोलते हुए उन्होने कहा कि कार्यालयीन अनुवाद की प्रकृति 'सेन्स टू सेन्स' होनी चाहिए। अनुवाद अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। उन्होने पत्रों के प्रकार पर विस्तार से चर्चा की।

द्वितीय सत्र में श्री सुरेश प्रसाद चौबे जी ने हिन्दी के उद्भव और विकास पर चर्चा करते हुए हिन्दी को 'इंडिया' का पर्यायवाची सिद्ध किया। उन्होने बताया कि हिन्दी एक आधुनिक भारतीय भाषा है और यह किसी क्षेत्र विशेष या व्यक्ति समूह विशेष की भाषा नहीं है। उन्होने हिन्दी के राजभाषा के रूप में विकास पर भी विस्तार से चर्चा की।

इसी सत्र में परिषद् में गतवर्ष के हिन्दी कार्यान्वयन की प्रगति पर प्रस्तुतिकरण दिया गया तथा इसमे आ रही समस्याओं को प्रस्तुत किया गया, जिस पर विस्तार से चर्चा हुई। इस कार्यशाला में परिषद् तथा वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के लगभग 300 अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने भाग लिया।

परिषद्, मुख्यालय एवं देश के विभिन्न प्रांतों में स्थित अपने संस्थानों में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग का सतत मूल्यांकन करती है एवं उनको इस दिशा में समुचित मार्गदर्शन प्रदान करती है। विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, कार्यशालाएं, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की नियमित बैठकों का आयोजन, नराकास, देहरादून में भागीदारी तथा समय–समय पर मुख्यालय एवं संस्थानों में राजभाषा निरीक्षण आदि के माध्यम से परिषद् राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

हिन्दी प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपस्थित परिषद् तथा व.अ.सं., देहरादून के अधिकारी/कर्मचारी

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर राजभाषा गतिविधियां वर्ष 2010

श्री एस. आर. शुक्ला
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर

वर्ष 2010 के दौरान काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान (का.वि.प्रौ.सं.), बैंगलोर में श्री एस. सी. जोशी, भा.व.से., निदेशक की अध्यक्षता में भारत सरकार की मार्गदर्शी रूपरेखा के अनुरूप बड़े हर्षोल्लास के साथ 'हिन्दी पखवाड़ा' एवं 'हिन्दी दिवस' समारोह मनाया गया। हिन्दी दिवस समारोह में मुख्य अतिथि डॉ. आर. पी. शर्मा, भा.पु.से., पुलिस महानिरीक्षक (योजना एवं आधुनिकीकरण), बैंगलोर थे। इस अवसर पर मुख्य अतिथि महोदय ने संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में किये जा रहे प्रयासों की सराहना की तथा इसे संस्थान के हित में बरकरार रखने का सुझाव दिया। समारोह के अध्यक्ष एवं संस्थान के निदेशक ने मुख्य अतिथि महोदय के सुझाव पर हर संभव अमल जारी रखने के लिए समारोह में उपस्थित सभी पदाधिकारियों से आग्रह किया। हिन्दी दिवस समारोह के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं हिन्दी गीतों का आयोजन किया गया जिसमें सभी कर्मचाारियों ने उत्साहपूर्वक बढ़चढ़ कर भाग लिया। समारोह को सफल बनाने के लिए सभी के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सक्रिय सहयोग के लिए आभार प्रकट करते हुए समापन किया गया।

समारोह को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि
डॉ आर.पी.शर्मा, भा.पु.सें. पुलिस महानिरीक्षक, बैंगलोर

इंद्र का आयुद्ध पुरूष जो झेल सकता है,
सिंह से बाँहे मिला कर खेल सकता है,
पुष्प के आगे वहीं असहाय हो जाता,
शस्त्र के रहते हुए निरूपाय हो जाता।

राजभाषा हिन्दी के प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रमों की प्रगति रिपोर्ट 2010–11

डॉ एम. एस. नेगी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए की जा रही गतिविधियाँ एवं वार्षिक कार्यक्रमः

हिन्दी पखवाड़े तथा हिन्दी दिवस का आयोजन :

राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा जारी दिशा निर्देशों की अनुपालना में उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 01 सितम्बर से 14 सितम्बर 2010 के दौरान "हिन्दी पखवाड़ा" मनाया गया जिसमें हिन्दी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विभिन्न प्रतियोगिताओं, हिन्दी प्रश्न–मंच प्रतियोगिता, प्रशासनिक हिन्दी भाषा ज्ञान प्रतियोगिता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता, हिन्दी टंकण प्रतियोगिता, हिन्दी भाषण प्रतियोगिता, हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता, हिन्दी व्यवहार

डॉ. एम. एस. नेगी (निदेशक), उ.व.अ.सं. जबलपुर तथा अन्य अधिकारी हिन्दी पखवाड़े के शुभारंभ के अवसर पर

प्रतियोगिता, हिन्दी में तकनीकी लेखन प्रतियोगिता तथा हिन्दी कविता–पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया तथा विजयी प्रतियोगियों को प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया गया। इसी दौरान संस्थान के निदेशक, डॉ. एम.एस. नेगी द्वारा एक अपील भी जारी की गयी जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों तथा कर्मचारियों से स्वेच्छा तथा दृढ़ संकल्प के साथ सरकारी काम–काज एवं वैज्ञानिक शोध कार्यों तथा तकनीकी क्षेत्रों में भी हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करने को कहा गया।

हिन्दी दिवस के अवसर पर 14 सितम्बर 2010 को "हिन्दी पखवाड़ा" का समापन काव्य – पाठ प्रतियोगिता तथा पुरस्कार वितरण के साथ हुआ। इस अवसर पर संस्थान के हिन्दी अधिकारी डॉ. मोहम्मद यूसुफ़ ने संस्थान में हिन्दी की प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए

डॉ. के.सी. जोशी, डॉ. व्ही नाथ तथा डॉ. एस.ए. अनसारी (बाएं से दाए) हिन्दी दिवस के अवसर पर

बताया कि राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को हासिल करने का कार्य तथा राज भाषा हिन्दी से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों को संस्थान में समयबद्ध एवं सुचारु रुप से चलाया जा रहा है।

राज भाषा विभाग की हिन्दी में कार्य करने हेतु प्रोत्साहन योजनाः

संस्थान में राजभाषा विभाग की हिन्दी में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए नकद पुरस्कार योजना भी लागू की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत प्रतिवर्ष हिन्दी में किए गए कार्यों के लिए 10 कर्मचारियों को नकद राशि के पुरस्कार दिए जाते हैं। वर्ष 2009–10 के दौरान हिन्दी में किये गये कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर 10 कर्मचारियों को नकद राशि के राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किये गये।

हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन :

संस्थान में नियमित रुप से प्रत्येक तिमाही में एक कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है। वर्ष 2010–11 में श्रृंखलाबद्ध क्रम में चार कार्यशालओं का आयोजन किया गया। इन कार्यशालाओं के सभी प्रतिभागी शोध कार्यों से जुड़े कर्मचारी रहे। अतः उन्हें कार्यशालाओं के दौरान अपने शोध तथा वनों से सम्बन्धित अनुभवों के आधार पर अपने विचारों को हिन्दी में लिखकर प्रथम मसौदा तैयार करने तथा इस मसौदे में भाषा के शुद्धिकरण के बारे में जानकारी दी गयी इसके उपरान्त मसौदे में पुस्तकों, लेखों तथा इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी के आधार पर तकनीकी शुद्धिकरण करने पर विस्तृत जानकारी दी गयी तथा उसे 'सारांश सॉफ्टवेयर' की सहायता से टंकित करने का अभ्यास भी कराया गया। कार्यशाला के द्वितीय चरण में हिन्दी के लेख की पावर प्वाइंट प्रस्तुति बनाने तथा टंकित मसौदे को फाइल बनाकर ई–मेल करने की प्रक्रिया की जानकारी भी दी गयी।

श्रृंखलाबद्ध चलायी जाने वाली "हिन्दी में विचारों की अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुतिकरण" पर कार्यशालायें, राज भाषा विभाग के दिशा–निर्देशों की अनुपालना में, हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सफल आयोजन सिद्ध हुआ तथा शोध से जुड़े कर्मचारियों को अपने अनुभवों को हिन्दी में व्यक्त करने तथा हिन्दी में लेख लिखने, उसे हिन्दी में टंकित करने में सफलता प्राप्त हुई है।

जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा है
तूफ़ानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है
जिसने सोने को खोदा लोहा मोड़ा है
जो रवि के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा
जो जीवन की आग जला कर आग बना है
फौलादी पंजे फैलाए नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा शासन मोड़ा है
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा

– केदारनाथ अग्रवाल

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान (आफरी), जोधपुर में आयोजित 'हिंदी पखवाड़ा' की रिपोर्ट

श्री कैलाश चन्द गुप्ता
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान(आफरी), जोधपुर में "हिंदी दिवस" पर हिंदी पखवाड़ा (14 से 28 सितम्बर, 2010) की शुरूआत हिंदी में जनोपयोगी विज्ञान प्रश्नोत्तरी से हुई। इस अवसर पर संस्थान निदेशक डॉ. टी.एस. राठौड़ ने "अपील" जारी कर कहा कि हमें हिंदी भाषा को जानकारी का वाहक बनाने की जरूरत है जो सही सम्प्रेषण पर निर्भर है। आपने 'हिंदी में सब कुछ चलता है' की मनोवृत्ति से परे रहकर भाषा की मौलिक एवं प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हिंदी की समृद्धि की बात कही। हिंदी पखवाड़ा के दौरान विविध जानकारी हिंदी प्रश्नोत्तरी, कामकाजी हिंदी ज्ञान, हिंदी नारा, टंकण एवं शुद्धीकरण, हिंदी में कार्यालयीन कामकाज की परख तथा हिंदी में वैज्ञानिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आयोजित हुई। हिंदी पखवाड़ा के दौरान दिनांक 27 सितम्बर, 2010 को संस्थान की विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक भी आयोजित हुई। हिंदी पखवाडा का समापन समारोह काव्यपाठ के साथ दिनांक 28 सितम्बर, 2010 को पूर्वकालिक निदेशक, काजरी, जोधपुर के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ।

हिंदी पखवाड़ा का समापन समारोह
(28 सितम्बर, 2011)

संस्थान के हिंदी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने इस अवसर पर संस्थान की राजभाषा प्रगति का प्रतिवेदन पढ़ा तथा राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु उठाये जा रहे कदमों का जिक्र किया तथा मूल रूप से हिंदी में लिखने का आह्वान करते हुए अनुवाद पर निर्भरता कम करने को कहा साथ ही कहा कि हमें लक्ष्य के अनुरूप भाषा के स्तर को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। संस्थान निदेशक, डॉ. टी.एस. राठौड़ ने सरल हिंदी भाषा के माध्यम से संस्थान के अनुसन्धान निष्कर्षों को जरूरतमंदों तक पहुंचाने का आह्वान किया। आपने संस्थान में हो रही भाषायी गतिविधियों में सभी के सहयोग को सराहते हुए वैज्ञानिक कार्यो को जनसाधारण की भाषा में सम्प्रेषित करने की अपेक्षा की। मुख्य अतिथि डॉ. अमर सिंह फरोदा ने कहा कि संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत राजभाषा निर्देशों का अनुपालन किया जाना अनिवार्य है। भाषाएँ जितनी भी व्यक्ति जानता है अच्छी बात है परन्तु मातृभाषा उनमें अपना अलग ही स्थान रखती है। संस्थान के समूह समन्वयक (शोध), श्री अशोक कुमार ने अपने सम्बोधन में कहा कि अनुसंधान कार्यो में हिंदी को मिलीजुली भाषा के रूप में अपनाया जाना सुविधाजनक है। आपने वैज्ञानिकों का आह्वान करते हुए कहा कि उन्हें उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से अपने कार्यों में हिंदी को प्राथमिकता देते हुए बदलाव लाने की आवश्यकता है जिससे कि हमारी बौद्धिक चेतना से उपजी कार्यप्रणाली से जनसाधारण रू–ब–रू हो सके। डॉ. एस.आई. अहमद, वरिष्ठ वैज्ञानिक ने हिंदी के क्षेत्र में सभी को अपनी भागीदारी देने का आह्वान किया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार तथा हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार तथा प्रमाण पत्र प्रदान कर सम्मानित किया।

संस्थान के हिंदी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने आभार व्यक्त किया।

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान में राजभाषा से संबंधित गतिविधियाँ

श्री आलोक यादव
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

हिन्दी सप्ताह

हिन्दी दिवस के शुभ अवसर पर वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान ने दिनांक 8 से 14 सितंबर तक "हिन्दी सप्ताह" का आयोजन किया। इसका शुभारंभ संस्थान के निदेशक, श्री एन. के. वासु के करकमलों से दीप प्रज्जवलन कर किया गया। इसके बाद संस्थान के वैज्ञानिक श्री पवन कुमार कौशिक ने सप्ताह भर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों तथा प्रतियोगिताओं के बारे में सबको अवगत कराया। संस्थान में वर्ष भर की राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियों के बारे में संक्षिप्त रूप से प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए, कार्यकारी हिन्दी अधिकारी श्री आलोक यादव ने संस्थान में प्रगति एवं

हिन्दी दिवस समारोह में उपस्थित संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारीगण

उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत किया। माननीय निदेशक महोदय ने अपने औपचारिक उद्घाटन भाषण में समस्त अधिकारियों तथा कर्मचारियों को प्रेरित करते हुए सभी कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया। उन्होंने संस्थान में हो रही राजभाषा हिन्दी की गतिविधियों पर सन्तोष व्यक्त करते हुए इसे और आगे बढ़ाने के लिए सबको प्रेरित किया। उद्घाटन समारोह के दिन अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच निबंध लेखन प्रतियोगिता रखी गयी। इसी तरह सप्ताह भर विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। कर्मचारियों में हिन्दी के उपयोग को बढ़ाने हेतु टिप्पण लेखन पर एक कार्यशाला का आयोजन दिनांक 13 सितंबर को रखा गया। इसके उपरांत संस्थान ने 14 सितंबर को हिन्दी दिवस

पुरस्कार वितरण करते हुए समूह समन्वयक (अनुसंधान) श्रीमती एम्तिएन्ला आओ

समारोह का आयोजन किया। उद्घाटन समारोह में संस्थान की समूह समन्वयक (अनुसन्धान) श्रीमती एम्तिएन्ला आओ ने सभा को संबोधित किया। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में मनुष्य के जीवन में भाषा की अपरिहार्यता का उल्लेख करते हुए विभिन्नता से भरे भारत के विभिन्न प्रान्त में लोगों के बीच मेल–जोल बढ़ाने के लिए हिन्दी को एक सक्षम माध्यम बताया। संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. राजीब कुमार बोरा ने आयोजित प्रतियोगिताओं के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए माननीय केन्द्रीय गृह मंत्री, श्री पी. चिदम्बरम द्वारा हिन्दी दिवस पर निर्गमित सन्देश को सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया। इसके पश्चात पुरस्कार वितरण अनुष्ठान आरंभ किया गया जिसमें सप्ताह के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कार तथा प्रमाण पत्र द्वारा सम्मानित किया गया एवं अन्य सभी प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र प्रदान किये गये। संस्थान की तरफ से इस बार हिन्दी में निष्ठापूर्वक कार्य करने के लिए स्थापना अनुभाग के अवर श्रेणी लिपिक श्री सुरेन्द्र नाथ राहांग को विशेष रूप से सम्मानित किया गया। पुरस्कार वितरण के बाद संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक श्री पवन कुमार कौशिक ने सबके प्रति आभार प्रकट करते हुए इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को इसका श्रेय प्रदान करते हुए प्रोत्साहन दिया। अंत में कार्यकारी हिन्दी

अधिकारी श्री आलोक यादव के धन्यवाद ज्ञापन द्वारा हिन्दी दिवस समारोह का समापन हुआ।

हिन्दी कार्यशाला

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट में दिनांक 29 नवम्बर 2010 के अपराह्न 2.30 बजे "कार्यालय में राजभाषा के प्रयोग संबंधी व्यावहारिक समस्याएं व समाधान" विषय पर एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक श्री एन. के. वासु जी ने की। कार्यशाला में संस्थान की समूह

श्री पाण्डेय ए. के. अरुण,
प्रबंधक (राजभाषा), युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, जोरहाट

समन्वयक (अनुसंधान) श्रीमती एम्तिएन्ला आओ, युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, जोरहाट के प्रबंधक (राजभाषा), पाण्डेय ए. के. अरुण जी, संस्थान के सभी वैज्ञानिक, अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित थे। कार्यशाला का शुभारंभ अतिथि वक्ता के सम्भाषण एवं संक्षिप्त परिचय से किया गया। संस्थान के कार्यकारी हिन्दी अधिकारी श्री आलोक यादव ने अतिथि वक्ता का स्वागत किया। इसके बाद झूम खेती प्रभाग के प्रभागाध्यक्ष श्री पवन कुमार कौशिक ने कार्यशाला का उद्देश्य एवं प्रारुप पर संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की। अतिथि वक्ता श्री पाण्डेय ए. के. अरुण जी ने अपने व्याख्यान के दौरान कार्यालय में हिन्दी में काम करने में आ रही समस्याओं के बारे में विस्तृत रुप से चर्चा की तथा इसके समाधान के उपाय भी सुझाए। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि अनुसन्धान लेखों को छोड़ सामान्य प्रशासनिक कार्यों में औसतन 25 से कम शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यदि प्रत्येक कर्मचारी प्रतिदिन कम से कम दो शब्दों का प्रयोग करना सीख ले तो उसका आवश्यक शब्दभंडार माह भर में ही पूरा हो सकेगा और अतिशीघ्र हिन्दी में काम करने में आसानी होगी। हिन्दी में काम करना कठिन होता है और अंग्रेजी में आसान– यह बात भ्रामक बताते हुए पाण्डेयजी कहते हैं कि प्रयास शुरू करते ही हिन्दी में काम करना आसान हो जाता है। कार्यालय में सामान्यतः प्रचलन में हिन्दी का शब्दभंडार सीमित है। उन्होंने हिन्दी के प्रयोग में लिंग निर्णय की समस्या के समाधान को बहुत ही सरल एवं व्यावहारिक ढंग से समझाया तथा प्रतिभागियों के विभिन्न प्रश्नों का निराकरण भी किया।

कार्यशाला के दौरान उपस्थित
संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी

व्याख्यान के उपरान्त अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में श्री पाण्डेय जी को धन्यवाद देते हुए राजभाषा हिन्दी के प्रति कानूनी एवं संवैधानिक दायित्व के बारे में सबको अवगत कराया। उन्होंने संस्थान में हो रही हिन्दी की गतिविधियों पर सन्तोष व्यक्त करते हुए सबकी सराहना की। अंत में जैव सर्वेक्षण एवं स्वदेशी ज्ञान प्रभाग के प्रभागाध्यक्ष श्री राजीब कुमार कलिता के धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यशाला का समापन हुआ।

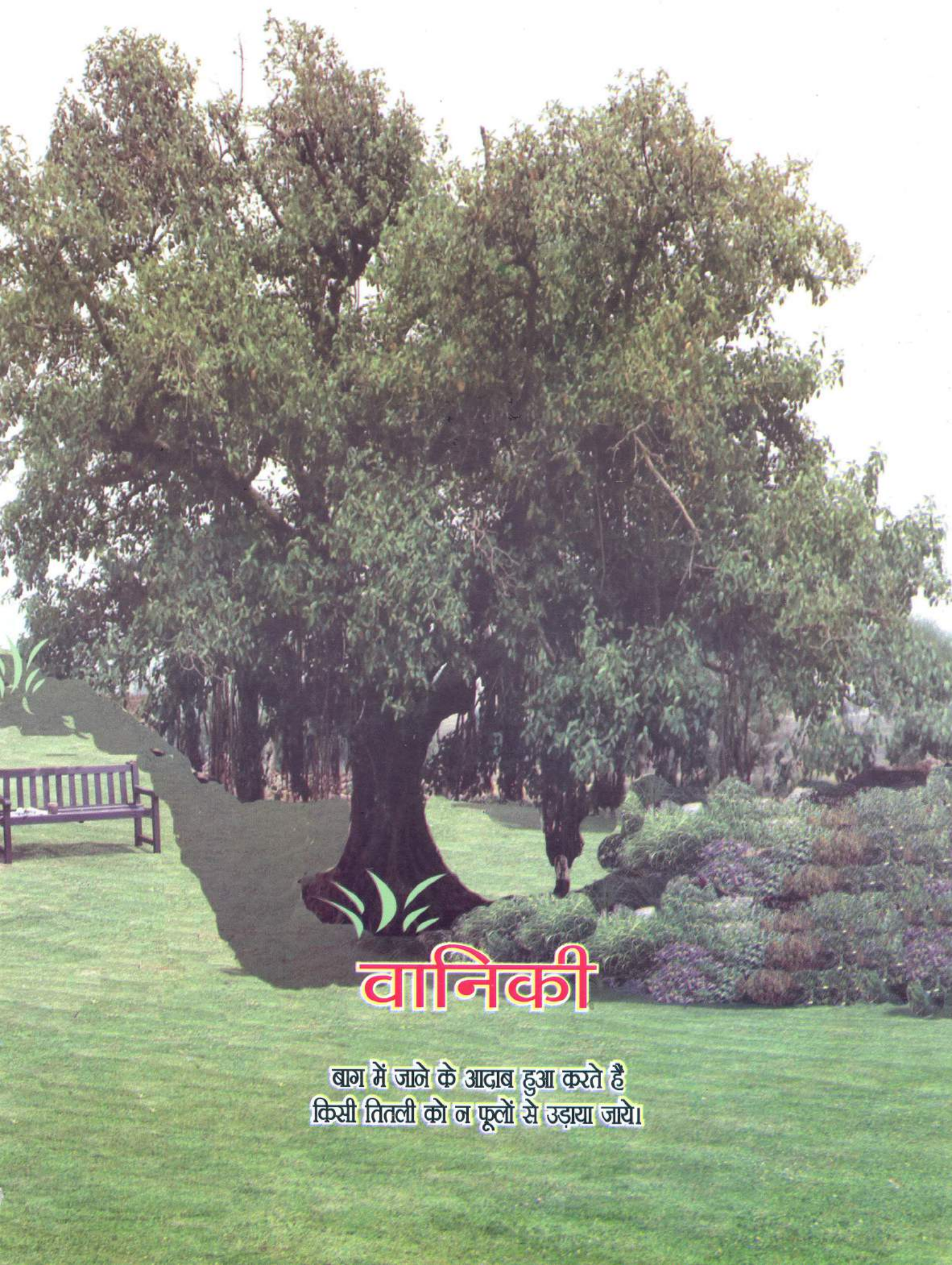

वानिकी

बाग में जाने के आदाब हुआ करते है
किसी तितली को न फूलों से उड़ाया जाये।

अमूल्य वानिकी सम्पदा से परिपूर्ण : राजस्थान

डॉ. एन. के. बोहरा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर
एवं
डॉ. एस. के. शर्मा
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

राजस्थान भारत के पश्चिमी भू भाग पर स्थित एक सबसे बड़ा राज्य है। राजस्थान की धरती पर सदियों से त्रिकाल (खाने पीने एवं चारे की कमी) का प्रकोप रहा है। यहां पर बहुत ही कम एंव अनियमित वर्षा केवल मानसून में धूल भरी आंधियाँ, तेज गर्मी, चलायमान रेतीले टिब्बे क्षेत्र की परिस्थितियों को वीभत्स बना देते है। इन विकट परिस्थितियों के बावजूद यहां के निवासियों ने वनों के संरक्षण हेतु अथक प्रयास किया है। यहां के खेजड़ली गांव में धार्मिक एवं पारम्परिक वृक्ष खेजड़ी की रक्षा हेतु किया गया सैकडों लोगों का बलिदान एक अनूठा उदाहरण पेश करता है जो विश्व भर में अन्यत्र नहीं मिलता है।

आजादी के पश्चात वनों एवं वन प्राणियों का तेजी से ह्रास हुआ है। भारत में वन सेवा के निर्माता और पहले वन इंस्पेक्टर जनरल सर वी. ब्राड्रिस की नियुक्ति के साथ ही 1864 में वैज्ञानिक वानिकी की नींव रखी गयी। भारत के पश्चिमी भागों में विशेषकर राजस्थान में वातावरणीय परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के कारण वानिकी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई है तथा यहां आज भी वनों का क्षेत्रफल न्यूनतम निर्धारित वनों के क्षेत्रफल से कम है। राजस्थान में जहां खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) से सांगरी खोखा आदि खाद्य पदार्थ मिलते है वहीं कूमट (अकेसिया सेनेगल) या अन्य को मिलाकर पचकूटा की विशिष्ट एवं प्रोटीन युक्त सब्जी बनाई जाती है। यहां के स्थानीय वृक्षों को संरक्षित रखने में इस क्षेत्र के लोगों ने बहुत रुचि दिखाई है जिस से विपरीत परिस्थितियों में भी वानिकी के स्रोत का संरक्षण सम्भव हो पाया है। इस वानिकी स्रोत के द्वारा रेशा, तेल, टेनिन, डाई गेंद, रेजिन एवं खाने योग्य पदार्थ प्राप्त होते है।

रेशे देने वाले पादप :–

रेशों से कई उपयोगी सामान बनाये जाते है। ये रेशे छाल या पत्तियों से प्राप्त हो सकते हैं। *स्टरकुलिया उरेन्स* (करैया) *हैलिक्टेरेस आइसोरा* (मरोरफली), *यूजीनिया उजेन्सिस* (सनडेन), *अकेशिया ल्यूकोफीलिया* (तमिल बबूल), *बोहिनिया रेसीमोसा* (जींजा), *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (पलास ढ़ाक), *केलोट्रोपिस प्रोसेरा* (आक), *फाइकस रीलीजिओसा* (पीपल), *फाइकस बैगालेन्सिस* (बरगद), *कोर्डिया ओबलिकुआ* (गूंदा), *कोर्डिया रोथिल* (गूंदी), *लेनिया कोरोमेन्डलिका* (पौदल), *काइडिया केलिसीना* (पूला), *इरीथ्रीना सुबेरोसा* (गढ़ा पलास), *कोटोलेरिया बुरिया* (सीनिया), *लेप्टाडीनिया पाइरोटेक्निका* (खीफ), आदि पौधें की छाल से रेशे प्राप्त होते है जबकि *पेन्डेनस टेकटोरियस* (केवड़ा), *टाइफा ऐलिफेनटाइना* (सीरा पटेरा), *ऐगैव अमेरिकाना* (रामबाँस), *फोनिक्स सिलवेस्टेरिस* (खजूर) तथा *बोरासस फलैवैलीफर* (टाड) आदि पौधों की पत्तियों से रेशा प्राप्त हो सकता है कुछ अन्य पौधों यथा *बोम्बेकस सीबा* (सेमल या इंडियान कपोक), *केलोट्रोपिस प्रोसेरा* (आक), *मोलारीना ऐन्टीडाइसेन्टीरिका* (इन्द्राज) तथा *कोलीस्परमम किरलिजियोसम* (गेनियारा) आदि से रेशम के समान धागा प्राप्त किया जा सकता है।

1. तेल :–

तेल मानव के लिए कई रुपों में उपयोगी है। कई वानिकी पादप स्रोत के बीजों से तेल निकाला जाता है। *मधुका इंडिका* (महुआ), *पौगामिया पिनाटा* (कंरज), *अजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम), *जेट्रोफा करकस* (रतनजोत या जमालगोटा), *साल्वेडोरा ओलिओइडिस* (पीलू), *साल्वेडोरा परसिका* (खारा जाल), *बेलेनाइटस एजेप्टीका* (हिंगोटा), *सेपिन्डस इमरजीनेटस* (अरीठा) आदि के बीजों से तेल निकाला जा सकता है।

2. टेनिन एवं डाई :–

औद्योगिक उत्पाद एवं अन्य कार्यों में टेनिन एवं डाई का प्रयोग होता है। ये टेनिन एवं डाई विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हो सकते हैं। *अकेसिया निलोटिका* (बबूल), *केसिया फिस्टूला* (अमलतास), *टर्मिलेनिया अर्जुना* (अर्जून), *टेमोरिक्स एफाइला* (फराश), आदि की छाल से टेनिन प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार *ऐम्बलिका आफिसिनेलिस* (आंवला), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेड़ा), *अकेसिया निलोटिका* (बबूल), *जिजिफस ग्लेबीरिया* (गटथोर) आदि के फलों से टेनिन प्राप्त हो सकता है। कुछ पौधों यथा *ऐनोगेसिस लेटीफोलिया* (धावडा), *केरिसा स्पीनेरम* (करोंदा), *लासोनिया इनरमिस* (मेंहदी), *एनोगेसिस पेनडुला* (धोकड़ा), तथा *प्रोसोपिस सिनरेरिया* (खेजड़ी), *टेमेरिक्स एफाइला* (फराश) की पत्तियों की गांठ से भी टेनिन प्राप्त हो सकता है।

डाई के वानिकी स्रोत भी राजस्थान में बहुतायत में है। *अकेसिया कटैचू* (खैर) की लकड़ी से, *टर्मिनेलिया ऐलेटा* (सदरु), *माइमोसूप्स ऐलिनगाई* (मोलसिरी), *लेनिया कोरोमडलिका* (गोडल) आदि की छाल से, *मैलोटस फिलिपिनेनसिस* (कमैला) के पुष्पों से तथा *मोरिडा टिनकटोरिया* (आल), *पुनिका ग्रेनेटम* (अनार) की जड़ों से भी डाई प्राप्त की जा सकती है।

3. गोंद :–

औद्योगिक रुप में गोंद एवं रेसिन महत्वपूर्ण पदार्थ हैं। राजस्थान में पाये जाने वाले अनेक पादपों से गम एवं रेसिन प्राप्त हो सकते हैं। इन पादपों से प्राप्त गम (गौंद) विभिन्न नामों से व्यापारिक महत्व के हैं। *अकेसिया निलोटिका* (बबूल) से गम बबूल, *अकेसिया सेनेगल* (कूमट) ये गम अरेबिक, *अकेसिया जैकोमोंटाई* (बाओनली) से गम बाओनवाल, *अकेसिया कटैचू* (खैर) से गम खैर, *ऐनागेसिस लेटिफोलिया* (धावड़ा) से गम धोकड़ा, *बोसविलिया सिरेटा* (सलार) से गम साई, *बोम्बैक्स सीबा* (सेमल) से बम सेमल, *बुचैनिया लेटिफोलिया* (चिंरोजी) से गम अचार, *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (पलाश) से गम कीनो बंगाल, *कोलोस्पर्मम रिलिजिओसम* (गेनिआरा) से गम ट्रेगाकेन्थ, *कोमिफोरा विगटाई* (गूगल) से गम गूगल, *मोंरिंगा ओलिफेरा* (सेजना) से गम मौरिंगा, *मैगिफेरा इंडिका* (आम) से गम मैंगो, *टेरोकार्पस मारसूपियम* (बीजासल) से गम कीनो, *स्टरकूलिया यूरेन्स* (कटीरा) से गम कटीरा एवं कई अन्य पादपों से भिन्न–भिन्न प्रकार के गोंद प्राप्त हो सकते हैं।

4. औषधीय पादप :–

राजस्थान औषधीय पादपों की खान है। यहां पर सैकड़ों औषधीय पादप उपलब्ध हैं तथा इनका स्थानीय लोग देशी इलाज के रुप में सदियों से उपयोग कर रहे हैं। ये औषधीय पादप विभिन्न पादप भागों से प्राप्त होते हैं। *ऐसपेरेगस रेसीमोसस* (सतावरी), *क्लोरोफाइटम बोरिविलिएनम* (सफेद मूसली), *क्लोरोफाइटम प्रजाति* (काली मूसली), *बोरहविया डियूजा* (पुर्ननवा), *हेमीडेसमस इंडिकस* (अनंतमूल), *साइका कोरडीफोलिया* (बेला), *कुरकुमा ऐरोमेटिका* (वन हल्दी), *ड्रोक्सीलोन इंडिकम* (सायोनाका), *बेलेनाइटेस ऐजिप्टिका* (हिंगोटा), *विथैनिया सोमनीफेरा* (अश्वगंधा) आदि की जड़ें औषधीय महत्व की हैं। इसी प्रकार *ऐंगल मारमीलोस* (बेल) की जड़ें एवं अन्य पादप भाग तथा *केसिया फिस्टुला* (अमलतास) की जड़ एवं फल औषधीय रुप में उपयोगी हैं।

जिमनिमा सिलवेस्टरी (गुडामार) एवं *वाइटैक्स निगुण्डो* (निगुण्डी) की पत्तियों तथा *टर्मिनेलिया अर्जुना* की छाल औषधीय महत्व की है। *वुडफोर्डिया फ्रुटीकोसा* (धावरी) के फूलों से *ट्राइबुलस टेरिसटेरिस* (गोखरु), *प्लान्टेगो ओवेटा* (इसबगोल), *जेट्रोफा करकुस* (इन्द्रायन) आदि के फलों से औषधियाँ प्राप्त होती हैं। *इकलिप्टा अल्वा* (भृंगराज), *ऐलोय वेरा* (ग्वारपाठा), *अजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम) का सम्पूर्ण पादप भाग औषधीय महत्व का है। इसके अलावा *टीनोस्पोरा कोर्डीफोलिया* (नीमगिलोय), *धतुरा मेटेल* (धतूरा), *सिटूलस कोलोसिनथिसिस* (तुम्बा), *प्रोसोपिस सिनरेरिया* (खेजड़ी) आदि अनेक पादप राजस्थान में पाये जाते है तो औषधीय रुप में उपयोगी है। अश्वगंधा, गुग्गल, सतावरी यहां बहुतायत में होते हैं।

5. खाने योग्य पदार्थ :–

मरु क्षेत्र में कृषि की अनिश्चितता एवं लगातार अकाल पड़ने के कारण क्षेत्र के लोग प्राकृतिक रुप से उपलब्ध वानस्पतिक खाद्य पदार्थो पर निर्भर रहते हैं। राजस्थान में उपलब्ध वानिकी स्रोत से विभिन्न पादप प्राप्त होते है। *ऐनोना स्क्वैमोसा* (सीताफल), *जिजिफस मोरिसिआना* (बेर), *जिजिफस नुमुलेरिया* (जरबेर), *ऐंगल मारमीलोस* (बेल), *ऐम्बलिका आफिसिनेलिस* (आंवला), *माओसेप्स एलिगनाई* (मोलासिरी), *मानलकारा हैक्सेन्ड्रा* (खिरनी), *शाइजियम कुमिनी* (जामुन), *मैगीफेरा इंडिका* (आम), *टेमेरिन्डस इंडिका* (इमली), *कोर्डिया प्रजातियां* (गूंदा व गूंदी), *ग्रीविया प्रजाति* (फालसा), *अकेसिया सेनेगल* (कुमट), *प्रोसोपिस सिनेरेरिया* (खेजड़ी), *केपेरिस डेसीडुआ* (केर), *साल्वेडोरा ओलिओइडिस* (पीलू), *साल्वेडोरा परसिका* (खारा जाल), *मोरिंगा ओलीफेरा* (सहजन), *फोनिक्स सिल्वेस्टेरिस* (खजूर), *अजेडिरेक्टा इंडिका* (नीम) आदि के फल खाये जाते हैं।

मधुका इंडिका (महुआ), *बोहिनिया वेरीगेटा* (कचनार), *बोम्बेक्स सीबा* (सेमल), *यूजीनिया यूजेनसिस* (सेन्डेन) आदि के फूलों से तथा *ऐसपेरेगस रेसीमोसा* (सतावरी), *डायस्कोरिया प्रजाति* (जमीकंद या रतालू) आदि की जड़ों से खाद्य पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त साबुन के विकल्प के रुप में *सेपिन्डस प्रजाति* (अरीठा) एवं *बेलेनाइटस प्रजाति* (हिंगोटा) का प्रयोग भी स्थानीय लोग करते हैं। राजस्थान में पाये जाने वाले कई अन्य पादप स्रोत खस, चंदन व महुआ सुंगध के रुप में तथा बेर, पलास, पीलू, लाखकीट के माध्यम के रुप में शहतूत, अर्जुना, सिल्कवर्म के कीटों हेतु माध्यम के रुप में प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार राजस्थान की स्थानीय वानिकी प्रजातियां बहुत ही उपयोगी हैं। इनके संरक्षण द्वारा पर्यावरण की रक्षा के साथ–साथ आर्थिक रुप से समृद्धि भी अर्जित की जा सकती है ये पादप स्रोत इस क्षेत्र की विकट परिस्थितियों में इनके सच्चे एवं उपयोगी मित्र सिद्ध हुएं हैं।

सूरज का गोला,
इसके पहले ही कि निकलता
चुपके से बोला, हमसे–तुमसे, इससे–उससे
कितनी चीजों से
चिडियों से पत्तों से
फूलों–फल से, बीजों से–
"मेरे साथ–साथ सब निकलो
घने अंधेरे से
कब जागोगे, अगर न जागे, मेरे टेरे से ?"
आगे बढ़कर आसमान ने
अपना पट खोला
इसके पहले ही निकलता
सूरज का गोला,

फिर तो जाने कितनी बातें हुईं
कौन गिन सके इतनी बातें हुईं
पंछी चहके कलियां चटकी
डाल–डाल चमगादड लटकी
गांव–गली में शोर मच गया
जंगल–जंगल मोर नच गया
जितनी फैली खुशियां
उससे किरनें ज्यादा फैलीं
ज्यादा रंग घोला
और उभर कर ऊपर आया
सूरज का गोला
सबने उसकी आगवानी में
अपना पर खोला।

– भवानी प्रसाद मिश्र

सिरोही जिले की अकाष्ठ वन सम्पदा एवं आदिवासी अर्थव्यवस्था में उसकी भूमिका

श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं डॉ. रंजना आर्या
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

मनुष्य अनादि काल से ही अपने जीविकोपार्जन हेतु वन संपदा पर निर्भर रहता आया है एवं यह परंपरा आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में भी विद्यमान है। आज भी हमारे देश के अनेक प्रांतों में आदिवासी केवल वन एवं वन संपदा पर ही अपनी आजीविका का निर्वाह करते हैं। राजस्थान वन विभाग के प्रशासनिक प्रतिवेदन वर्ष 2009–10 के अनुसार 'राजस्थान वानिकी एवं जैवविविधता परियोजना' के अंतर्गत वर्तमान में वन सुरक्षा समितियों द्वारा अनुमानतः 13 करोड़ रुपये की एक लाख टन लघु वन

गरासिया जनजाति के युवक एवं युवतियाँ

उपज वितरित की गई है, जिसमें लगभग 10.83 करोड़ रुपये की 84,300 टन घास सम्मिलित है। राजस्थान में जहाँ कि 61 प्रतिशत भाग मरु प्रदेश है, संपूर्ण वनोपज का राज्य के सकल घरेलू उत्पादन में योगदान इस प्रकार है–

क्रम सं.	घटक	योगदान (लाख रुपये में)
1	ईंधन	22250.00
2	चारा	126815.00
3	इमारती लकड़ी	17000.00
4	लघु वन उपज	5400.00
	योग	171465.00

अधिकांशतः अकाष्ठ वनोपज दक्षिण–पश्चिम तथा उत्तर–पूर्व में गुजरात से हरियाणा होकर दिल्ली तक फैली हुई अरावली पर्वत श्रंखलाओं से प्राप्त होते हैं। राजस्थान का सिरोही जिला अकाष्ठ वनोपज दोहन का एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था–सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि इन ग्रामों की संपूर्ण आबादी अनुसूचित जनजाति गरासिया हैं। ग्राम की आबादी अलग–अलग बिखरे हुए घरों (ओडो) के रुप में बसी हुई है। गाँवों में मुख्यतः सभी घर कच्चे (केलूपोश) हैं। आपसी मतभेदों के उपरांत भी सामूहिक निर्णय लेकर सामाजिक कार्य किए जाते हैं। ग्राम में विवाह की खेंचना प्रथा प्रचलित है जिसके अंतर्गत वर वधू को उसकी सहमति से विवाह से पूर्व ही अपने घर में रख लेता है एवं बाद में लड़की के माता–पिता को दावा अदा कर उसकी पुष्टि कर ली जाती है।

पलाश के पत्तों का मेड़बंदी में उपयोग

इन ग्रामों में शिक्षा के प्रति भी जागरुकता बढ़ी है। अधिकांशतः सभी गाँवों में प्राथमिक एवं कुछ गाँवों में माध्यमिक विद्यालय हैं। प्रत्येक गाँव में एक आँगनवाड़ी केन्द्र भी है। गाँवों के कुछ बच्चे सिरोही स्थित समाज कल्याण के छात्रावास में रहकर भी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन गाँवों में सभी लोग हिंदू धर्म को मानने वाले हैं एवं लोक देवी–देवताओं की पूजा भी की जाती है।

ग्राम की ओरण भूमि पर पशुचारण

आदिवासी अर्थव्यवस्था में वनों की भूमिका – कृषि एवं पशुपालन के साथ–साथ वनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामवासी वनों से पशुओं हेतु चारा, ईंधन हेतु जलाऊ लकड़ी लाते हैं और इसे आस–पास के गाँवों में बेचते हैं। ये वनों से अन्य लघुवनोपज यथा– खैर, कुमठा, शहद, रतनजोत, महुआ, पुआर और करंज के बीज, आँवला, बहेड़ा व बेर के फल, महुआ के फल–फूल, तेंदू और खाकरा की पत्तियाँ, स्थानीय औषधीय पादप, बाँस व घास एकत्रित करके बेचते हैं। इस क्षेत्र में ग्रामीणों द्वारा एकत्रित, उपयोग एवं विक्रय किए जाने वाले महत्वपूर्ण अकाष्ठ वनोपज इस प्रकार हैं–

सिरोही जिले की वनोपज सम्पदा एवं उनके विविध उपयोग

क्र. सं.	स्थानीय नाम	वानस्पतिक नाम	उपयोग
1	महुआ	*मधुका इण्डिका*	कॉरोला ट्यूब एवं फल कच्चे खाए जाते हैं। फूलों को मसल कर शक्कर मिलाकर लड्डू बनाकर खाते हैं। बीजों को 'डोल्मा' कहते हैं और इन्हें खाते हैं।
2	बाँस	*बैम्बूसा प्रजाति*	कोमल शाखाएँ सब्जी बनाने में, झोंपड़ी व अन्य सजावटी वस्तुओं के निर्माण में, खेतों की मेड़बंदी में।
3	खाकरा	*ब्यूटीया मोनोस्पर्मा*	पत्तियों का उपयोग पत्तल व दोना बनाने में, झोंपड़ी की छत बनाने में एवं ईंधन में, कोमल शाखाएँ दाँतुन के लिए
4	धावड़ा	*एनोगाइसिस लेटीफोलिया*	गोंद, चारे एवं ईंधन हेतु, डायरिया के उपचार में
5	आम	*मेंजिफेरा इण्डिका*	कच्चे फलों का उपयोग अचार व पन्ना बनाने में, पके फल–खाद्य,
6	तेंदू	*डायोस्पाइरोस मेलेनोजाइलोन*	पत्तियों का उपयोग बीड़ी लपेटने, पत्तल व दोना बनाने में, फल खाद्य
7	पुआड़	*केसिया टोरा*	औषधीय गुण
8	करंज	*पोंगेमिया पिनाटा*	तेल उत्पादन हेतु
9	जामुन	*साइजियम क्यूमिनि*	फल खाद्य, बीज औषधीय उपयोग में
10	बेर	*जिजिफस प्रजाति*	पत्तियाँ पाले हेतु एवं फल खाद्य,
11	रतनजोत	*जैट्रोफा करकस*	बीज एकत्रीकरण
12	हरसिंगार	*निकटेन्थिस आरबोरटिसट्रिस*	फूल एवं टहनियाँ
13	आँवला	*एम्बलिका ऑफीसिनेलिस*	फल खाद्य–अचार एवं मुरब्बे हेतु
14	बहेड़ा	*टर्मिनेलिया बैलेरिका*	फल
15	करोंदा	*कैरिसा कैरेन्डस*	फल खाद्य–अचार, चटनी एवं मुरब्बे हेतु
16	इमली	*टैमेरिंडस इण्डिका*	फलियाँ खाद्य– इमली का पन्ना, कैंडी आदि
17	विलायती बबूल	*प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा*	लकड़ी– ईंधन हेतु एवं फलियाँ मवेशियों को खिलाने में
18	देशी बबूल	*अकेशिया निलोटिका*	लकड़ी– ईंधन हेतु तथा खेती के औजार बनाने में, दरवाजे और खिड़कियाँ बनाने में, पत्तियाँ और फलियाँ भेड़–बकरियों के लिए चारे के रुप में, कोमल टहनियों का उपयोग दाँतुन के रुप में।
19	खैर	*अकेशिया कटैचू*	लकड़ी– ईंधन हेतु तथा खेती के औजार बनाने में।

इनके अलावा अनेक औषधीय पादप ऐसे हैं, जिनको ग्रामीण समुदाय घरेलू औषधियों में उपयोग करने के साथ–साथ विक्रय भी करते हैं एवं मवेशियों के लिए चारे हेतु अनेक स्थानीय घास प्रजातियाँ को भी एकत्रित करते हैं। अतः प्रकृति प्रदत्त इस अमूल्य अकाष्ठ वनोपज संपदा के संवर्धन व संरक्षण के लिए यह नितांत आवश्यक है कि इनका वैज्ञानिक विधि से दोहन किया जाए, तभी ग्रामीण समुदाय को लाभान्वित करने के साथ–साथ क्षेत्र की जैव–विविधता संरक्षित रह पाएगी।

पर्यावरण संरक्षण के परिपेक्ष मे वानिकी: कुछ नये आयाम

डॉ. नवीन कुमार बोहरा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

एवं

डॉ. एस.के. शर्मा
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारत में सदियों से प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग एवं प्रबंधन किया जाता रहा है। वन यहां के जीवन का मुख्य आधार है वस्तुतः मानव ने जीवन की शुरूआत वनों से की थी तथा वन उत्पादों से अपना जीवन आगे बढाया। मानव वनों से न केवल खाद्य वरन् कपड़े तथा आश्रय भी पाता है। शुरू में मानव ने एक छोटे क्षेत्र की सफाई कर वहाँ खाद्य उगाना शुरू किया तथा आज भारत में सम्पूर्ण विश्व की अपेक्षा खेती सबसे ज्यादा होती है। खेती की अधिकता एवं अधिक पैदावार होने के बावजूद मानव की वनों पर निर्भरता आज भी बनी हुई है तथा लकड़ी (ईमारती एवं जलावन), कागज, दवाईयों चारा आदि के स्त्रोत मुख्यतः वन ही बने हुए हैं। ये वन न केवल आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करवाते हैं वरन् मृदा अपरदन को रोकने, मृदा की उपजाऊ क्षमता बढ़ाने तथा सबसे महत्वपूर्ण, पर्यावरण सुधार में उपयोगी है।

वनों की उपयोगिता एवं आवश्यकता :– वन एक जटिल तंत्र है जिसमें प्रमुखतः वृक्ष पादप होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के जीवों के लिए आश्रय का कार्य करते हैं। वनों से ही वन्य प्राणी संरक्षित रहते हैं तथा वर्षा के पानी का संचयन हो पाता है। वृक्षों से गर्मियों में ठंडी हवा का संचार होता है तथा रात्रि में ध्वनि प्रसार को कम करने में भी सहायक है। वृक्षों की पत्तियाँ गिरकर खाद बनाती हैं जबकि इनकी जड़ें भूमि को बांधे रखती हैं। पक्षियों के घोंसले वृक्षों पर बनते हैं जबकि इनसे निकलने वाली ऑक्सीजन मानव जीवन के लिए प्राणवायु है। वनों से आपेक्षिक आर्द्रता में परिवर्तन होता है तथा ये वर्षा कराने में भी सहायक सिद्ध होते हैं।

हमारे देश की कुल 306 मिलियन हैक्टेयर भूमि में से करीब 18 मिलियन हैक्टेयर भूमि आवासीय तथा अनुउत्पादनीय है जबकि 21 मिलियन हैक्टेयर भूमि चटटानी एवं हिमाच्छादित है। शेष 266 मिलियन हैक्टेयर भूमि में से 23 मिलियन हैक्टेयर भूमि ऊसर या परती भूमि है तथा केवल 17 मिलियन हैक्टेयर भूमि को परिष्कृत कर योग्य भूमि बनाया जा सकता है। मात्र 83 मिलियन हैक्टेयर भूमि में वन एवं चारागाह हैं तथा लगभग 14.3 मिलियन हैक्टेयर भूमि में खेती होती हैं। इस प्रकार कुल भूमि के करीब 46 प्रतिशत भाग में ही खेती होती है तथा शेष भूमि व्यर्थ पड़ी रहती है। इसी प्रकार वनों का प्रतिशत भी निर्धारित न्यूनतम मापदंड से कम ही है। इसका प्रमुख कारण है देश की 50 प्रतिशत (लगभग) भूमि पर मृदा का उपजाऊ नहीं होना है। मृदा क्षरण का मुख्य कारक मृदा अपरदन (अर्थात मृदा का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा होना) ही है। इसके अतिरिक्त वृक्षों का उन्मूलन एवं अनियंत्रित रूप से उनका दोहन भी मृदा क्षरण का एक महत्वपूर्ण कारक है। मृदा के क्षरण के अन्य कारणों में प्रमुख है– जलाक्रान्ति, लवण, भवन एवं नगरीय अतिक्रमण। बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण द्वारा मृदा अपरदन रोकने, टिब्बा स्थिरीकरण करने तथा पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने में भी सहायता मिलती है।

भारत में वनीकरण :– वनीकरण कार्यक्रम की शुरूआत भारत में लगभग 100 वर्ष से अधिक समय पूर्व की मानी जा सकती है। शुरूआत में बीजों की सीधी बुआई अथवा हवाई छिड़काव द्वारा पौधरोपण कार्यक्रम चलाये गये जो बाद में विभिन्न प्रकार के संग्राहक पात्रों में पौधे तैयार करने की विधि के रूप में विकसित किये गये। विगत कुछ वर्षों से पौधरोपणी (नर्सरी) में पौधे प्लास्टिक, बैग में तैयार किये जा रहे हैं। संसार की समस्त भूमि जिन पर वनीकरण या पुर्नवनीकरण के कार्यक्रम चल रहे हैं, का प्रमुख एवं मूल उद्देश्य उच्च गुणवता के पौधे तैयार करना है। वानिकी कार्यों में प्रयुक्त पौधों की गुणवत्ता मुख्यतः दो कारकों पर निर्भर करती है यथाः–

1. उसकी आनुवांशिक संरचना पर
2. उसके क्षेत्र के प्रभाव पर

वन रोपणी एवं नवीन तकनीके :– अच्छे वृक्षों (प्लस ट्री) से लिए बीजों के द्वारा आनुवांशिकी संरचना की गुणवता प्राप्त की जा सकती है जबकि प्रशिक्षित व्यक्तियों एवं नवीन

तकनीकों से क्षेत्र की स्थिति का मानदंड बदला जा सकता है। भारत में पौधों की रोपाई के लिए प्रयुक्त प्लास्टिक की थैलियाँ इनकी सरल उपलब्धता एवं सस्ती होने के कारण बहुतायत में उपयोग में लाई गई परन्तु ये न केवल पर्यावरण के लिए हानिकारक है वरन् पौधों की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती हैं। प्लास्टिक की थैलियों में पौधों की जड़े विकृत हो जाती हैं तथा उसका विकास भी नहीं हो पाता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में हानि भी अधिक होती है तथा खरपतवार की अधिकता एवं श्रम लागत में भी वृद्धि होती है। इन सभी कारणों को ध्यान में रखकर मूलतंत्र को सुरक्षित रखने हेतु तथा अच्छी गुणवता के पौधे, कम श्रम तथा लागत में तैयार करने हेतु कई प्रकार की तकनीकें प्रयुक्त की जा रही हैं। रोपणी में पौधे तैयार करने हेतु विशेष प्रकार के पात्रों का विकास किया गया है। जिसे "रूट ट्रेनर" कहते है।

जड़ साधक (Root Trainer) :– रूट ट्रेनर या जड़ साधक, पराबैंगनी किरणरोधी उच्च घनत्व वाली प्लास्टिक का बना होता है। इनमें 5x4 की पंक्तियाँ होती हैं तथा आयतन 150/200 मि.ली. या इच्छानुसार ले सकते हैं। ये पात्र बेलनाकार होते हैं जो नीचे की ओर संकरे होते जाते हैं तथा अंत में एक छिद्र के रूप में बाहर खुलते हैं। इनमें पाये जाने वाले लम्बवत उभार, जड़ों को सीधे नीचे जाने में मदद करते हैं। नीचे जाने पर जड़े प्रकाश तथा हवा में खुलकर रूक जाती हैं तथा पुनः एक नई जड़ पौधे से निकलती है। इस प्रकार शाखित मूलतंत्र विकसित हो जाता है जो भूमि से पोषक तत्वों का अधिक शोषण कर सकती है। ये पौधे गुणवत्ता में उत्तम होते हैं। शुरू में प्लास्टिक की थैलियों की अपेक्षा इनका मूल्य अधिक होता है परन्तु इनको बार–बार उपयोग में ले सकने की क्षमता के कारण एवं पौधों की गुणवत्ता के मद्देनजर यह गौण हो जाता है। जड़ साधकों के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं:– ये कम स्थान घेरते हैं तथा छोटे से स्थान पर कई हजार पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

1. यातायात में क्षति, खरपतवारों की वृद्धि, कवकों का विकास आदि समस्याएँ नहीं रहती, अतः रोगमुक्त गुणवत्ता वाले पौधे तैयार होते हैं।
2. विकसित मूलतंत्र के कारण पोषक तत्वों की, पौधों में प्रचुरता रहती है तथा वृद्धि भी अच्छी होती है।
3. इन्हें बार बार उपयोग में लाया जा सकता है तथा बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण कार्यक्रमों हेतु एवं पर्यावरण संरक्षण में यह बहुत उपयोगी है।

इस प्रकार यह जड़ साधक स्वस्थ पौध रोपाई हेतु एक नया एवं कारगर तरीका है जिससे गुणवत्तायुक्त पौध प्राप्त हो सकती है तथा उससे भोजन, ईंधन, चारा आदि का भी अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सकता है।

वन आनुवांशिकी (Forest Genetics) :– वानिकी के क्षेत्र में आनुवांशिकी कार्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। कृषि के क्षेत्र में आनुवांशिकी तकनीकों से कई नये पादप तैयार किये गये हैं परन्तु वानिकी क्षेत्र में बहुत कम कार्य किया गया है। आधुनिक युग में जैव प्रौद्योगिकी तथा आनुवांशिकी तकनीक से परिवर्धत पादपों का प्रयोग कर औषधीय, कृषि वानिकी आदि सभी क्षेत्रों में क्रांति लाने का प्रयास जारी है। इन तकनीकों का प्रयोग बहुत ही समझ बूझ कर तथा सावधानीपूर्वक करने से मानव को लाभ हो सकता है क्योंकि थोड़ी सी असावधानी से मानव जीवन एवं पर्यावरण को भारी क्षति पहुंच सकती है। वानिकी क्षेत्र में आनुवांशिकी को एक यंत्र के रूप में प्रयोग कर वानिकी उद्योग को एक नई दिशा दी जा सकती है। आनुवांशिकी इंजीनियरिंग के प्रयोग द्वारा काष्ठ तथा रेशे उत्पादों के उत्पादन में पर्यावरण को क्षति पहुचाये बिना क्रांति लाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त निम्न कार्यों में भी आनुवांशिकी इन्जिनियरिंग का प्रयोग किया जा सकता है, ये हैं:–

1. दुर्गम स्थलों का सुगमीकरण तथा लवणीय या अम्लीय भूमि का पुनरूद्धार विशेष प्रकार के पादपों द्वारा किया जा सकता है।
2. काष्ठ घनत्व तथा उसकी कैलोरी मात्रा में वृद्धि कर विश्व में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली जलावन लकड़ी की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।
3. लकड़ी की गुणवत्ता बिना रसायनों का प्रयोग कर प्राप्त की जा सकती है तथा पल्प एवं पेपर के उत्पादन में वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।
4. "बायोप्लास्टिक" जैसे उत्पादों का विकास किया जा सकता है जिसमें रेशों के गुण भी हों।
5. कीट/कवक मुक्त, रोग–प्रतिरोधी पादपों का निर्माण कर विभिन्न कीटनाशी एवं कवकनाशी रसायनों का छिड़काव रोका जा सकता है तथा पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता की जा सकती है।

इन विट्रो तकनीक (Invitro Technique):– इस तकनीक द्वारा लुप्त हो रही या लुप्त प्रायः प्रजातियों के जीन पूल (Gene Pool) का संरक्षण किया जा सकता है। इस तकनीक द्वारा पौधों की प्रायोगिक कक्ष में वृद्धि नियमित कर तथा उसमें अन्य पौधों का जर्मप्लाज्म स्थानान्तरित भी किया जा सकता है। बीजों, कठिनाई से आने वाले पौधों की कलमों को नियमित रूप से एवं उचित गुणवत्ता से तैयार किया जा सकता है। विभिन्न वानिकी प्रजातियों के माइक्रोसंवर्धन तथा क्रायोसंवर्धन एवं संरक्षण संबंधी तकनीकों का विकास किया जा चुका है तथा इनमें और आनुवांशिकी विकास किया जा रहा है जिसमें "व्यापारिक, वानिकी (commercial forestry) के रूप में उनका प्रयोग हो सके। आर.एफ.एल.पी. (RFLP) तथा आर.ए.पी.डी. (RAPD) सरीखी तकनीकों का प्रयोग कर तथा आनुवांशिकी मार्कर (Genetic marker) का प्रयोग एक यंत्र (tool) के रूप में कर विभिन्न वानिकी प्रजातियों का जीनोटाइप विकसित किया जा रहा है। विभिन्न शोध कार्यक्रमों द्वारा अनुसंधानकर्ता इस क्षेत्र में और शोध द्वारा अच्छे परिणाम प्राप्त करने के प्रति आशान्वित हैं। आधुनिक युग में मानव जीनोम की संरचना के ज्ञात होने के पश्चात जीन तकनीकी के प्रयोग से नई प्रजातियों (जो वातावरण एवं पर्यावरण के अनुकूल तथा व्यापारिक महत्व की हो) के विकास पर तेजी से कार्य चल रहा है। कुछ नवीन तकनीकों का विवरण इस प्रकार है:–

(अ) जीन स्थानान्तरण (Gene Transfer):– वैज्ञानिकों ने पौधों एवं जन्तुओं में जीन तथा आनुवांशिकी इन्जिनियरिंग से नई तकनीक का विकास किया है। इस कार्य में जीन स्थानान्तरण के लिए सामान्यतः प्राकृतिक ट्रांसफर एजेन्ट यथा बैक्टीरिया (जीवाणु) का प्रयोग होता है जबकि कुछ में रसायनों का प्रयोग कर विघुत पल्स भेजे जाते हैं। इन स्थानान्तरणों में जीन बुलेट के प्रयोग से आनुवांशिकी सूचनाओं के स्त्रोत (DNA) को उपयुक्त (Target) कोशिका में प्रवेश कराकर नयें पादपों एवं जीवों का विकास किया जा सकता है जिनसे नये जीन आधारित जीवों या पादपों का विकास संभव हो सकता है। यह मुख्यतः दो विधियों द्वारा किया जाता है:–

1. **बायोलिस्टक्स (जीनगन):–** इस विधि में जीन गन में डीएनए को स्वर्ण से लपेटकर (coated) पौध कोशिका में दागा जाता है जिससे कुछ पादप कोशिकाएँ उसको ग्रहण कर नई सूचनाओं को प्रदान करती है। इस प्रकार उच्च आनुवांशिकी संरचनाओं वाले पौधे तैयार हो सकते हैं।
2. ***एग्रोबैक्टिरयम टयूमीफेसेन्स* द्वारा:–** इस विधि में प्राकृतिक आनुवांशिकी इंजिनियम *"एग्रोबैक्टिरयम टयूमीफेसेन्स"* (जो कि मुख्यतया मिटटी में पाया जाता है तथा अपने डीएनए की प्रकृति दूसरे में देने की अदभुत क्षमता रखता है) का उपयोग किया जाता है। आणविक जैव विज्ञानी इस बैक्टिरयम के डीएनए की कूट कोड में उपयोगी एवं वांछित गुणों को डाल देते हैं तथा इस प्रकार ये गुण टारगेट (Target) पौधे में चले जाते हैं।

जीनोमिक्स (Genomics):– यह विज्ञान की एक नवीन शाखा है इसमें जीनोम (जिसमें सम्पूर्ण जीन तथा गुण किसी प्रजाति के होते हैं) का अध्ययन किया जाता है। जीनोमिक्स एवं कम्प्यूटर के उपयोग से विज्ञान की एक नई शाखा का विकास हुआ है जिसे "बायोइनफोरमेटिक्स" कहते हैं। इस शाखा के द्वारा जीन मेपिंग (Gene Mapping) एवं गुणसूत्रों के सूक्ष्मतम अध्ययन एवं कूट कोड के बारे में सूचनाएँ ज्ञात की जा सकती हैं।

स्रोत परीक्षण:– बीजों के स्रोत परीक्षण द्वारा विभिन्न क्षेत्रों हेतु उपयुक्त बीजों का चयन कर उन्हें भी पादप रोपणी में तैयार किया जाता है जिससे क्षेत्र विशेष के गुणों के लिये उपयुक्त वातावरण हेतु पौधों को परिवर्धित किया जा सके। इस परीक्षण में विभिन्न स्रोतों से बीज एकत्र कर उन्हें क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों में परीक्षित किया जाता है तथा उसमें से सर्वश्रेष्ठ (प्लस ट्री) से बीज एकत्र कर पौधे तैयार कर लगाये जाते हैं। इस प्रकार उत्तम गुणों के पौधे तैयार हो सकते हैं।

पादप पोषण एवं नवीन तकनीकी :– पौधों को उत्तम पोषण मिलने पर अधिक जैवभार (Biomass) उत्पन्न होता है तथा पौधों की अच्छी वृद्धि से इनसे मिलने वाले आर्थिक लाभ में भी बढ़ोतरी हो सकती है। सामान्यतः रासायनिक खादों के उपयोग करने से मृदा के उपजाऊपन में कमी आती है तथा पर्यावरण को भी हानि पहुंचती है। आधुनिक युग में जैव खादों का प्रयोग बढ़ा है तथा विभिन्न प्रकार की जीवाणु खादों,

वर्मीकल्चर द्वारा तैयार खाद एवं अन्य प्रकृति मित्र खादों का प्रचार– प्रसार भी बढ़ा है। कुछ प्रमुख प्रकृति मित्र खादों का विवरण इस प्रकार है :–

1. **वर्मीकम्पोस्ट** :– केंचुए द्वारा अपनी नैसर्गिक क्रियाओं द्वारा बनाई जाने वाली खाद को वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। उपयुक्त तापमान, नमी, हवा एवं जैविक पदार्थ मिलने पर केंचुए अपनी संख्या बढ़ाने के साथ साथ गोबर एवं वानस्पतिक अवशेष आदि को सड़ा कर जैविक खाद के रूप में परिवर्तित करते रहते हैं। वर्मीकम्पोस्ट गहरे भूरे रंग का मुलायम ह्यूमस पदार्थ होता है। इससे मृदा में वायु के आवागमन में वृद्धि तथा जल क्षमता में बढ़ोतरी होती है। खाद में नमी के कारण सूक्ष्म जीवों की गतिविधियां बढ़ती हैं तथा उससे पोषक तत्वों की प्राप्ति में भी वृद्धि होती है। वास्तव में वर्मीकम्पोस्ट से मृदा में नाईट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती है। इस प्रकार पौधों का अच्छा विकास होता है।

2. **राइजोबियम जीवाणु खाद** :– ये जीवाणु मटर कुल के पौधों की जड़ों में छोटी छोटी ग्रन्थियों में सहजीवी के रूप में मिलता है। आजकल इन्हें प्रयोगशाला में विकसित किया जा रहा है तथा इसे बीजों के साथ मिलाकर बुवाई करने से यह इन पौधों की जड़ में प्रवेश कर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने में सहायक सिद्ध होते हैं। मुख्यतः सात प्रकार की जीवाणु (राइजोबियम कुल) की प्रजातियां मिलती हैं यथा –*राइजोबियम मेलिमोटी, राइजोबियम जेपोनिकम, राइजोबियम लैगुमिनोसेरम* आदि। यह खाद मुख्यतः मूंगफली, सोयाबीन, मटर, मैथी, चना, उड़द आदि में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। वानिकी एवं कृषिवानिकी हेतु यह महत्वपूर्ण खाद है।

3. **ऐजोटोबेक्टर खाद** :– ऐजोटोबेक्टर जीवाणु भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने में सक्षम होता है। इसे प्रयोगशाला में तैयार कर इस्तेमाल करने में पहले बीजों को गुड़ या चीनी के घोल से नम कर फिर खाद को इस पर फैला दिया जाता है। इसे कुछ देर सुखाकर, बुवाई कर देते हैं। एजोटोबैक्टर की सात प्रजातियां यथा– कोकोकम, बैंजीरिकाई, पेरापेली, विनलेडाई, इन्सिगिनिस, मैक्रोस्टोजिन्स एवं एजोमोनास प्रजातियां। इस खाद का प्रयोग गेहूँ, बाजरा, कपास, सरसों, सूरजमुखी, तिल, मक्का, सब्जियों एवं पुष्पीय पौधो में उपयोगी पाया गया है। इसे पौधरोपणी में प्रयुक्त कर अच्छे पौधे तैयार हो सकते हैं।

4. **एजोला जीवाणु खाद** :– यह शैवाल पानी में मिलती है। इसे प्रयोगशाला में विकसित कर इसकी खाद तैयार की जाती है। *ऐजोला मैक्सीकाना, ऐजोला केरोलिनिआना, ऐजोला माइक्रोफिला, ऐंजोला रूब्रा, ऐजोला पिन्नेटा, ऐजोला फिलीकुलोइडस* तथा *ऐजोला निलोटिका* प्रजातियां मुख्यतः पाई जाती है। भारत में *ऐजोला पिन्नेटा* अधिकांशतः प्रयुक्त होती है तथा यह धान की फसलों हेतु उपयुक्त पाई गई है। वानिकी कार्यो में भी इस खाद के प्रयोग से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

5. **एजोस्प्रिलम जीवाणु खाद** :– यह जीवाणु खाद अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में अधिक उपयोगी है क्योंकि ऐजोस्प्रिलम जीवाणु को क्रियाशील होने के लिए उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। यह खाद गन्ना, मक्का, ज्वार, धान, बाजरा आदि के अतिरिक्त पुष्पीय पौधों एवं पौधरोपणी में भी प्रयुक्त की जाती है। ऐजोस्प्रिलम की मुख्यतः चार प्रजातियां यथा *एजोस्प्रिलम लिपोफेरम, एजोस्प्रिलम एमेजोन्स, एजोस्प्रिलम ब्राजिलेंस* तथा *ऐजोस्प्रिलम हेलोप्रेफरेंस* उपयोगी पाई गई है।

6. **नील हरित शैवाल जीवाणु खाद** :– इस प्रकार की खाद में कई प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओं का समूह होता है। इसे धान के खेत में रोपाई के 10–15 दिन बाद (पानी से भरे खेत में) डाल देते हैं तथा पानी लगातार बनाये रखते हैं । इस प्रकार करने से नील हरित शैवाल की मोटी परत बन जाती है, जिसे सुखा कर निकाल लेते हैं तथा पाउडर के रूप में एकत्र कर लेते हैं। इस पाउडर का इस्तेमाल धान की खड़ी फसल पर करने से लाभ मिलता है। इस प्रकार की खाद दलदली फसलों, धान आदि के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है।

इस प्रकार वर्मीकम्पोस्ट एवं अन्य प्रकार की जीवाणु खादों का प्रयोग कर न केवल कृषि क्षेत्रों में वरन् वानिकी क्षेत्रों में भी मृदा की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार की खादों की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है तथा इससे पर्यावरण को स्वस्थ रखने एवं मृदा की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है। वर्मीकम्पोस्ट फलवृक्षों से बागवानी में, कृषि में तथा रेगिस्तानी क्षेत्रों में पौधों की अभिवृद्धि उपयोगी सिद्ध हुई है।

वैम :– माइकोराइजा या वेस्क्यूलर आरबसक्यूलर माइकोराइजा (वैम) नामक जैव खाद के प्रयोग से विभिन्न वानिकी क्षेत्रों एवं कृषि कार्यों में आश्चर्यजनक सफलता मिली है। इस प्रकार की जैव खाद के प्रयोग से भूमि से फॉस्फोरस मिलने में आसानी रहती है तथा इस प्रकार पौधों के पोषण में सहायता मिलती है।

जैव कीटनाशी :– रासायनिक कीटनाशियों के बढ़ते दुष्प्रभावों के कारण जैव कीटनाशियों का विकास हुआ। नीम एवं कई अन्य पादपों में विभिन्न कीटनाशी गुणों का पता लगा है जिनका उपयोग कर विभिन्न प्रकार के जैव कीटनाशी तैयार किये गये हैं जो न केवल पर्यावरण मित्र होते हैं वरन् अधिक अच्छे ढंग से रोगो पर नियंत्रण कर सकते हैं।

जैव नियंत्रण :– कुछ कीट भी दूसरे कीटों के लिए हानिकारक होते हैं तथा इन गुणों का उपयोग कर विभिन्न कीटों को दूसरे रोग फैलाने वाले कीटों को समाप्त करने में प्रयुक्त किया जाता है जिसे जैव नियंत्रण (Bio- Control) कहते हैं।

वानिकी के क्षेत्र में दिन–प्रतिदिन नई नई तकनीकों का विकास जारी है। वर्षाजल संग्रहण हेतु विभिन्न तकनीकों के विकास से मरूक्षेत्र में जल प्रबंधन में सहायता मिली है तो दूसरी ओर ठंडे प्रदेशों (बर्फीले क्षेत्रो में) में पॉली हाऊस, ग्रीन हाऊस द्वारा विभिन्न प्रकार के पादप तैयार किये जा सकते है जो पहले सम्भव नहीं थे। आज के बदलते वातावरण एवं लगातार घटते वनों के साथ तेजी से बढ़ती जनसंख्या के लिए नई वानिकी तकनीकें एवं वानिकी अनुसंधान मील का पत्थर सिद्ध हो सकती हैं। आज की जरूरत है कि इन नवीन तकनीकों का प्रयोग करें एवं उनका प्रचार–प्रसार कर अधिकाधिक वृक्षरोपण करें एवं पर्यावरण को आने वाली पीढ़ी हेतु सुरक्षित एवं संरक्षित करें।

उठके कपड़े बदल, घर से बाहर निकल जो हुआ सो हुआ,
रात के बाद दिन, आज के बाद कल जो हुआ सो हुआ।
जब तलक साँस है, भूख है प्यास है ये ही इतिहास है,
रख के काँधे पे हल, खेत की ओर चल जो हुआ सो हुआ।
जो मरा क्यों मरा, जो जला क्यों जला, जो लुटा क्यों लुटा,
मुद्दतों से हैं गुम, इन सवालों के हल, जो हुआ सो हुआ।

– निदा फ़ाज़ली

करंज - एक वरदानी पेड़

डॉ. एस.पी. चौकियाल
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

करंज (Pongamia pinnata) एक मध्यम ऊँचाई, आद्र एवं गरम वातावरण में उगने वाला पेड़ है। यह 500 मि.मी. से 2500 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी प्रकार से उग जाता है तथा ऊँचाई 20–25 मीटर एवं मोटाई 80 से. मी. तक होती है। इसकी पत्तियाँ गहरी, हरी, चमकदार तथा एक पत्ती में तीन से सात तक लीफलेट्स (leaflets) होती हैं। अंतिम छोर की लीफलेट्स सबसे बड़ी एवं फिजिलौजिकली (Physiologically) अधिक सक्रिय भी होती हैं। यह पेड़ 0 से. से 50 डिग्री से. तापमान तक आसानी से झेल सकता है। रेतीले एवं चट्टानी इलाके में भी यह बड़ी आसानी से उग जाता है एवं खारे पानी वाली जमीन में भी उगने में सक्षम है। इसके बीजों को अधिक लम्बे समय तक संग्रहण नहीं रख सकते एवं बीज बहुत आसानी से उग जाते हैं। पौधों को फील्ड में लगाने से पूर्व इन्हें रोपणी (नर्सरी) में तैयार किया जाता है। इस पेड़ में कापिसिंग की गजब क्षमता होती है अतः उन कोंपलो से कलमें तैयार कर नये पौधे भी बनाये जा सकते हैं। इस पेड़ को कलमों से आसानी से तैयार किया जा सकता है। 100 पी0पी0एम0 इन्डोल ब्यूटाइरिक एसिड कलमों में लगाने से इनकी अच्छी एंव अधिक जड़ें पैदा होती हैं।

यह एक बहुपयोगी एवं तीव्र वृद्धि वाला पेड़ है जिससे कि इसको सड़कों के किनारे छायादार पेड़ के रूप में लगाया जाता है। इसकी लम्बी मूसला जड़ें होने के कारण यह 10 मीटर नीचे जमीन से पानी खींचने में सक्षम है तथा अपने चारों ओर नीचे उगने वाली वनस्पतियों से पानी एवं मिनरल्स के लिये संघर्ष नहीं करता। अतः इसके इस खास गुण के कारण इसे कृषि वानिकी के प्रयोग में भी लाया जा सकता है, इसका दूसरा खास गुण यह भी है कि यह वातावरण की निष्क्रिय नाइट्रोजन (N) को अपनी जड़ों में एक बैक्टीरिया (राइजोबियम) की सहायता से स्थिरीकरण कर जमीन की उर्वरकता को भी बढ़ाता है तथा अपनी ठंडी छाँव के नीचे घास आदि को स्थिर की गयी नाइट्रोजन छोड़कर उगने में भरपूर मदद करता है। अतः चारागाह प्रबंधन में इस पेड़ का महत्व और भी बढ़ जाता है। वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में इस पेड़ पर शोध कर यह पाया गया कि इस पेड़ के पौधों को रोपणी में उगाने के लिये बहुत ही कम रसायनिक खाद की आवश्यकता पड़ती है। रोपणी में 40 किलो प्रति हेक्टेयर से भी कम मात्रा में यूरिया डालने पर यह अच्छी मात्रा में वातावरण की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर लेता है जबकि इससे अधिक मात्रा डालने पर स्थिरीकरण कम या बंद कर देता है। प्रयोग से यह भी पता चला कि एक साल के पौधे 16813–40 नैनोमोल प्रति ग्राम फ्रेश भार प्रति घंटे की दर से वातावरण की नाइट्रोजन को जमीन में स्थिरीकरण करते हैं। वर्षा के मौसम में यह तीव्र स्थिरीकरण करता है अतः खाद आदि इसी मौसम में पेड़ों को देना चाहिए। यद्यपि इस तरह के गुण अन्य फलीदार लैग्यूम पेड़–पौधों में भी पाये जाते है लेकिन करंज इनमें से बहुआयामी पेड़ हैं।

करंज का पेड़ लाख के कीड़े एवं चंदन के पेड़ के लिये उत्तम होस्ट/मेजबान भी है। जानवर इसकी पत्तियों को खाना कम ही पसंद करते हैं। इसके फूलों को सड़ाकर बाग–बगीचों घर आँगन में गमले में उगने वाले पौधें के लिए उत्तम खाद का काम भी करते हैं। इसकी पत्ती में 3–5 प्रतिशत से 4–5 प्रतिशत तथा तना एवं जड़ में 3 प्रतिशत तक नाइट्रोजन आंकी गई है। फिलिपीन में इसकी छाल से रस्सियाँ/डोरियाँ बनायी जाती है। छाल से एक प्रकार का काला गोंद निकलता है जिससे जहरीली मछलियों के काटने वाले घाव पर इस्तेमाल करते है, जड़ों से प्राप्त सार को फोड़ों को ठीक करने में करते हैं। पीसे हुए बीज एवं पत्तियाँ एंटीसेप्टिक का कार्य भी करती हैं इनकी कोमल डंडियों को दातुन के लिये भी इस्तेमाल किया जाता है। इसके बीज से निकाला गया गाढ़ा पीला, नारंगी, भूरे रंग का तेल बहुत प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है। बाजार में इसका तेल पोंगाम ऑयल के नाम से जाना जाता है। अनाज के गोदामों में इसकी सूखी पत्तियाँ रखने से कीड़े–मकोड़े दूर भाग जाते हैं एवं सूखे पेड़ों को जलाऊ लकड़ी के काम में लाया जाता है।

पुराने समय में इसके तेल को खाना पकाने में इस्तेमाल किया जाता था किन्तु जब से पैट्रोलियम पदार्थो की खोज हुई तब से इसके तेल पर कम ही ध्यान दिया गया जिसके कारण ग्रामीण भारत में मिट्टी का तेल बहुतायत से प्रयोग होने लग गया था। भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर के प्रो. उदिपि श्रीनिवासन ने इसके तेल को काटेज इण्डस्ट्रीज में प्रयोग कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। कर्नाटक में इसके तेल को अब डीजल की भाँति प्रयोग में लाया जाने लगा है, जिसमें कि सिंचाई करने वाले पंप प्रमुख हैं। भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर की प्रयोगशाला में यह सिद्ध किया गया है कि एक लीटर शुद्ध पोंगामिया तेल से उतनी ही उर्जा प्राप्त होती है जितनी कि एक लीटर मानक डीजल से प्राप्त होती है। इसे लम्बे समय तक इस्तेमाल हेतु रखा जा सकता है एवं आसानी से एक जगह से दूसरी जगह भी ले जाया जा सकता है।

करंज का पेड़ 4–5 वर्ष के उपरांत परिपक्व होकर फूल उगाना शुरू कर देता है। एक अनुमान के अनुसार एक अच्छा पेड़ औसतन 9 से 10 किलो तक बीज उत्पन्न करता है जो कि 100 से 1000 किलो बीज प्रति हेक्टेयर तथा इससे 25 प्रतिशत तेल निकल सकता है। भारतीय मिलों में 24 से 27.5 प्रतिशत तथा गाँवों में 18–22 प्रतिशत तक तेल निकाला जा सकता है। अभी हाल में ही एक अध्ययन के अनुसार अलग अलग पेड़ों से बीज लेकर उनमें तेल की मात्रा को परखा गया तथा यह पाया गया कि इसके बीजों में 32.5 प्रतिशत से लेकर 44.07 प्रतिशत तक तेल की मात्रा होती है। तेल निकालने के बाद इसकी खली खेतों के लिये अच्छा उर्वरक का काम करती है अतः पेड़ के प्रत्येक भाग से कुछ न कुछ प्राप्त होता ही है। हमारे देश के किसान रसायन उर्वरकों का इस्तेमाल करते हैं जो कि जमीन ही नहीं जमीन के अन्दर के पानी को भी प्रदूषित कर देते हैं। जिससे कि विभिन्न प्रकार की बीमारियों का भी आगमन हो गया है। यह पेड़ स्वंय भी वातावरण की नाइट्रोजन को जमीन पर स्थिर कर उर्वरा शक्ति बढ़ाता है। तेल निकालने के बाद खली खेतों में डालकर आयातित उर्वरकों का इस्तेमाल रोक सकते हैं जिसे हमारी सरकार को सब्सिडी देकर किसानों को उपलब्ध कराना पड़ता है। यह सब्सिडी धीरे–धीरे समाप्त हो रही है अतः देश का एक सामान्य एंव गरीब किसान इसको खरीदने में असमर्थ हो जाएगा। पृथ्वी से खनिज तेल का भण्डार समाप्ति के कगार पर है अतः हमें आज से ही इसके वैकल्पिक स्त्रोंतों को तलाशने की अत्यन्त आवश्यकता है और इसका समाधान कुछ सीमा तक करंज के पेड़ों को उगा कर सकते हैं। इस पेड़ का अधिकतम दोहन करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि अपने देश से अलग अलग उन्नत किस्म के पेड़ों से बीज एकत्र कर इनके तेल की मात्रा परखी जाए एंव वे पेड़ चिन्हित किए जाएं जिनके बीजों से तेल की मात्रा अधिक पायी गई। उन्हीं पेड़ों से कलमें तैयार करके रोपिणी (nursery) बनायी जाए। इन उन्नत किस्म के पेड़ों की टहनियों में गूंठी बांधकर भी पौधे तैयार किए जा सकते हैं। पेड़ की टहनी से बनायी गई कलमों की अपेक्षा एक पर्व वाली कोंपल (single nodal cutting) में प्रस्फुटन की क्षमता कहीं अधिक होती है, एवं कम समय, कम क्षेत्र में अधिक से अधिक पौधे उगाये जा सकते हैं।

हमारे देश में सड़कों एवं रेल लाईनों का जाल बिछा हुआ हैं यदि हम बंजर भूमि पर, सड़कों एवं रेल की पटरी के दोनों ओर इस पेड़ का जंगल खड़ा कर दें तो हजारों गरीब परिवारों को इस पेड़ से बीज इकट्ठा करने एवं तेल निकालने में रोजगार मिल सकेगा। साथ ही खली के रूप में खेतों के लिए खाद भी उपलब्ध हो जाएगी एंव भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होकर पशुओं के लिए बंजर पड़ी जमीन में घास उग जाएगी इससे दूध की मात्रा भी बढ़ेगी। हमारे देश में मानवीय शक्ति का विशाल भंडार है इस प्रकार इसके बीजों से तेल निकाल कर डीजल के स्थान पर प्रयोग करने से एक तरह से हम अपने देश की उर्जा की बचत करेंगे वही दूसरी तरफ जो एक बड़ी रक़म विदेशी मुद्रा की कच्चा तेल आयात करने में खर्च होती है, उसकी भी बचत कर पायेंगे एवं अपने

सड़क के किनारे रोपित करंज

वातावरण को भी स्वच्छ रख सकेंगें। कच्चे तेल की कीमत में समय समय पर उछाल आने से हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर इसका सीधा असर पड़ता है जिससे विकास की गति धीमी पड़ जाती है।

इस पेड़ की उपयोगिता को देखते हुए अपने कृषि प्रधान देश के किसान इसे अपनी खाली पड़ी जमीन में, घर आंगन में (छाया के लिये) तथा खेतों की मेड़ों पर उगा कर मृदा उर्वरकता बढ़ाते हुए ऊर्जा के इस वैकल्पिक स्त्रोत को बढ़ाने में मदद कर विदेशी मुद्रा की बचत कर सकते है तथा गरीब परिवारों को रोजगार दिला सकते हैं अतः आओ हम सब मिलकर इस स्वदेशी पेड़ को उगाने में भरपूर मदद करें।

घास के साथ रोपित करंज

जिस्म क्या है रूह तक तब सब कुछ खुलासा देखिये
आप भी इस भीड़ में घुस कर तमाशा देखिये

जो बदल सकती है इस पुलिया के मौसम का मिजाज़
उस युवा पीढ़ी के चेहरे की हताशा देखिये

जल रहा है देश यह बहला रही है क़ौम को
किस तरह अश्लील है कविता की भाषा देखिये

मतस्यगंधा फिर कोई होगी किसी ऋषि का शिकार
दूर तक फैला हुआ गहरा कुहासा देखिये

– अदम गोंडवी

नीम (एजाडीरक्टा इंडिका)

श्री के.पी. सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

नीम मध्यम से बड़ी ऊँचाई वाला एक सदाबहार वृक्ष है लेकिन अधिक सूखे क्षेत्रों में थोडे समय के लिये इसकी पत्तियाँ गिर जाती है। इसका छत्र घना और गोल तथा पत्तियाँ चिकनी और छाल हल्की मोटी होती है, जो बाहर की ओर हल्की भूरी और भीतर की ओर लाल होती है। इसकी लकड़ी कठोर, टिकाऊ, और लाल रंग की होती है जिसको मकान, फर्नीचर व अन्य कई कामों मे उपयोग किया जाता है। इसकी छाल पत्तियाँ, फूल व गोंद स्वास्थयवर्धक एवं कीटनाशक दवाओं में प्रयोग किये जाते हैं। बीज से तेल निकलता है, जो साबुन व दवा बनाने के काम में लाया जाता है। इसकी कोमल शाखें उत्तम कोटि की दातुन के काम में लाई जाती है। इसकी पत्तियां कड़वी होती है लेकिन ऊँट तथा बकरी इसे बड़े चाव से खाते हैं।

भारतवर्ष में इस वृक्ष के प्राकृतिक रूप से उगने के स्थान को निश्चित रूप से बताना कठिन है। बर्मा के सूखाग्रस्त क्षेत्रों के खुले झाड़ीनुमा वनों में यह आम तौर से पाया जाता है। सहारनपुर में शिवालिक की पहाड़ियों व दक्षिण में कर्नाटक के वनों में भी यह प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। भारतवर्ष और बर्मा में विशेषतया सूखाग्रस्त क्षेत्रों में इसे खेती और घरों के आसपास उगाया जाता है, जहाँ से छिटक कर यह वन क्षेत्रों में उगने लगा है। यह सूखी और मध्यम सूखी जलवायु में सड़कों के किनारे छाया के लिए या शोभाकार वृक्ष के रूप में लगाये जाने के लिये बहुत ही उचित प्रजाति है, क्योंकि यह उन स्थानों में जहां पर वर्षा 450 से 810 मि0 मी0 प्रतिवर्ष और अधिकतम तापक्रम 49 सेन्टीग्रेड तक होता है, बहुत अच्छी प्रकार बढ़ता है। यह विभिन्न प्रकार की भूमि, यहां तक कि ऊसर भूमि में भी उग सकता है। काली मिट्टी में इसकी बढ़त बहुत अच्छी होती है परन्तु चिकनी मिट्टी में भी यह असफल नहीं होता।

इसमें मार्च से मई तक फूल आते हैं और इसके फल जून से अगस्त तक पकते हैं। पकने पर फल पीलापन लिए हुये हरे होते है। साधारणतया एक फल में एक ही बीज होता है परन्तु किसी किसी फल में दो बीज भी होते हैं। रोपिणी (नर्सरी) में एक हजार पौधे तैयार करने के लिये लगभग 1,200 बीजों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार अंकुरण (जरमिनेशन) लगभग 83 प्रतिशत होता है। बीज का उपयोग कर बीजों की अंकुरण शक्ति बहुत कम समय तक रहती है, इस लिये ताजा बीज के अंकुरण एकत्र कर, गूदा धोकर उसे तुरन्त मूलमुण्ड कटिंग, रूट सूट कटिंग, तथा पिंडी वाले पौधों से भी उचित सफलता प्राप्त हो रही है।

मुख्य जड़ शुंडाकार एवं मध्यम लम्बाई की होती है। सहायक जड़े रेशे–दार, मध्यम संख्या में और मुख्य जड़ की पूरी लम्बाई मे फैली रहती है। तना चिकना, सीधा या थोडा सा दबा हुआ होता है। पहले वर्ष पौधा मध्यम गति से बढ़ता है और प्राकृतिक रूप से साधारणतया वर्ष के अन्त तक 10–20 से0मी0 तक ऊँचा हो जाता है। निराई और मध्यम सिंचाई किये गये पौधे दूसरे वर्ष के अन्त में 60 से0मी0 और तीसरे वर्ष के अन्त में 2 मीटर तक ऊँचे हो जाते हैं, परन्तु बिना सिंचाई तथा निराई किये हुये पौधे दूसरे वर्ष के अन्त तक सामान्य ऊँचे हो पाते हैं। यदि पौधों की निराई न की गई तो उसकी बढ़त रूक जाती है और अंततः वे दबाव और पाले के असर से मर जाते हैं। उत्तर भारत में नीम के पौधों की बढ़त अक्टूबर–नवम्बर में रूक जाती है और नये कल्ले प्रायः मार्च में आते हैं। पौधे पाले को सहन नहीं कर सकते और यदि पाले से भूमि की सतह तक तना मर गया तो पुनः पनपना कठिन होता है। नीम प्रकाशपेक्षी (लाईट डिमान्डर) है, परन्तु इसमें युवा अवस्था में कंटीली झाड़ियों के बीच से ऊपर निकल आने की क्षमता है, और इस बात में यह सेमल से मिलता जुलता है।

प्राकृतिक रूप से बीज वर्षा ऋतु में भूमि पर गिर जाता है, और एक से दो सप्ताह के भीतर अंकुरित हो जाता है। यद्यपि नीम भारत में बहुत सीमित मात्रा तक देशज (इन्डीजिनियस) माना जाता है तथापि यह कुछ दृष्टान्तों को छोड़कर स्वच्छता पूर्वक प्राकृतिक रूप से उगता है।

नीम को पौधशालाओं में आसानी से उगाया जा सकता है लेकिन वनीकरण के प्रयोजनों के लिये पिंडी

वाले पौधों के अनुपात में सीधी बुआई से ज्यादा सफलता मिली है। बीज के एकत्रीकरण में काफी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। इसे जुलाई में जब बीज पूरी तरह पक गया हो सीधे पेड़ से एकत्र करना चाहिये और एक सप्ताह के भीतर बो देना चाहिए। पौधशाला में किसी प्रकार के पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं है। क्यारियां उठी हुई बनाई जायें। क्यारी से क्यारी के बीच लगभग 50 सें0 मी0, बीज से बीज के बीच लगभग 5 से0मी0 और लाईन से लाईन के बीच 10 से0मी0 की दूरी होनी चाहिये। बीज को चूहे व कीटों आदि से क्षति पहुंचने की सम्भावना होती है, इसलिए बोये गये बीजों को हल्की मिट्टी से ढक देना चाहिए। नर्सरी में उगाये गए पौधे वर्षा ऋतु में ही लगभग जब वे 10 से0मी0 ऊँचे और उनकी मूसला जड़ 15 से.मी. हो जाये, रोपण के योग्य हो जाते हैं। यदि उससे ऊँचे पौधों की आवश्यकता हो तो पौधों को एक वर्ष तक पौधशाला में रखना चाहिए। पौधालय में बीज को सीधे पोलीथीन थैलियों में बोकर भी पौधा तैयार किया जा सकता है।

नीम न केवल शोभाकार व छायाकार वृक्ष है बल्कि इसकी पत्तियाँ, फूल, फल, छाल, प्रकाष्ठ और शाखाएँ भी जन साधारण के लिये उपयोगी है, अतः वातावरणीय स्थिरता पैदा करने, छाया पहुँचाने व कुटीर उद्योग के लिए इस वृक्ष का भारी मात्रा में सड़कों के किनारे गांवों की बंजर भूमि में, कृषकों के घरों के आस–पास और अनुर्वरक सूखाग्रस्त वनों में लगाना आवश्यक है।

लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है।

मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है।

आख़िर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

– हरिवंशराय बच्चन

औद्योगिक वृक्ष महुआ : पुनरुत्पादन एवं प्रबंधन

डॉ. ममता पुरोहित
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

वनस्पतिक कुल सेपोटेसी का सदस्य महुआ आदिकाल से भोजन, मदिरा और तेल के रुप में आदिवासी समुदाय का अभिन्न अंग रहा है। मदिरा उत्पादन में गन्ने के शीरे के बाद महुआ फूलों का प्रमुख स्थान है। तेल उद्योग में महुआ के बीजों की अहम भूमिका है। हमारे देश में साल बीज एकत्रीकरण के बाद महुआ बीजों के एकत्रीकरण से प्रतिवर्ष लगभग 2,50,000 व्यक्तियों को रोजगार मिलता है तथा लगभग 14,00,00,000 व्यक्ति प्रतिवर्ष महुआ फूलों को भोजन के रुप में उपयोग करते हैं। अल्कोहल और तेल उद्योगों में महुआ के फूलों और बीजों की निरन्तर मांग से महुआ वृक्षों की

महुआ वृक्ष

संख्या में हो रही कमी चिन्ता का विषय है। बड़े खेद की बात है कि औद्योगिक प्रजाति होने के बाद भी महुआ वृक्षों की निरन्तर हो रही कमी पर शासन एवं निजी निकायों द्वारा अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। विभिन्न प्रकार की जलवायु में वृद्धि कर सकने के बावजूद भी देश में कहीं भी बड़े पैमाने पर महुआ का वृक्षारोपण नहीं किया गया है। शासन और निजी निकायों को चाहिए कि विभिन्न राज्यों में महुआ वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करने के लिए अविलम्ब आकर्षक परियोजनायें कार्यान्वित करें।

वैज्ञानिक नामः महुआ का वानस्पतिक नाम *मधुका लेटीफोलिआ* है। इसकी दो उप–प्रजातियॉ पायी जाती हैं –

1 ***मधुका लॉंगीफोलिआ* उप–प्रजाति *लॉंगीफोलिआ* –** इस उप प्रजाति की पत्तियॉ लम्बी एवं पतले वृत्त वाली होती हैं। यह दक्षिण भारत में बहुतायत में पायी जाती है।

2 ***मधुका लॉंगीफोलिआ* उप–प्रजाति *लॉंगीफोलिआ* –** इस उप प्रजाति की पत्तियाँ चौड़ी और मोटे वृत्त वाली होती हैं। यह पूरे भारत में पायी जाती है।

वितरणः भारत में महुआ शीतोष्ण एवं शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों को छोड़कर सभी प्रकार के वनों में पाया जाता है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि राज्यों में महुआ सामान्य तौर पर पाया जाता है। वनों के बाहरी इलाकों में भी यह प्रजाति बहुतायत में पायी जाती है।

वृक्ष की प्रवृत्तिः महुआ एक पर्णपाती या अर्ध–सदाबहार वृक्ष है। वृक्ष की प्रवृत्ति इस प्रकार है–

वृद्धिः महुआ का पौधा बहुत धीरे–धीरे बढ़ता है। एक वर्षीय पौधे की ऊँचाई मात्र 7–8 से0मी0 होती है। ऐसा अनुमान है कि 2.5 मी0 का घेरा/मोटाई बनाने में इसे 300 से 350 वर्ष लगते हैं।

मृदाः महुआ विभिन्न प्रकार की मृदा में पाया जाता है, रेतीली और एल्यूवियल मृदा में यह बहुत अच्छी वृद्धि करता है परन्तु अनुकूल मृदा होने पर भी सतही जड़ों के कारण दीर्घकालीन शुष्क दशाओं में जीवित नहीं रह पाता है। साल के जंगलों में यह सघन काली मिट्टी तथा केलकेरियस मृदा में भी पाया जाता है।

प्रकाशः प्रबल प्रकाशप्रेमी होने के कारण छाया में इसकी वृद्धि रुक जाती है।

पुष्पीकरण एवं पुष्प : उत्तर गंगटीक मैदानों में 10 वर्षीय और मध्य भारत में 20 वर्षीय वृक्षों में पुष्पीकरण शुरु होता है तथा

यह क्रम 200 वर्ष की आयु तक जारी रहता है। लम्बे वृन्त एवं मासल दलपुंज वाले दूधियां सफेद या हरे रंग के सुगंधित पुष्प फरवरी–अप्रैल में शाखाओं के सिरे पर गुच्छे में पाये जाते हैं। पत्तियाँ आने के पहले या तुरन्त बाद मांसल दलपुंज गिर जाता है।

परागण: महुआ के पुष्पों में परागण वायु के द्वारा होता है। इस प्रकार के पुष्पों को एनिमोफिलस पुष्प कहते हैं।

फल: प्रायः 8 बीजाण्डों में से एक ही बीजाण्ड में बीज विकसित होता है। उत्तर भारत में परिपक्व फलों के गिरने का समय मई–जुलाई और दक्षिण भारत में अगस्त–सितम्बर होता है।

क्षेत्र: पुष्पों की तरह पत्तियाँ भी शाखाओं के सिरे पर गुच्छा बनाती है तथा शाखायें मिलकर बड़ा सा गोल छत्र बनाती हैं। पुरानी पत्तियाँ फरवरी–अप्रैल में गिर जाती हैं तथा मार्च–अप्रैल में पुष्पीकरण के दौरान छत्र प्रायः पत्रविहीन हो जाता है।

बीज वर्ष : प्रत्येक 3 वर्ष में 1 या 2 अच्छे बीज वर्ष होते हैं। बीज में 2 स्पष्ट करनल होते हैं जो तेल के स्त्रोत हैं।

प्राकृतिक पुनरुत्पादन: महुआ का प्राकृतिक उत्पादन बीज और कापिसिंग दोनों प्रकार से होता है। मानसून की पहली बारिश के बाद बीज अंकुरित हो जाते हैं। कुछ नवोद्भिद लम्बी–लम्बी घास–खरपतवार, जंगल में लगी आग, जानवरों द्वारा चराई व रोंदे–कुचले जाने के कारण नष्ट हो जाते हैं तथा शेष वृद्धि कर जाते हैं। यह देखा गया है कि कापिस पुनरुत्पादन ज्यादा सफल होता है एवं शाखाओं की वृद्धि तीव्रता से होती है।

रोपणी में पौध तैयार करना: बीजों से पौध तैयार करने के लिए आवश्यक सावधानी इस प्रकार है:

बीज एकत्रीकरण एवं भंडारण: वृक्ष की शाखाओं को हिलाकर गिरे हुए पके फल इकट्ठे किये जाते हैं। फलों को दबाकर निकाले गये बीज 5–6 प्रतिशत नमी होने तक सुखाये जाते हैं। चूंकि बीज तैलीय होते है इसलिए भंडारण के दौरान इनकी उत्तरजीविता (वायबिलिटी) जल्दी खत्म हो जाती है। एक किलोग्राम में लगभग 750 बीज होते हैं जिनसे लगभग 215 नवोद्भिद प्राप्त होते हैं। बीजों की अंकुरण क्षमता 13 से 57 प्रतिशत तक होती है।

क्यारी: रोपणी में क्यारियों की मिट्टी रेतीली होनी चाहिए यद्यपि महुआ सभी प्रकार की मिट्टी में वृद्धि करता है।

बीज बुआई: बीजों के अंकुरण के लिए किसी उपचार की आवश्यकता नहीं होती है। एकत्रीकरण के पश्चात् बीजों को तुरन्त क्यारियों में बोकर लगभग 2 से0मी0 मोटी मिट्टी की परत से ढककर सिंचाई कर देना चाहिए। बीजों में 8–10 दिन के अन्दर अंकुरण शुरु हो जाता है। बीज मृदा मिश्रण से भरे पालीथीन बेग या प्लास्टिक बाल्टियों में भी बो सकते हैं।

स्थानान्तरण: एक माह की आयु वाले नवोद्भिदों को क्यारियों से निकालकर पोलीथीन बैग/बाल्टियों आदि में वृक्षारोपण होने तक संभाल कर रखते हैं। स्टम्प वृक्षारोपण के लिए एक माह के नवोद्भिदों को मदर बेड्स से निकालकर ट्रांसप्लान्ट बेड्स में 20–25 से0मी0 की दूरी पर लगा देते हैं।

खाद/उर्वरक: पालीथीन बैग/बाल्टियों आदि में बीज बोने या मदर बेड से निकाले नवोद्भिदों को जीवित रखने के लिए मिट्टी, रेत और पची हुई गोबर की खाद (एफ0वाय0एम0) का मिश्रण 3: 2: 1 के अनुपात में उपयोग करते हैं।

सिंचाई: बीज बोने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देना चाहिए तथा उचित वृद्धि के लिए निश्चित अन्तरालों पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

निदाई/गुड़ाई: प्रथम दो वर्षों तक पौधों से आसपास की घास निकालते रहना चाहिए तथा खुरपी से पौधों के चारों तरफ थाल बनाकर मिट्टी की गुड़ाई कर देना चाहिए।

वृक्षारोपण: वृक्षारोपण की सफलता हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए –

वृक्षरोपण स्थल: चूंकि महुआ एल्यूविअल मृदा में अच्छी तरह

वृद्धि करता है इसलिए वृक्षारोपण स्थल की मिट्टी, रेतीली, बोल्डरी या कठोर लेटरिटिक प्रकार की होना चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों के गर्म स्थानों का चयन नहीं करना चाहिए क्योंकि सतही जड़ों के कारण नवोद्भिद गर्म एवं शुष्क स्थानों में मर जाते हैं। ऐसे स्थानों का चयन भी रोपणी बनाने के लिए नहीं करना चाहिए जहाँ बार–बार सूखा और तुषार/पाला पड़ता हो।

गड्ढे तैयार करना: वृक्षारोपण स्थल पर लगे ठूंठ, झाड़ियों आदि को काटकर जला देना चाहिए। अब 9 मी0 x 9 मी0 या 10 मी0 x 10 मी0 की दूरी पर मई माह में 60^3 से0मी0 या 45^3 से0मी0 या 30^3 से0मी0 माप के गड्ढे खोदकर खुला छोड़ देना चाहिए ताकि दीमक एवं अन्य कीटाणु नष्ट हो जायें।

गड्ढे भरना: गड्ढों का आधा निचला भाग गड्ढा खुदी मिट्टी से तथा आधा ऊपरी भाग ह्यूमस से भरपूर मिट्टी, रेत और गोबर की पची हुई खाद (एफ0वाय0एम0) के 3: 2: 1 के अनुपात में बने मृदा मिश्रण से भर देना चाहिए। गोबर की खाद ज्यादा होने पर पौधे मर जाते हैं।

पौध रोपण/सीधे बीज बुआई: महुआ के वृक्षारोपण के लिए बारिश के दिनों में रोपणी में तैयार किये गये पौधे लगाना चाहिए। एक वर्षीय पौधों का वृक्षारोपण करना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में सीधे ही 4–5 बीज भी बो सकते हैं।

स्टम्प वृक्षारोपण: स्टम्प तैयार करने के लिए एक वर्ष पुराने पौधों का चयन करना चाहिए। तैयार स्टम्प को 30^3 से0मी0 के गड्ढों में लगाना चाहिए।

खाद: मृदा मिश्रण में मिलायी गोबर की पची हुई खाद (एफ0वाय0एम0) के अलावा अलग से खाद की जरुरत नहीं पड़ती है।

सिंचाई: अक्टूबर से जनवरी तक 15 दिन में एक बार, फरवरी से मार्च तक सप्ताह में एक बार और अप्रैल से जून तक एक दिन के अन्तराल पर सुबह–शाम प्रत्येक पौधे में 15 लीटर पानी डालना चाहिए।

निदाई–गुड़ाई: पौधे के चारों तरफ आवश्यकतानुसार निदाई–गुड़ाई करते रहना चाहिए।

वृक्ष रक्षक: जानवर आदि से रक्षा के लिए पौधों के चारों तरफ बांस, टहनियों या लोहे की जाली से बने वृक्ष रक्षक लगाना चाहिए।

हानिकारक कीट एवं रोग: महुआ को हानि पहुँचाने वाले कीट एवं कवक इस प्रकार हैं –

बीज/फल: *एस्परजिलस फ्लेवस, एस्परजिलस नाइजर, पेनीसीलियम* स्पी0 एवं *स्टेथमोपोडा बेसीप्लेक्टरा* महुआ के बीज और फलों को नष्ट करते हैं।

लीफ स्पाट एवं लीफ ब्लाइट: रोपणी व वृक्षारोपण दोनों स्थालों पर महुआ में *पेस्टिलोटीओप्सिस डिकाटा, सरकोस्पोरा हाटीकोला* और *पेस्टेलोसिआ* स्पी0 लीफ स्पाट और लीफ ब्लाइट नामक रोग फैलाते हैं। इसी तरह *स्कोपिल्ला इकाइनुलेटा*, लीफ रस्ट नामक गंभीर रोग पैदा करता है।

हार्ट राट: *पॉलीस्टीकट्स स्टीनहीलीएनस* नामक कवक इमारती लकड़ी नष्ट करती है और *फोम्स केरियोफिल्ली* हार्ट राट नामक रोग करती है।

परजीवी: डेन्ड्रोफ्थोई *फलकाटा* एक गंभीर परजीवी है जिसके आक्रमण से महुआ की वृद्धि और उत्पादन प्रभावित होता हैं। पुष्पक्रम और फूलों में कमी हो जाती है। धीरे–धीरे वृक्ष कमजोर होकर मर जाता है।

उपचार: फल, बीज और वृक्ष की रक्षा के लिए संक्रमण के अनुसार–

1 संमित शाखाओं को काट कर अलग कर देना चाहिए।
2 परजीवी को नष्ट करने के लिए 2,4 डी और ग्रेमोक्सोन नामक वीडीसाइड का छिड़काव करना चाहिए।
3 इनसेक्टीसाइड और फंजीसाइड दवाओं का उपयोग करना चाहिए।

वृक्षों का प्रबंधन एवं उत्पादन: वनों एवं वृक्षारोपणों में महुआ वृक्षों का प्रबंधन फूलों एवं बीजों के लिए किया जाता है। उत्पादन वृक्ष की ऊँचाई, तने का घेरा, वृक्ष की आयु, स्थल विशेष की जलवायु, वर्षा आदि पर निर्भर होता है। 10 वर्ष की

आयु से 60 वर्ष की आयु तक के वृक्षों से प्रतिवर्ष प्रति वृक्ष 5 कि0ग्रा0 से 150 कि0 तक फूल व 5 कि0ग्रा0 से 50 कि0ग्रा0 तक बीज प्राप्त होता है। यह आंका गया है कि देश में लगभग 2 मिलियन टन महुआ फूलों का उत्पादन होता है।

उपयोग : औद्योगिक उत्पाद होने के कारण महुआ के फूल, फल और बीजों से अच्छी आय प्राप्त होती है। यद्यपि महुआ की लकड़ी उत्तम इमारती काष्ठ है परन्तु फूल एवं फलों के लिए वृक्ष को काटते नहीं है। इसके विभिन्न भागों के उपयोग इस प्रकार हैं –

जड़ : अल्सर के उपचार में जड़ का उपयोग किया जाता है।

छाल : छाल में 17 प्रतिशत टेनिन होता है जो टेनिंग और रंगाई में काम आता है। छाल मधुमेह, गलसुआ, रक्तस्त्राव, पेट दर्द, गठिया, खाज–खुजली, घाव तथा मसूड़ों के विकार के उपचार में उपयोगी है।

पत्तियाँ: पत्तियाँ दोना–पत्तल बनाने के काम में आती हैं। इनमें 37 प्रतिशत तक पचने वाला पौष्टिक तत्व होता है जिससे ये उत्तम चारा है। पत्तियों की राख, घी या मक्खन में मथकर जले हुए स्थान पर लगाने से आराम मिलता है।

फूल: महुआ के फूलों में मक्का से अधिक कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन्स, विटामिन्स व मिनरल होने तथा विषाक्त प्रभाव न होने से ये आदिवासी एवं ग्रामीणों का प्रिय भोजन है। अल्कोहल उत्पादन में महुआ फूलों का प्रमुख स्थान है। प्रति टन फूलों से लगभग 340 लीटर अल्कोहल प्राप्त होता है जो एंजिन ईधन के रुप में काम आता है। सिरका बनाने व पालतू पशुओं के चारे को महुआ के फूल मिलाकर पौष्टिक बनाया जाता है। फूल कफ, ब्रोन्काइटिस, भूख बढ़ानें, शान्तिकर व गर्मी शमन में उपयोगी हैं। फूलों में 18 प्रतिशत नमी, 6.4 प्रतिशत प्रोटीन, 0.4 प्रतिशत वसा, 70 प्रतिशत शर्करा, 1.4 प्रतिशत रेशा, 2.1 प्रतिशत राख तथा 0.8 प्रतिशत मिनरल्स, विटामिन्स व अन्य तत्व होने के कारण शहरी क्षेत्रों में इसके प्रोसेस्ड फार्म की खपत बढ़ाने के लिए अनुसंधान संस्थानों द्वारा प्रयास किया जा रहा है।

फूलों की खली: फूलों की खली से कीटनाशक दवाई बनती है जो गोल्फ के मैदानों और लॉन की घास सुरक्षित रखने तथा बाल धोने के काम आती है। गोबर के साथ खली का उपयोग बायोगैस और उर्वरक के रुप में किया जाता है।

फल: महुआ के फल कच्चे या पकाकर खाये जाते हैं। फलों में 0.03 प्रतिशत सारभूत तेल होता है। 2.5 टन सूखे फलों से लगभग 110 लि0 शुद्ध अल्कोहल प्राप्त होता है। गूदा चारे के रुप में काम आता है।

बीज: बीजों में 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक वसीय तेल होता है जो मुख्यतः लान्ड्री का साबुन बनाने के काम आता है। आक्सीकृत घटक के कारण इसमें दुर्गन्ध आती है इसलिये नहाने का साबुन नहीं बनाया जाता है। शुद्ध किया हुआ तेल कुकिंग, कान्फेक्शनरी, चाकलेट आदि बनाने तथा स्नेहक, ग्रीस, मोमबत्ती एवं स्टिएरिक अम्ल तथा अल्कोहल के उत्पादन में काम आता है। यह औषधी के रुप में कब्ज, सिर दर्द, रिह्यूमेटिस्म, त्वचा रोग, पाइल्स, हिमेराइड्स आदि के उपचार में उपयोगी है। बीजों में 22 प्रतिशत घुलनशील (पानी) गोंद होती है।

बीज हस्क: यह सक्रिय कार्बन तैयार करने तथा ब्लीचिंग के काम आता है।

बीजों की खली : गोबर के साथ खली का उपयोग बायोगैस और जैव उर्वरक बनाने में करते हैं। खली से निकाला गया सेपोनिन हारवेस्टिंग के पश्चात् फल साग–सब्जी, दाल व अनाज को नष्ट करने वाली *एस्परजिलस केन्डीडस, पेनीसीलियम* स्पी0 *फ्यूजेरियम* स्पी0 और *ट्राकोडरमा* स्पी0 की वृद्धि को रोकता है। यह चारे के रुप में तथा प्लास्टिक उद्योग में काम आती है। बिहार, उड़ीसा और प0 बंगाल के आदिवासी खली का उपयोग मछली मारने और सर्प दंश के उपचार में करते हैं। इसका कैलोरीफिक मान 469.8 कैलोरी / 100 ग्राम होता है।

खली में घुलनशील कार्बोहाडट्रेड 55.83 प्रतिशत, ईथर एक्सट्रेट 9.76 प्रतिशत, क्रूड प्रोटीन 20.81 प्रतिशत, क्रूड फाइबर 8.10 प्रतिशत, फास्फोरस 0.52 प्रतिशत, पोटाश 1.50 प्रतिशत, सेपोनिन 8.92 प्रतिशत तथा राख 5.49 प्रतिशत होती है।

काष्ठ : महुआ की लकड़ी पुल, जहाज की पेंदी, गाड़ी, मकान, बल्ली, पहिया, फर्नीचर, चाय पत्ती के पेकिंग केस आदि बनाने के काम आती है। यह एक उत्तम ईधन है यद्यपि जलाऊ लकड़ी के लिए वृक्षों को नहीं काटा जाता है। महुआ की सेपवुड का कैलोरीफिक मान 4890–4978 कि0 कैलोरी प्रति कि0ग्रा0 तथा हार्टवुड का कैलोरीफिक मान 5005–5224 कि0 कैलोरी प्रति कि0ग्रा0 होता है।

वृक्षः मृदा सुधारक एवं पर्यावरण संरक्षक के रुप में महुआ ऊसर भूमि या परती भूमि के लिए उपयुक्त प्रजाति है जो बहुत कम कार्बनिक पदार्थ, छारीयता और चट्टानी होने से उपजाऊ नहीं होती है। अतः सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के अन्तर्गत सामुदायिक परती भूमि, मैदानी इलाकों में इसका वृक्षारोपण सार्थक होगा।

विक्रय व्यवस्था : महत्वपूर्ण वानिकी फसल होने के बाद भी महुआ के बीजों के एकत्रीकरण व परिवहन में बहुत सी कठिनाईयाँ हैं। कुल उत्पादन की तुलना में वनों से बहुत कम बीज इकट्ठा हो पाता है। आदिवासियों एवं ग्रामीणों द्वारा अथक परिश्रम के बाद आस–पास के गाँवों और वनों से एकत्रित फूल, फल एवं बीज बहुत ही कम दामों में बिचौलियों द्वारा खरीदा जाता है। कहीं–कहीं तो मात्र 50 पैसे प्रति किलो के हिसाब से बीज एवं फूल इकट्ठे करवाये जाते हैं तथा सीजन न होने पर भी फूल मात्र 3 रुपये प्रति किलो के हिसाब से खरीदे जाते हैं। स्थानीय तेल घानियों में तेल नहीं निकाले जाने से करनल बहुत से बिचौलियों से होते हुए टर्मिनल मार्केट में पहुँचते हैं। विभिन्न राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश में मऊरानीपुर, महोबा, ललितपुर, भरवारी और इलाहाबाद, मध्य प्रदेश में अलीराजपुर, शाजापुर, उज्जैन, बसौदा, बैतूलगंज, भोपाल, इटारसी, रायपुर, कन्नौज, महाराष्ट्र में चांदा, नन्दुरबार और नासिक, गुजरात में गोधरा, आंध्र प्रदेश में राजमुंदरी, विशाखापट्टनम, बोब्बीली और पार्वतीपुरम तथा कर्नाटक में तुमकुर में महुआ बीज के टर्मीनल मार्केट हैं। इसके अलावा बहुत बड़े पैमाने पर व्यापारियों और तेल मालिकों के बीच लेन देन कानपुर, बम्बई और कलकत्ता में होता है।

सामाजिक–आर्थिक उत्थान : आदिवासी एवं गरीब ग्रामीणों का भोजन होने के अलावा महुआ फूल एवं फलों का एकत्रीकरण बड़े पैमाने पर इन समुदायों को रोजगार दिलाता है तथा अल्कोहल एवं तेल उद्योगों की कच्चे माल की मांग पूरी करता है। दिन–प्रति–दिन कम हो रहे महुआ वृक्षों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए ऐसी परियोजनाओं को क्रियान्वित करना चाहिए जिससे आदिवासी बहुल क्षेत्रों और ग्रामीण इलाकों में महुआ का पुनरुत्पादन बढ़ाकर आदिवासी एवं ग्रामीणों के आर्थिक स्तर में सुधार किया जा सके। राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) के अनुमोदनानुसार अनिवार्य रुप से सड़कों, नहरों आदि के किनारे महुआ का वृक्षारोपण होना चाहिए। प्रत्येक राज्य को चाहिये कि उसके वानिकी कार्यक्रमों में महुआ पुनरुउत्पादन परियोजना अतिशीघ्र लागू हो। ग्रामीण एवं आदिवासियों द्वारा बीज इकट्ठा करने एवं करनल अलग करने का तरीका उचित न होने से सुखाने व भंडारण के दौरान बहुत से बीज नष्ट हो जाते हैं तथा *एस्परीजलस फ्लेव्स* एवं *राइजोपस* प्रजाति की कवक तथा *औराइजीफिलस सुरीनेमेनसिस* कीट द्वारा करनल संक्रमित हो जाते हैं। एकत्रीकरण और सुखाने के दौरान बहुत बड़े अनुपात में करनलों को नष्ट होने से बचाने के लिए आदिवासियों एवं ग्रामीणों को एकत्रीकरण, भंडारण आदि का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। करनल 5–6 प्रतिशत नमी होने तक सुखाये जाते हैं। सूखे करनलों को सिफोस (एल्यूमीनियम फास्फाइड) के साथ गनी बोरों में भंडारित करना चाहिए। परिवहन में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने तथा बिचौलियों द्वारा गरीब आदिवासियों एवं ग्रामीणों का आर्थिक शोषण रोकने के लिये महुआ के फूल, फल, बीज आदि की खरीदी निर्धारित दर पर सरकारी केन्द्रों पर की जानी चाहिए।

लार्वा परिजीव्याभ अपैन्टेलिस स्प0 की हानिकारक कीटों के जैविक नियन्त्रण में भूमिका

डॉ. मौहम्मद यूसुफ
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

एवं

कुमारी नीतू वैश्य
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

प्राचीन काल से ही मानव जगत में वनों की उपयोगिता एवं महत्ता एक अटूट सत्य रहा है। वन जहॉ एक ओर अशुद्ध वायु को शुद्ध कर प्राण वायु आक्सीजन प्रदान करते हैं। वहीं दूसरी ओर काष्ठ और अकाष्ठ वन उत्पादों से मानव जाति का कल्याण करते हैं। वनों में पदार्पण करते ही हमारे चारों ओर कीटों का एक अद्भुत संसार होता है। जहाँ एक ओर रंग बिरंगे पंखों वाली तितलियाँ हमें सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं। भौंरे की गुंजन हमारे कानों को सुहानी लगती है। वहीं दूसरी ओर मच्छरों की करकश ध्वनि तथा उनकी रक्त चूसने की प्रवृत्ति हमें मलेरिया जैसी बीमारी के भय से चिंतित कर देती है। कभी घास पर फुदकता टिड्डा हमारा ध्यान अपनी ओर खींचता है तो कभी पेड़ों की पत्तियों को खाते लार्वे पादप प्रेमियों तथा वृक्ष प्रेमियों की चिंता का कारण बन जाते हैं। कीटों के इस पीड़ा दायक तथा हानिकारक कीट–संसार के अतिरिक्त लाभदायक कीटों का मनमोहक संसार भी है। जिसमें फूलों से रस चूसकर शहद बनाने वाली मधुमक्खियाँ तथा अपनी लार से रेशम का धागा बनाने वाला रेशम–कीट और लाख का कीट आते हैं।

हानिकारक कीटों का नियन्त्रण सदैव ही कीट वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। रासायनिक कीट–नाशकों के प्रयोग से हानिकारक कीटों का नियन्त्रण तुरन्त एवं अति प्रभावशाली ढंग से हो जाता है। परन्तु कीट–नाशकों के छिड़काव से हानिकारक कीटों के साथ–साथ लाभदायक कीटों की भी मृत्यु हो जाती है तथा पारिस्थितिकीय तन्त्र में असंतुलन एवं रासायनिक प्रदूषण का खतरा इसके दुष्परिणामों के रूप में सामने आते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में कीटों के जैविक नियन्त्रण (Biological Control) ने भी समेकित पीड़क प्रबन्धन (Integrated Pest Management) में मुख्य कड़ी के रूप में, कीट नियन्त्रण (Insect control) के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की है। कीटों के जैविक नियन्त्रण में परभक्षी तथा परजीव्याभ कीटों की विशेष भूमिका है। पर भक्षी कीटों में कोक्सीनेल्लिड बीटिल्स (Coccinellid Beetles) का बड़ा समूह आता है। ये परभक्षी कीट, हानिकारक कीटों का शिकार कर उनका भोजन के रूप में भक्षण करके हानिकारक कीटों की संख्या पर नियन्त्रण करते हैं। परजीव्याभ कीटों में मधुमक्खी–गण (Order: Hymenoptera) के अधिकुल चाल्सीडोआइडिया (Super family: Chalcidoidea) तथा अधिकुल इकनियोमोनोआइडिया (Super family : Ichneumonoidea) के कीट आते हैं। परजीव्याभ कीटों को तीन विशेष समूहों में बाँटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में अण्डा परजीव्याभ (Egg parasitoids), दूसरी श्रेणी में लार्वा परजीव्याभ (Larval parasitoids) तथा तीसरी श्रेणी में प्यूपा परजीव्याभ (Pupal parasitoids) आते हैं।

अण्डा परजीव्याभ (Egg parasitoids): मुख्यरूप से कुल ट्राइकोग्रेम्मेटिडी (Family: Trichogrammatidae) तथा कुल माइमेरिडी (Family: Mymaridae) के कीट, अण्डा परजीव्याभ होते हैं। इनमें ट्राइकोग्रेम्मा स्प0 (*Trichogramma sp.*) विश्व ख्याति को प्राप्त अण्डा परजीव्याभों का समूह है। जो कि गन्ना बेधक (Sugar cane borer), कपास फल कृमि (Cotton boll worm), पत्ता गोभी कृमि (Cabbage semilooper) तथा सागौन निष्पत्रक (Teak defoliator) एवं सागौन पत्रक–कंकालीकारक (Teak leaf skeletonizer) जैसे हानिकारक कीटों

सागोन पत्रक–कंकालीकारक, *यूटेक्टोना मैकाइरेलिस*

के जैविक नियंत्रण में बहुत उपयोगी अण्डा परजीव्याभ सिद्ध हुए हैं। हानिकारक कीट की मादा जब पोषक पौधे पर इस आशय से अण्डा देती है कि उन अण्डों से लार्वे निकलकर पोषक पौधे की पत्तियों का भक्षण कर विकसित होंगे, तब अण्डा परजीव्याभ की मादा अपने अण्डा निक्षेपक के छिद्रक–तन्त्र द्वारा हानिकारक कीट के अण्डों में छिद्र करके अपने अण्डे प्रविष्ट करा देती है। जिनसे लार्वे निकलकर हानिकारक कीट के अण्डे के भोज्य पदार्थ पर अपना भरण पोषण कर विकसित होने लगते हैं। इस प्रकार अण्डा परजीव्याभ, अण्डा अवस्था में ही हानिकारक कीटों की वंश वृद्धि रोक कर अपनी वंश वृद्धि करके, हानिकारक कीटों का जैविक नियंत्रण करते हैं।

लार्वा परजीव्याभ (Larval parasitoids): कुल ब्रेकोनिडी (Family Braconidae) के परजीव्याभ मुख्य रूप से लार्वा परजीव्याभ होते हैं। *अपैन्टेलिस स्प0* (Apanteles sp.) भी इसी कुल के लार्वा परजीव्याभ हैं। जो अनेकों हानिकारक कीटों के जैविक नियन्त्रण के लिए उपयोगी हैं। इनमें मुख्य रूप से सागोन निष्पत्रक (Teak defoliator), सागोन पत्रक–कंकालीकारक (Teak leaf skeletonizer), शीशम निष्पत्रक (Shisham defoliator) तथा महानीम जाला–कृमि (Ailanthus web worm) आदि प्रमुख हैं। जिनके जैविक नियंत्रण में *अपैन्टेलिस* स्प0 की मुख्य भूमिका है।

लार्वा परजीव्याभ *अपैन्टेलिस* स्प0 की मादा हानिकारक कीटों के लार्वा को अपनी टांगों में जकड़ लेती है। और उसके शरीर को अपने अण्डा निक्षेपक के छेदक तन्त्र (Drilling system) से छेद कर उसमें अपना अण्डा प्रविष्ट करा देती है। हानिकारक कीट का लार्वा परजीव्याभ की जकड़ से बच निकलने का पूर्ण प्रयास करता है। कभी–कभी हानिकारक कीट के लार्वे अपने दांतों से कुचलकर परजीव्याभ की मादा को मार डालने में भी सफल हो जाते हैं। जब एक बार परजीव्याभ के अण्डे हानिकारक कीट के लार्वा के शरीर में प्रविष्ठ कर जाते हैं तो इन अण्डों से परजीव्याभ के लार्वे निकलकर हानिकारक कीट के लार्वों के तरल पदार्थ पर अपना भरण पोषण कर विकसित होने लगते हैं तथा हानिकारक कीट के लार्वे मर जाते हैं। परजीव्याभ के पूर्ण विकसित लार्वे पुनः हानिकारक कीट के लार्वों की त्वचा को काटकर बाहर निकल आते हैं तथा प्रायः पोषक लार्वों की त्वचा से चिपक कर कुकून बनाते हैं। जब एक पोषक लार्वे में अनेक परजीव्याभ लार्वे विकसित होते हैं तो वे पोषक लार्वे पर समानान्तर या परिधीय क्रम में कुकून बनाते हैं।

पूर्ण विकास के बाद इन कुकूनों से सैकड़ों की संख्या में वयस्क लार्वा परजीव्याभ निकल आते हैं और पुनः अपने जीवन चक्र को दोहराने की तैयारी में लग जाते हैं। इनकी मादा उचित पोषक लार्वों की खोज में खेतों तथा जंगलों में दूर–दूर तक उड़कर चली जाती हैं तथा उचित लार्वे मिलने पर उनमें अपने अण्डे देकर अपनी वंश वृद्धि कर हानिकारक कीटों के लार्वों को मारकर, हानिकारक कीटों का जैविक नियन्त्रण करती हैं।

प्यूपा परजीव्याभ (Pupal parasitoids): कुल इकनियोमोनिडी (Family: Ichneumonidae) के कीट

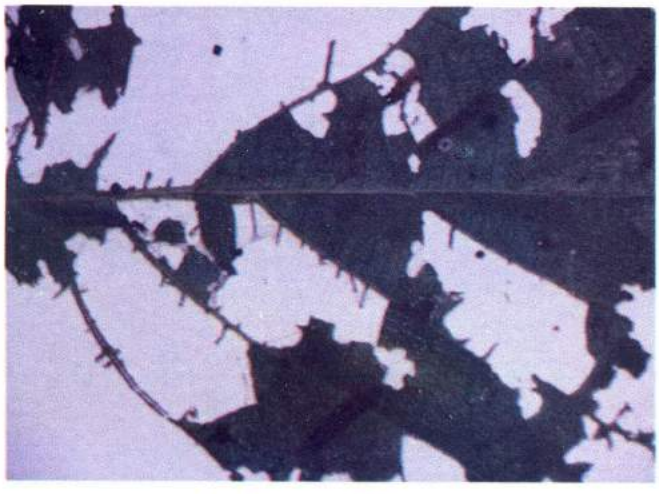

सागोन निष्पत्रक, *हिब्लिया प्यूरा*

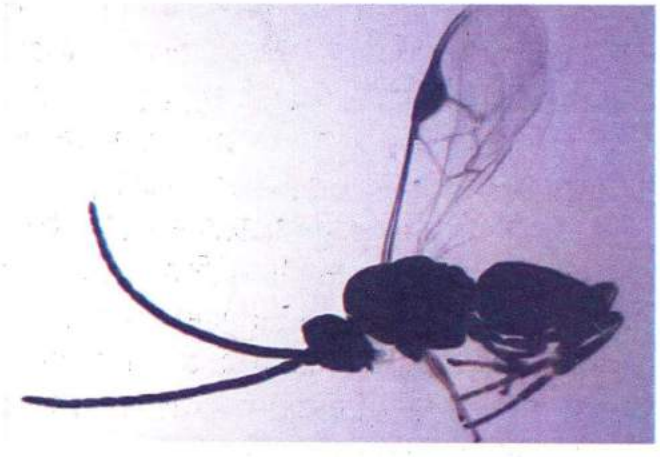

लार्वा परजीव्याभ *अपैन्टेलिस* स्प0

प्यूपा परजीव्याभ की श्रेणी में आते हैं। इनकी मादा भी हानिकारक कीटों के लार्वों में अपना अण्डा प्रविष्ठ करा देती है। अण्डों से परजीव्याभ के लार्वे निकलकर हानिकारक कीटों के लार्वों के अन्दर तरल पदार्थ पर अपना भरण पोषण करते हैं और पूर्ण विकसित होने पर पोषक लार्वे के कुकून के भीतर अपना कुकून बनाते तथा सम्पूर्ण रूप से वयस्क के रूप में विकसित होने पर कुकून को काटकर वयस्क परजीव्याभ बाहर निकल आते हैं। क्रीमेस्टस हैपाली (*Cremastus hapaliae*) सागौन निष्पत्रक का एक अच्छा प्यूपा परजीव्याभ है। *जैन्थोपिम्पला सेरा* (*Xanthopimpla cera*) बाँस निष्पत्रक (Bamboo defoliator) का एक महत्वपूर्ण प्यूपा परजीव्याभ है।

अपैन्टेलिस स्प0 (*Apanteles* sp.) लार्वा परजीव्याभ का जीवन चक्र

अपैन्टेलिस स्प0 के वयस्क नर तथा मादा पूर्ण विकसित होकर कुकून से बाहर आकर प्रजनन तथा निषेचन की क्रिया में भाग लेते हैं। तदुपरान्त *अपैन्टेलिस* स्प0 की मादा उचित हानिकारक कीट के पोषक लार्वों को खोजकर उनमें अपने अण्डे प्रविष्ठ करा देती हैं। एक दिवस की अवधि में इनसे लार्वे निकलकर हानिकारक लार्वों के अन्दर विकसित होने लगते हैं। लार्वा अवस्था 6 से 8 दिन की होती है। इस अवस्था के पूर्ण होने पर लार्वे हानिकारक लार्वों की त्वचा को काट कर बाहर आते हैं और 1 से 3 दिनों में कुकून बनाते हैं। और इस कुकून में अपना प्यूपा बनाकर विकास का अगला चरण पूरा करते हैं और फिर इस कुकून को काटकर वयस्क *अपैन्टेलिस* स्प0 बाहर आ जाते हैं इस प्रकार 9 से 11 दिनों में इनका जीवन चक्र पूर्ण हो जाता है।

अपैन्टेलिस स्प0 परजीव्याभों का प्रयोगशालाओं में वृहत्त गुणन

अपैन्टेलिस स्प0 परजीव्याभों को लाखों की संख्या में खेतों और जंगलों में हानिकारक कीटों के जैविक नियन्त्रण के लिए छोड़ने के उद्देश्य से इनका वृहत्त–गुणन (Mass multiplication) किया जाता है। *अपैन्टेलिस* स्प0 की विभिन्न जातियों के प्रयोगशाला वृहत्त गुणन के लिए *काइलो पार्टेलस* (*Chilo partellus*), *काइलो इनफसकेटेलस* (*Chilo infuscatellus*), *बाइस्सेटिया स्टेनिएल्ला* (*Bissetia steniella*) तथा *कार्सेरा सीफेलोनिका* (*Corcyra cephalonica*) नामक कीटों को विशाल संख्या में प्रयोगशालाओं में पालकर उनके लार्वों पर अपैन्टेलिस स्प0 का परजीवीकरण कराकर इनको हजारों तथा लाखों की संख्या में गुणन किया जा सकता है।

अपैन्टेलिस स्प0 लार्वा परजीव्याभों को खेतों तथा वनों में छोड़ना

प्रयोगशालाओं में वृहत्त गुणन के उपरान्त *अपैन्टेलिस* स्प0 के परजीव्याभों के कुकून काटकर बाहर आते ही हानिकारक कीटों के जैविक नियन्त्रण के लिए खेतों अथवा

लार्वा परजीव्याभ *अपैन्टेलिस* स्प0 के कुकून

वनों में छोड़ दिया जाता है जहाँ *अपैन्टेलिस* स्प0 की मादा दूर दूर तक उड. कर जाती है और उचित पोषक लार्वों को खोजकर उनमें अपने अण्डे प्रविष्ठ करा देती हैं तथा इस प्रकार *अपैन्टेलिस* स्प0 प्राकृतिक वातावरण में अपना जीवन चक्र दोहराकर हानिकारक कीटों का जैविक नियंत्रण करती हैं।

प्रकृति में परजीव्याभों का स्वतः गुणन और हानिकारक कीटों का प्राकृतिक जैविक नियन्त्रण

जब खेतों एवं वनों में इन *अपैन्टेलिस* स्प0 या अन्य परजीव्याभों को छोड़ दिया जाता है तो मादा परजीव्याभ स्वयं दूर–दूर तक उड़ कर जाती है और उचित पोषक लार्वो को खोजकर उनमें अपना अण्डा प्रविष्ठ कराकर, अण्डा, लार्वा तथा प्यूपा अवस्थाओं के माध्यम से अपना जीवन चक्र पूर्ण करती है तथा फिर कुकून तोड़कर नयी पीढ़ी के परजीव्याभ भी इसी जीवन चक्र को दोहराने के

लिये हानिकारक कीटों को खोजकर उनके लार्वों को परजीवीकृत कर मारना और अपने वंश की वृद्धि करने की बार–बार खेतों, जंगलों और वनों में पुनरावृत्ति करते हैं। इस प्रकार प्रकृति में परजीव्याभों का स्वतः गुणन तथा प्राकृतिक जैविक नियन्त्रण का चक्र बार–बार दोहराया जाता है और ये परजीव्याभ्य हानिकारक कीटों की संख्या पर नियंत्रण कर पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में सहायक सिद्व होते हैं।

अतः कीटों के जैविक नियंत्रण को कीट नियंत्रण में यदि प्राथमिकता तथा वरीयता दी जाये तो हमें रासायनिक कीट नाशकों के ऊपर होने वाले भारी व्यय से छुटकारा मिलने के साथ–साथ हम उनके विषाक्त दुष्परिणामों से जीवों तथा प्रकृति को बचा सकते हैं तथा इनके मानव जाति पर पड़ने वाले स्वास्थ्य सम्बन्धी दुष्प्रभावों को भी कम या समाप्त कर सकते हैं तथा स्वच्छ वातावरण की कल्पना को साकार कर सकते हैं। अतः हानिकारक कीटों के नियन्त्रण के लिए हमें जैविक नियन्त्रण को प्राथमिकता देते हुए उसे व्यापक रूप से विकसित कर अधिक से अधिक प्रयोग में लाने की आवश्यकता है।

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

करता नहीं क्यों दूसरों से कुछ बातचीत,
देखता हूँ मैं जिसे वो चुप तेरी महफिल में है।

रहबर राहे मोहब्बत रह न जाना राह में,
लज्जत–ऐ–सेहरा नवर्दी दूरिये–मंजिल में है।

यों खड़ा मौकतक में कातिल कह रहा है बार–बार,
क्या तमन्ना–ए–शहादत भी किसी के दिल में है।

ऐ शहीदे–मुल्कों–मिल्लत मैं तेरे ऊपर निसार,
अब तेरी हिम्मत का चर्चा गैर की महफिल में है।

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है।

खींच कर लाई है सब को कत्ल होने की उम्मीद,
आधिकों का जमघट आज कूचे–ऐ–कातिल में है।

परती भूमि सुधार में कृषि वानिकी ही उपयुक्त विकल्प

श्री रामबीर सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

ज्ञात है कि हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्र (329 मिलियन हेक्टर) का लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र परती भूमि (अकृषि, बंजर, क्षारीय, लवणीय, अम्लीय, अनुपजाऊ एवं कृषि योग्य भूमि आदि) के अंतर्गत है जिसका पर्यावरण, बढ़ती जनसंख्या (मांग) तथा खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। देश की उपजाऊ भूमि की उर्वरा शक्ति मानव जन्य कारकों से दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है। वर्तमान में लगभग 231 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन मात्र 144 मिलियन हेक्टेअर उपजाऊ भूमि से किया जा रहा है। जिस पर लगभग 110 करोड़ जनमानव खाद्य पूर्ति हेतु आश्रित है। इस बढ़ती हुई जन व पशु संख्या के लिए सीमित होती हुई कृषि योग्य भूमि में आज नहीं तो कल खाद्यान्न, पशुचारा व ईंधन उपलब्ध करना कठिन हो जायेगा।

संसाधनों के अनुचित इस्तेमाल से इन मृदाओं की उत्पादकता प्रभावित होकर परती भूमि का रूप ले रही है। यदि ह्रास इसी गति से होता रहा तो आने वालों दिनों में कई क्षेत्रों में अकाल भी पड़ सकता है। इस परती भूमि के सुधार व उचित उपयोग के लिए कृषि वानिकी ही उपयुक्त विकल्प हो सकता है। इन कृषि वानिकी पद्धतियों से मृदाओं की भौतिक व रासायनिक दशा मे सुधार लाकर परती भूमि को कृषि योग्य भूमि मे बदला जा सकता हैं।

परती भूमि क्या हैं ?

परती भूमि में ऐसे विभिन्न क्षेत्रों को परिभाषित किया है जो निम्न प्रकार से हैं।

1. पुराने समय में परती भूमि उसे कहते थे जो खाली पड़ी होती थी। जिसका कृषि फसलों या अन्य के लिए उपयोग नहीं किया जा रहा हो।
2. परती शब्द का मतलब जो बेकार पड़ी हो जिसका कोई उपयोग न हो रहा हो।
3. Soil Science Society of America (1956) के अनुसार जो भूमि उत्पादन करने में असमर्थ हों।
4. देश में बिगड़े वनों की भूमि, चारागाह भूमि, परती भूमि, पहाड़ी भूमि, अधिक ढ़लान, सूखाग्रस्त, अधिक सिंचाई वाली ऊसर एवं दलदली व जल मग्न भूमि तथा ऐसी मृदा जो कम उपज देनी वाली हो भूमि परती भूमि कहलाती हैं।

परती भूमि में कृषि वन वृक्ष पद्धति के अंतर्गत बांस व खमेर के साथ गेहूँ की खेती

परती भूमि का बनना :–

परती भूमि बनना एक क्रमबार प्रक्रिया है। जिसके विभिन्न कारण हैं। जैसे :–

1. भूमि क्षरण,
2. हरितिमा में कमी,
3. पशुओं की असीमित व अव्यवस्थित चराई,
4. अत्याधिक व दोषयुक्त सिंचाई,
5. अपर्याप्त जल निकास,
6. खनन कार्य,
7. औधोगिकीकरण,
8. अत्याधिक वनों की कटाई (वन आवरण को हटाना),
9. जनसंख्या वृद्धि,
10. भूमिगत जल स्तर में निरंतर कमी।

मृदा उत्पादकता एवं बेकार भूमि का होना एक गंभीर समस्या हैं। जो कि पानी व हवा क्षरण वनों के आवरण को हटाना, वनभूमि का अधिग्रहण तथा अत्याधिक मानवीय हस्तक्षेप इसके प्रमुख कारण हैं। जिससे वनों पर अत्यधिक बोझ पड़ रहा हैं। भारत में लगभग 12 मिलियन टन मृदा प्रति वर्ष बह कर नष्ट हो जाती हैं। विश्व खाघ एवं कृषि संगठन के

मतानुसार भारत के कुल 329 मिलियन हैक्टर भौगौलिक क्षेत्रफल में से 167 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र किसी न किसी प्रकार की अधोगति से प्रभावित हैं।

जल क्षरण	–	30.3 प्रतिशत,
वायु क्षरण	–	16.8 प्रतिशत,
क्षारीय व लवणीय	–	2.4 प्रतिशत

अर्थात् करीब 50 प्रतिशत भूमि अधोगति को प्राप्त हुई है। इसी प्रकार प्रति वर्ष करीब 2.1 हैक्टेयर भूमि वृक्ष विहीन होकर अधोगति को प्राप्त हो रही है। एक अनुमान से देश में परती भूमि का क्षेत्रफल करीब 175 मिलियन हैक्टेयर है। परती भूमि विकास उत्पादन समिति (NWDB) ने 120 मिलियन हैक्टेयर परती भूमि दर्शायी है। जिसमें 40 मिलियन हैक्टेयर जंगल वाले भाग में एवं 80 मिलियन हैक्टेयर कृषि क्षेत्र में है। यदि ह्रास इसी गति से आगे भी होता रहा या इसके प्रबन्धन में कोई सकारात्मक परिवर्तन न किये गये तो भविष्य में खाद्यान्न, फल, ईधन, काष्ठ एवं पशुचारे आदि की गम्भीर समस्याऐं उत्पन्न हो सकती हैं। अकाल भी पड़ सकता है।

परती भूमि में वनौषधि पद्धति के
अंतर्गत सागौन के साथ सफेद मूसली की खेती

योजना आयोग ने इसे दो भागों में विभाजित किया है।

1. कृषि योग्य परती भूमि एवं
2. कृषि अयोग्य परती भूमि

1. कृषि योग्य परती भूमि में :–

1. गली युक्त बीहड़ भूमि,
2. ऊसर भूमि,
3. जलाक्रांत (जलमग्न / दलदली भूमि)
4. मरूस्थली भूमि,
5. अधोगति भूमि,
6. खाली पड़ी भूमि या अनुपयोगी भूमि।

2. कृषि अयोग्य परती भूमि में :–

1. पथरीली भूमि,
2. अधिक ढ़लान या पहाड़ी भूमि,
3. हिमाच्छादित भूमि।

इन्हें थोड़े से प्रयास व प्रबंधन के द्वारा सुधारा जा सकता है।

भूमि सुधार :– निम्न प्रक्रियाओं को अपनाकर परती भूमि को सुधारा जा सकता है।

1. भूमि एवं जल का उचित संवर्धन करना।
2. उचित प्रबंधन से अधिक जल को बहाकर,
3. जड़ वृद्धि के अवरोधों को कम कर (कंकड व कड़ी पथरीली जमीन को भुरभुरी कर।)
4. जड़ प्रक्षेत्र से विषैले तत्व को कम कर।
5. कृषि वानिकी द्वारा।

कृषि वानिकी

कृषि वानिकी एक प्राचीन परम्परागत पद्धति है जिसमें खाद्यान्न फसलों के साथ–साथ बहुउद्देशीय वृक्षों को उगाना तथा एक ही इकाई भूमि में कृषि फसलों और मवेशियों को साथ–साथ उपयोगिता के आधार पर सम्मिलित करना ही

परती भूमि में वन चरागाह पद्धति
के अंतर्गत खमेर के साथ घास उगाना

कृषि वानिकी कहलाता है। जिसका मुख्य उद्देश्य कुल उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ जमीन की उर्वरकता को भी बनाये रखना है।

कृषि वानिकी के तीन मुख्य अवयव होते हैं।

1. कृषि फसलें,
2. वृक्ष या पेड़,
3. जानवर (पशु)

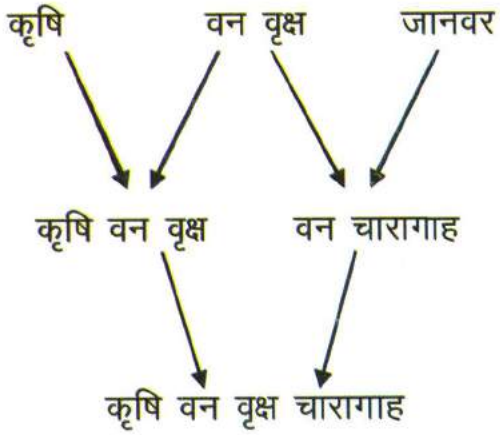

वन वृक्ष प्रजातियों का चुनाव :– बहुउद्देशीय वन वृक्ष प्रजातियों में निम्न गुण अवश्य होने चाहिए जैसे :–

1. जल्दी बढ़ने वाला,
2. जड़ें गहराई में जाने वाली,
3. संकरी छाया देने वाला होनी चाहियें।
4. वायुमंडलीय नाईट्रोजन को मृदा में इकट्ठा करने वाली हों।
5. बीमारियों या कीटपतंगो को आकर्षित न करने वाली हो।
6. ईंधन चारा, रेशे व लघु काष्ट प्रदान करने वाली।

कृषि वानिकी पद्धतियॉ :– ये आवश्यकता व उपलब्धता के आधार पर विभिन्न पद्धतियाँ वन जाती हैं। जैसे :–

1. कृषि वन वृक्ष,
2. वन चारागाह,
3. कृषि वन चारागाह,
4. वन फलोद्यान,
5. कृषि वन वृक्ष फलोद्यान
6. कृषि फलोद्यान,
7. बहुउद्देशीय प्रजातियाँ,
8. वन वृक्ष–मधुमक्खी पालन,
9. वन वृक्ष–मछलीपालन आदि।

उपयोगिता :– कृषि वानिकी की निम्नानुसार उपयोगिताऐं हैं:–

1. जलाऊ ईंधन के रूप में,
2. पशुचारा के रूप में,
3. खाद्य व फलों के रूप में,
4. इमारती लकड़ी के लिए,
5. कृषि औजार आदि के लिए,
6. मृदा संरक्षण के उपयोग में,
7. लघुवनउपज के लिए – जैसे गोंद, टेनिन, रेजिन आदि,
8. लघु उघोगों को कच्चा माल प्रदान करने के लिए जैसे दोना–पत्तल, प्लेट, पेपर बनाना प्लाईवुड आदि के लिए तथा दवाओं आदि के रूप में।

परती भूमि सुधार के लिये कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ :– निम्न परती भूमियों में सुधार के लिये कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ इस प्रकार हैं।

क्षारीय भूमि	बीहड़ भूमि	लवणीय भूमि	अधिक नमी युक्त भूमि
विलायती बबूल	देशी बाँस	केज्वरीना	पोपलर
देशी बबूल	खमेर	सुबबूल	अर्जुन (कोहा)
नीलगिरी (टेरीटीकोर्निश)	नीलगिरी (कमेडूलेंसिस)	विलायती बबूल	नीलगिरि
करंज	खेर	देशी बबूल	अकेशिया औरीकुलीफोरमिस
शीशम	बबूल	नीलगिरी (कमेडूलेंसिस)	जामुन
	शीशम		काला सिरिस
			करंज

इस प्रकार विभिन्न परती भूमियों में कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ लगाकर तथा कृषि वानिकी पद्धतियों को अपना कर सुधारा जा सकता है तथा देश में इस बढ़ती हुई खाद्यान्न, पशुचारा, ईंधन एवं औषधियों की मांग की भी पूर्ति की जा सकती है तथा आने वाले इस संकट से बचा जा सकता है।

सीबकथोर्न : उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों की बहुउपयोगी वनस्पति

डॉ. आर. एस. रावत
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

एवं

डॉ. वनीत जिस्टु
हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों को प्रायः उच्चशिखरीय शीत मरूस्थल के नाम से जाना जाता है, क्योंकि शीत मरूस्थल प्राकृतिक वृक्ष रेखा से ऊपर वाले भागों में स्थित है। शीत मरूस्थल जम्मू कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के पूह उपमण्डल (किन्नौर) व लाहुल एवं स्पीती तथा उत्तराखण्ड राज्य के कुछ क्षेत्रों में विद्यमान हैं। शीत मरूस्थलों में विभिन्न प्रकार की अद्वितीय पादप विविधता विद्यमान है, उनमे से सीबकथोर्न की जातियां भी मुख्य बहुउपयोगी वनस्पतियां हैं। जो कि पादप जगत के इलैगनेसी कुल के अन्तर्गत आती है। वनस्पति जगत में यह हीपोफी के नाम से जानी जाती है।

सीबकथोर्न – प्राकृतिक वासस्थान

पादप गण हीपोफी की तीन जातियां : हीपोफी रैमनांइडिस, हीपोफी सेलिसिफोलिया एवं हीपोफी तिवैताइना हैं, इन सभी जातियों कों अंग्रेजी में प्रायः सीवकथोर्न के नाम से जाना जाता है जबकी इन सभी जातियों के स्थानीय नाम भी प्रायः एक जैसे ही है जो कि लद्दाख में शेरमंग व सेसतालुलू, हिमांचल में छरमा एवं उत्तराखण्ड में चू व दारचुल के नाम से जानी जाती हैं। जो मुख्यतया उत्तर पश्चिमी हिमालय में जम्मू कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के पूह उपमण्डल (किन्नौर) व लाहुल एवं स्पीती तथा उत्तराखण्ड राज्य के कुछ क्षेत्रों में पाये जाते है।

सीवकथोर्न एक पतझड़ वाली कंटीली झाड़ी नुमा पादप है जो कि शीत मरूस्थलों की प्रतिकूल परिस्थितियों में उगने की क्षमता रखती है। यह प्रायः उन स्थानों में सुगमता से उगता है जहां मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी उपस्थित रहती है। यद्यपि इसका प्राकृतिक वास स्थान नमी वाले क्षेत्र जैसे नदियों के किनारे, घाटियां, रेतीली ढलान वाले स्थान हैं लेकिन इसमें कुछ मरूदभिद लक्षण जैसे छोटे आकार की पत्तियां, क्यूटिकिल की मोटी परत एवं तनों में कांटों का होना इत्यादि विद्यमान होते हैं। यह जल प्रिय पादप तो है लेकिन यह जलमग्न स्थानों में जीवित नहीं रह सकता है। क्योंकि जलमग्न दशा में इसकी जड़ें आक्सीजन की कमी के कारण मृत हो जाती हैं।

सीवकथोर्न – प्राकृतिक वासस्थान

शीत मरूस्थलों के स्थानीय लोग/निवासी सीवकथोर्न का प्रयोग घरों व खेतों के चारों तरफ बाड़ लगाने में करते हैं और इसकी लकड़ी जलाने एवं कृषि उपकरणों के हत्थे इत्यादि बनाने में प्रयोग की जाती है।

इसके फलों का उपयोग खाने, चटनी व जैम बनाने में किया जाता है। इसके फलों से निर्मित सीरप का उपयोग फेफड़ों की बीमारियों को दूर करने के लिए किया जाता है। इसके फलों में विटामीन सी प्रचुर मात्रा में होती है जबकि बीजों से निर्मित तेल में विटामीन ई एवं वसीय अम्ल प्रचुर मात्रा में होता है इसलिए इसके बीजों से निकला हुआ तेल

कृषि वानिकी कहलाता है। जिसका मुख्य उद्देश्य कुल उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ जमीन की उर्वरकता को भी बनाये रखना है।

कृषि वानिकी के तीन मुख्य अवयव होते हैं।

1. कृषि फसलें,
2. वृक्ष या पेड़,
3. जानवर (पशु)

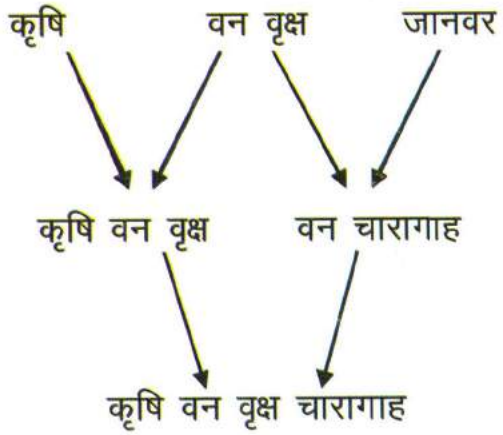

वन वृक्ष प्रजातियों का चुनाव :– बहुउद्देशीय वन वृक्ष प्रजातियों में निम्न गुण अवश्य होने चाहिए जैसे :–

1. जल्दी बढ़ने वाला,
2. जड़ें गहराई में जाने वाली,
3. संकरी छाया देने वाला होनी चाहियें।
4. वायुमंडलीय नाईट्रोजन को मृदा में इकट्ठा करने वाली हों।
5. बीमारियों या कीटपतंगो को आकर्षित न करने वाली हो।
6. ईंधन चारा, रेशे व लघु काष्ट प्रदान करने वाली।

कृषि वानिकी पद्धतियॉं :– ये आवश्यकता व उपलब्धता के आधार पर विभिन्न पद्धतियाँ वन जाती हैं। जैसे :–

1. कृषि वन वृक्ष,
2. वन चारागाह,
3. कृषि वन चारागाह,
4. वन फलोद्यान,
5. कृषि वन वृक्ष फलोद्यान
6. कृषि फलोद्यान,
7. बहुउद्देशीय प्रजातियाँ,
8. वन वृक्ष–मधुमक्खी पालन,
9. वन वृक्ष–मछलीपालन आदि।

उपयोगिता :– कृषि वानिकी की निम्नानुसार उपयोगिताऐं हैं:–

1. जलाऊ ईंधन के रूप में,
2. पशुचारा के रूप में,
3. खाद्य व फलों के रूप में,
4. इमारती लकड़ी के लिए,
5. कृषि औजार आदि के लिए,
6. मृदा संरक्षण के उपयोग में,
7. लघुवनउपज के लिए – जैसे गोंद, टेनिन, रेजिन आदि,
8. लघु उद्योगों को कच्चा माल प्रदान करने के लिए जैसे दोना–पत्तल, प्लेट, पेपर बनाना प्लाईवुड आदि के लिए तथा दवाओं आदि के रूप में।

परती भूमि सुधार के लिये कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ :– निम्न परती भूमियों में सुधार के लिये कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ इस प्रकार हैं।

क्षारीय भूमि	बीहड़ भूमि	लवणीय भूमि	अधिक नमी युक्त भूमि
विलायती बबूल	देशी बाँस	केज्वरीना	पोपलर
देशी बबूल	खमेर	सुबबूल	अर्जुन (कोहा)
नीलगिरी (टेरीटीकोर्निश)	नीलगिरी (कमेडूलेंसिस)	विलायती बबूल	नीलगिरि
करंज	खेर	देशी बबूल	अकेशिया औरीकुलीफोरमिस
शीशम	बबूल	नीलगिरी (कमेडूलेंसिस)	जामुन
	शीशम		काला सिरिस
			करंज

इस प्रकार विभिन्न परती भूमियों में कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ लगाकर तथा कृषि वानिकी पद्धतियों को अपना कर सुधारा जा सकता है तथा देश में इस बढ़ती हुई खाद्यान्न, पशुचारा, ईंधन एवं औषधियों की मांग की भी पूर्ति की जा सकती है तथा आने वाले इस संकट से बचा जा सकता है।

खेतों में हीपोफी रैमनाइडिस की बाड़

घरों में हीपोफी रैमनाइडिस की बाड़

त्वचा के रोगों, जले हुये भागों, घावों, कटे हुये भागों इत्यादि को ठीक करने में किया जाता है। इसके फलों में

हीपोफी रैमनाइडिस के खानेयोग्य फल

विटामिन–सी, अन्य फलों एवं सब्जियों की तुलना में अधिक मात्रा में पाया जाता है, इसके फलों के पल्प से शीतल पेय भी बनाये जाते हैं जो लेह–बेरी के नाम से बाजार में मिलती है इसकी पत्तियों एवं फलों से हरबल चाय भी बनाई जाती है जो छेरिंग चाय के नाम से बाजार में मिलती है।

शीत मरूस्थलों में मृदा संरक्षण में इसकी अहम् भूमिका है। बहुउपयोग के कारण यह गोल्डन बुश के नाम से भी जानी जाती है। इसकी जड़ों में सहजीवी कवक फ्रेंकिया विद्यमान रहता है जो मृदा में नाइट्रोजन का जैविक स्थिरीकरण करने में सहायक होता हैं। जिस कारण यह मृदा में नाइट्रोजन की प्रर्याप्त मात्रा को बनाये रखने में सक्षम रहता है। सीवकथोर्न के पौधे प्रायः सोयाबीन के पौधे से दो गुणा ज्यादा नाइट्रोजन का जैविक स्थिरीकरण करते हैं। भारतीय मेटरिया मेडिका में हिपोफी का उपयोग फेफड़ों की व्याधियों, कफ, पेट दर्द, एमिनोहोरियां, व सूजन इत्यादि को ठीक करने में किया जाना वर्णित है। जबकि तिब्बती एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की दवाईयों को बनाने में किया जाता है।

रूस ने घरेलू स्तर पर 19वीं शताब्दी में इसके फलों का प्रयोग वाइन, जैम व जैली इत्यादि बनाने में किया और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, रूस ने इसकी खेती शुरू की और 1940 से कारखानों में इसका उपयोग भोज्य पदार्थों, पेय पदार्थों इत्यादि को बनाने में किया जा रहा है। चीन ने रूस की तर्ज पर इसका उपयोग 1980 के बाद जूस इत्यादि बनाने में शुरू किया। रूस में सीवकथोर्न से बनी दवाईयाँ जैसे गिबजोली, ओनेजोली, मलहम, सीवकथोर्न ग्लूप्लेट, फलों व पत्तियों का तेल, गिपूलिकोस (सीवकथोर्न की मीठी गोली) इत्यादि बेची जाती हैं। जबकि चीन में इससे निर्मित तेल, फलेवोन टेबलेट, स्वीट ग्रेन्यूल, भुस्क इमलसन इत्यादि बेचे जाते हैं। साथ ही इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है।

हीपोफी रैमनाइडिसः इसका प्राकृतिक वितरण हीपोफी की अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक है। यह लद्दाख क्षेत्र के झंगतांग, सुरू, नुबरा व इंडस घाटियों; हिमाचल प्रदेश के

हीपोफी रैमनाइडिस

लाहुल–स्पीती, व पुह उपमण्डल (किन्नौर) एवं उत्तराखंड़ के नीती–मांणा की घाटियों में वितरित है।

पादप वैज्ञानिक रौसी नौ हीपोफी रैमनाइडिस की निम्न नौ उपजातियों की पहचान की थी:

1.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	कारपटिका
2.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	कोकेसिका
3.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	जानटेसेन्सिस
4.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	मंगोलिका
5.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	साईनेनसिस
6.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	तुर्कस्तानिका
7.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	यूनानेनसिस
8.	हीपोफी रैमनाइडिस	उप जाति	लूवाइरिलिस
9.	हीपोफी रैमनाइडिस		रैमनाइडिस

हीपोफी सैलिसिफोलिया: यह उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों में सीमित मात्रा में वितरित है, जो मुख्यतया

हीपोफी सैलिसिफोलिया

हिमाचल प्रदेश लाहुल एवं स्पीती तथा उत्तराखंड़ के कुछ भागों में वितरित है।

हीपोफी तिवैताइना: यह हीपोफी की अन्य जातियों की अपेक्षा छोटी होती है। यह उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों में सीमित मात्रा में वितरित है, जो मुख्यतया लद्दाख क्षेत्र के जंसकर घाटी; हिमाचल प्रदेश की पिन घाटी, लोसर व टाक्चा (स्पीती) एवं उत्तराखंड़ के नीती–निलोंग में वितरित है।

हीपोफी तिवैताइना

उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों में विद्यमान सीवकथोर्न की प्राकृतिक जनसंख्या को संरक्षित करने एवं शीत मरूस्थलों के उचित स्थानों में वृहद पैमाने पर इसको वनरोपित करने से वन आवरण एवं स्थानीय लोगों की आजीविका को बढ़ाया जा सकता है।

कृषि वानिकी में उपयुक्त औषधीय पौधा: चित्रक *(प्लम्बेगो जेलेनिका)*

डॉ. चरन सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे चौहान
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

परिचय:

उत्तराखण्ड राज्य आजकल हर्बल स्टेट के नाम से जाना जाता है यहाँ की जलवायु औषधीय पौधों की खेती के लिए अति उत्तम मानी जाती है। यहाँ पर मुख्यतः मध्यम ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में तथा पर्वतीय क्षेत्रों से लगे हुए मैदानी भागों में औषधीय पौधों की खेती की जाती है। मुख्य औषधीय फसलों में तुलसी (*ओसीमम सेक्टम*) ग्वार पाण (*एलो वेरा*), सतावर (*एस्पेरेगस रेसीमोसस*) चित्रक (*प्लेम्बेगो जाइलेनिका तथा प्लम्बेगो इण्डिका*) की मुख्य रूप से कृषि वानिकी के तहत किसान उगाते हैं इनमें औषधीय फसलों के आर्थिक आंकलन में पाया गया है कि अच्छी देखभाल से सभी औषधीय प्रजातियों से किसान मुनाफा कमा सकते हैं। विशेषतः कृषि वानिकी के अन्तर्गत जब पेड़ों की छाया जमीन पर अधिक सघन हो जाती है तो नीचे उगने वाली कृषि फसल अच्छी तरह नहीं हो पाती है। ऐसे में औषधीय पौधों की खेती किसानों के लिये अच्छा विकल्प है।

यहाँ पर कृषि वानिकी के अन्तर्गत सुचारू रूप से उगाई जा सकने वाली प्रजाति चित्रक का हम जिक्र कर रहे हैं यह एक मध्यम आकार का शाकीय पौधा होता है। इसकी खेती पूरे भारत वर्ष में की जाती है। पुष्पों के रंगो के आधार पर इसकी दो प्रजातियाँ होती हैं। लाल फूल वाली प्रजाति को *प्लम्बेगो इनिका* तथा सफेद फूल वाली प्रजाति को *प्लेम्बेगो जिलेनिका* के नाम से जाना जाता है। सफेद फूल वाली प्रजाति विशेषत : बंगाल, उत्तर प्रदेश दक्षिण भारत तथा श्री लंका में पाई जाती है। लाल – फूल वाली प्रजाति खासिया पहाड़, सिक्किम, कूच बिहार में अधिक मिलती है।

चित्रक *(प्लम्बेगो जेलेनिका)* में पुष्पण

चित्रक *(प्लम्बेगो जेलेनिका)* में फलन

पादप परिचय:

चित्रक 3–6 फुट ऊँचा झाड़ी नुमा तथा चौड़ी पत्ती वाला पौधा हेाता है। यह एक बहुवर्षीय तथा सदाबहार प्रजाति है। काण्ड तथा टहनियों पर लम्बी धारियाँ होती हैं। पत्तियाँ चिकनी, कोमल, अण्डाकार, तथा अग्रभाग पर नुकीली होती है। पत्तियों की लम्बाई लगभग 3 इंच तथा चौड़ाई औसतन 1 इन्च होती है। फूल 4–12 इन्च लम्बे शाखायुक्त पुष्पदण्ड पर लम्बी नलिका वाले श्वेत वर्ण निर्गन्ध गुच्छों में लगे रहते हैं फल लम्बे तथा चिपचिपे रोएनुमा होते हैं।

रासायनिक संघटनः

चित्रक मूल मे प्लेम्बेजिन नामक एक तत्व पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अल्फा तथा बिटा–एमरिन स्वतंत्र द्राक्ष शर्करा, तथा प्रोटिएज और इर्न्वटेज एन्जाइम होते हैं।

गुण धर्म तथा उपयोगः

यह कीटाणुओं का नाश करने वाला फफूंदी नाशक पाचक, स्वेदजनक कुष्ठ का हरने वाला रसायन रूपी पौधा है। इसका उपयोग कुपचन, ज्वर, कुष्ठ रोग, पाण्डरोग बबासीर, अतिसार, चर्मरोग, हदय रोग, यकृत रोग तथा कैसर जैसे रसायन रोगों में किया जाता है।

कृषि वानिकी में कृषिकरणः

अध्ययनों के आधार पर देखा गया है कि चित्रक कृषि वानिकी के अन्तर्गत खेती–बाड़ी के लिए एक उपयुक्त औषधीय प्रजाति है। इसकी अधिक देखभाल की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। पोपलर के साथ इसको बड़ी आसानी से इसको उगाया जा सकता है। तथा एक अच्छी पैदावार ली जा सकती है। ऊपजाउ दौमट भूमि इसकी फसल के उत्तम होती है वैसे तो उचित सिंचाई की व्यवस्था वाली भूमि में उसकी पैदावार काफी अच्छी हो जाती है लेकिन पानी की उचित व्यवस्था न हो तब भी यह फलता फूलता है। उत्तराखण्ड़ में निचले भागों में इसकी खेती सुगमता से की जाती है तथा आर्थिक दृष्टि से भी ठीक रहती है।

इसकी पौध तैयार करने के लिए जनवरी–फरवरी में इसके बीज को मिट्टी खाद तथा रेत से भरी थैलियों में बीज को बो दिया जाता है। हफ्ते में दो दिन या आवश्यकता अनुसार सिंचाइ की जाती है। जून जुलाई में जब पौध तैयार हो जाती है तब पोपलर वाले खेत में पौधों को 60x60 सेमी की दूरी पर रोपित कर दिया जाता है। एक हेक्टेअर भूमि के लिए लगभग 28000 पौधों की आवश्कता होती है। पौध रोपण के बाद समय–समय पर सिंचाई तथा खरपतवारों की निकासी की जाती है प्रारम्भ में सिंचाई साप्ताहिक तथा बाद में मासिक तौर पर की जाती है। लगभग डेढ़ साल मे फसल तैयार हो जाती है। फसल तैयार हो जाने पर पौधों को उखाड़कर छाया में सुखाकर बीज, तना (पत्तियों सहित) तथा जड़ों को स्थानीय बाजार में बेचा जाता है।

पैदावार तथा बाजार भावः

चित्रक की एक फसल सें लगभग 3.75 कुन्टल प्रति हेक्टेअर सूखे पौधे तथा 5 कुन्टल बीज प्राप्त होता है। सूखे पौधों (जड़ सहित) की कीमत ₹ 2,500 प्रति कुन्टल तथा बीज का बाजार मूल्य 50,000 ₹ प्रति कुन्टल है। कुल मिलाकर देखा जाय तो चित्रक की खेती कृषि वानिकी के तहत किसानों को अच्छा लाभ दे सकती है।

होश वालों को ख़बर क्या बेखुदी क्या चीज़ है
इश्क कीजे फिर समझिए ज़िन्दगी क्या चीज़ है

उन से नज़रें क्या मिली रौशन फिजाऐं हो गईं
आज जाना प्यार की जादूगरी क्या चीज़ है

खुलती जुल्फ़ों ने सिखाई मौसमों को शायरी
झुकती आँखों ने बताया मयकशी क्या चीज़ है

हम लबों से कह न पाये उन से हाल–ए–दिल कभी
और वो समझे नहीं ये ख़ामोशी क्या चीज़ है

–निदा फाजली

विविधा

सबकी पूजा एक सी अलग-अलग है रीत
मस्जिद जाये मौलवी, कोयल गाये गीत

अंतर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन समझौतों में वानिकी

श्री विजयराज सिंह रावत
भारतीय वानिकी अनुसन्धान संस्थान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तन आज विश्व की अति चिंतनीय समस्याओं में से एक है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल ने 2007 में जारी अपनी रिर्पोट में खुलासा किया कि यदि पृथ्वी का तापक्रम निर्बाध रूप से इसी तरह बढ़ता गया तो अगले 100 वर्षो में पृथ्वी का तापमान 1.4 से 4° सेल्सियस तक बढ़ सकता है। इसके भयंकर दुष्परिणाम कृषि, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, व आवास आदि पर सभी को भुगतने होंगे। पृथ्वी के तापमान मे पिछले 100 वर्षो में 1901 से 2000 के बीच 0.6° से. की वृद्धि हुयी जबकि 1905 से 2005 के बीच के 100 वर्षो में 0.74° सेलसियस की वृद्धि हुयी। वायुमण्डल मे कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा औद्योगिक क्रांति से पूर्व के स्तर 280 भाग प्रति दस लाख (पार्ट पर मिलियन) से बढ़कर 2005 में 379 पी.पी.एम. हो गयी जोकि पिछले 6,50,000 वर्षो में सर्वाधिक आंकी गयी है। तीव्र औद्योगिकीकरण व अन्य मानव जनित गतिविधियों से कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस आक्साइड की वायुमण्डल में सांद्रता सन् 1750 के स्तर से अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है। कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा में यह वृद्धि जीवाशम ईंधन के उपयोग तथा भू उपयोग परिवर्तन के कारण है जबकि मीथेन तथा नाइट्रस आक्साइड में वृद्धि मुख्यतः कृषि क्षेत्र से है। जलवायु परिवर्तन पर अंर्तसरकारी पेनल के वैज्ञानिक सर्व सम्मत हैं कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का रिसाव तथा भूउपयोग परिवर्तन एवं वन विनाश ही जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण हैं।

जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण हेतु अंतर्राष्ट्रीय समझौते

समस्या की गंभीरता को देखते हुए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने सन् 1992 में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय (यू.एन.एफ.सी.सी.सी.) को अंगीकृत किया तथा इसके तहत 1997 में जापान के क्योटो शहर में क्योटो प्रोटोकोल के नाम से एक संधि हुई। क्योटो प्रोटोकोल वैश्विक गर्मी के लिये उत्तरदायी सभी प्रमुख गैसों को कम करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की वचनबद्धता को दोहराने के साथ–साथ विकसित राष्ट्रों को ग्रीन हाउस गैसों के रिसाव में 1990 के स्तर पर 5.2 % कमी करने का प्रावधान करता है। विकसित राष्ट्रों को यह लक्ष्य 2012 तक पूरे करने होंगे। परन्तु अमेरिका ने क्योटो सन्धि को यह कह कर खारिज कर दिया कि यह सन्धि भारत तथा चीन जैसे देशों के पक्ष में है तथा इन देशों पर भी ग्रीन हाउस गैसों के रिसाव में कमी के लिये निर्धारित लक्ष्य होने चाहिये तभी वह सन्धि पर हस्ताक्षर करेगा। अमेरिका जो ग्रीन हाउस. गैसों का सर्वाधिक उत्सर्जक देश है, के क्योटो सन्धि पर हस्ताक्षर न करने से इन गैसों के रिसाव में 2012 तक 5.2 % की कमी को प्राप्त करना असंभव लगता है। चूंकि क्योटो संधि का कार्यकाल वर्ष 2012 में समाप्त हो रहा है, इसे आगे बढ़ाने के लिये किये गये प्रयासों में 2007 में बाली कार्य योजना, 2009 में कोपनहेगन संधि तथा 2010 में कानकुन समझौता महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत लेख में इन महत्वपूर्ण समझौतों में वानिकी के महत्व का विवेचन किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन अभिसमय (यू.एन.एफ.सी.सी.सी)

विश्व के 194 देशों द्वारा हस्ताक्षरित एवं अनुमोदित यह संधि अतंराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य है। इस संधि का उद्देश्य जलवायु तंत्र पर गम्भीर मानवीय हस्तक्षेप को रोककर वायुमंण्डल में हरित गृह गैसों की सांद्रता को एक निश्चित स्तर पर स्थिर करना है। इस संधि के अनुच्छेद 4(1)(d) में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में वनों के महत्व को समझते हुए सभी पक्षकारों से अपेक्षा की गयी है कि हरित गृह गैसों के सभी भंडारों, तथा जैव, पुंज, वन, महासागर, तथा अन्य भू तटीय तथा समूद्री पारिस्थितकी तंत्रों के सरंक्षण एवं सतत् विकास में सहयोग करें।

क्योटो प्रोटोकाल

यद्यपि यू.एन.एफ.सी.सी.सी ग्रीन हाउस गैसों के सांद्रता को स्थिर करने के लिए सभी पक्षों का आवाहन करता है किन्तु उन्हें किस स्तर पर स्थिर किया जाय, यह परिभाषित नहीं किया गया। क्योटो प्रोटोकोल ने सभी विकसित राष्ट्रों के लिये यह लक्ष्य निर्धारित किये। पक्षकारों के तीसरे सम्मेलन में जापान के क्योटो शहर में 1997 में क्योटो प्रोटोकोल पर हस्ताक्षर किये गये।

क्योटो प्रोटोकोल 16 फरवरी 2005 से लागू हुआ। पहली बार जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण के लिये बाजार आधारित व्यवस्था लागू की गयी जिससे दुनिया में कार्बन व्यापार की एक नयी अवधारणा का जन्म हुआ। क्योटो प्रोटोकोल ने इस कार्बन बाजार व्यवस्था में वानिकी को भी सम्मिलित किया। प्रोटोकाल के अनुच्छेद 12 में स्वच्छ विकास क्रियाविधि (सी.डी.एम) को परिभाषित किया गया तथा सी.डी.एम परियोजनाओं के अतंर्गत वनीकरण तथा पुनर्वनीकरण परियोजनाओं को भी सिद्धांत रूप में स्वीकार किया गया।

मरकेश समझौता

पक्षकारों का सातवाँ सम्मेलन मरकेश में हुआ जिसे मरकेश समझौते के नाम से जाना जाता है। जलवायु प्रभाव में वानिकी की भूमिका के योगदान के कारण यह महत्वपूर्ण सम्मेलन था। जहां क्योटो प्रोटो वनीकरण एंव पुनर्वनीकरण की बात करता है वहीं मरकेश समझौते ने स्पष्ट रूप से वनीकरण पुनर्वनीकरण को परिभाषित किया तथा इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए एक स्वच्छ विकास प्रक्रिया कार्यकारी परिषद् की भी स्थापना की।

मरकेश समझौते के अनुसार वनीकरण, पुर्नस्थापना आदि प्रक्रियायें परिभाषित की गयीं। क्योटो प्रोटोकाल और मरकेश समझौते में विशेष जलवायु परिवर्तन कोष के गठन पर भी फैसला लिया गया। पक्षकारों का नवां सम्मेलन दिसम्बर 2003 में इटली के मिलानो शहर में हुआ यह वानिकी के लिये महत्वपूर्ण था तथा कई रिपोर्टो में इसे लघु वानिकी सम्मेलन की संज्ञा दी। इसमें वानिकी परियोजनाओं के लिये प्रतिरूपात्मकता तथा क्रियाविधि को अन्तिम रूप दिया गया।

बाली कार्य योजना

पक्षकारों का तेंहरवा सम्मेलन 2007 में बाली में हुआ। प्राकृतिक वनों में संरक्षित कार्बन के महत्व तथा विश्व में हो रहे वन विनाश को कमकर जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण हेतु बाली कार्ययोजना में महत्वपूर्ण नीतिगत फैसले लिये गये। जिन्हे आज विश्व वानिकी समुदाय "रेड्ड प्लस" के नाम से जानता है।

कोपेनहेगन संधि

पक्षकारों का पन्द्रहवाँ सम्मेलन 2009 में डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में भारत के प्रधान मंत्री डॉ मनमोहन सिंह सहित दुनिया की लगभग 115 सरकारों के प्रमुख तथा राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया, दिसम्बर 2009 में पारित कोपनहेगन संधि में "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों को शीघ्रातिशीघ्र लागू करने का संकल्प लिया गया।

कानकुन समझौता

पक्षकारों का सोलहवां सम्मेलन (कोप–16) मैक्सिको के कानकुन शहर में दिसम्बर 2010 में सम्पन्न हुआ। यह समझौता "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिये अति महत्वपूर्ण है। इस समझौते में पहली बार "रेड्ड प्लस" के स्कोप को निर्धारित किया गया। कानकुन समझौते के अनुसार "रेड्ड प्लस" में निम्नलिखित क्रिया कलाप सम्मिलित होंगे :–

1. निर्वनीकरण को कम करना
2. वन क्षरण को कम करना
3. वनों में कार्बन भंडारणों का संरक्षण
4. वनों का सतत् प्रंबधन
5. वनों के कार्बन भंडारणों में बढ़ोत्तरी,

समझौते में यह भी प्रावधान रखा गया कि राष्ट्र "रेड्ड प्लस" कार्य क्रमों को कार्यान्वित करने के लिये अपनी अपनी "रेड्ड प्लस" कार्य योजना बनायेंगे, तथा चरणबद्ध रूप से उसका अनुपालन करेंगे।

कानकुन समझौते के अंतर्गत "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु वनों पर आधारित समुदायों,

वनवासियों के अधिकारो की सुरक्षा, जैवविविधता संरक्षण हेतु कड़े प्रावधान हैं।

"रेड्ड प्लस" कार्यक्रम से कार्बन संरक्षण को बाजार व्यवस्था के अंतर्गत या किसी निधि के रूप में प्रतिभागी समुदायों को भुगतान किया जायगा इस पर अभी समझौता नहीं हो पाया है।

क्योटो प्रोटोकोल में प्राकृतिक वनों के संरक्षण के फलस्वरूप प्राप्त कार्बन सेवाओं को शामिल नहीं किया गया था। "रेड्ड प्लस" में प्राक्रतिक वनों को भी जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण में महत्व दिया है।

भारत सरकार ने "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिये अपने विचार यू.एन.एफ.सी.सी.सी को प्रेषित किये है। "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों को पाइलट/परियोजना के रूप में उत्तराखण्ड, हिमाचल, जम्मूकश्मीर तथा पश्चिमी घाट के वनों में क्रियान्वित करने का विचार व्यक्त किया है। "हरित भारत मिशन" के अंतर्गत भी "रेड्ड प्लस" को लागू करने का भारत सरकार का विचार है। जिन राज्यों में हरित क्षेत्र संरक्षित हैं तथा वन संरक्षण के कड़े प्रावधान लागू है वे "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों से लाभान्वित हो सकते हैं।

(लेखक ने दिसम्बर 2010 में कानकुन (मैक्सिको) में सम्पन्न यू.एन.एफ.सी.सी.सी के पक्षकारों के सोलहवें सम्मेलन (कोप–16) में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में प्रतिभाग किया, प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व वन एवं पर्यावरण मंत्री श्री जयराम रमेश ने किया)

सच है, विपत्ति जब आती है, कायर को ही दहलाती है,
सूरमा नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं, काँटों में राह बनाते हैं।
मुख से न कभी उफ कहते हैं, संकट का चरण न गहते हैं,
जो आ पड़ता सब सहते हैं, उद्योग–निरत नित रहते हैं,
शूलों का मूल नसाने को, बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।
है कौन विघ्न ऐसा जग में, टिक सके वीर नर के मार्ग में
खम ठोंक ठेलता है जब नर, पर्वत के जाते पाँव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पान बन जाता है।
गुण बड़े एक से एक प्रखर, हैं छिपे मानवों के भीतर,
मेंहदी में जैसे लाली हो, वर्तिका–बीच उजियाली हो।
बत्ती जो नहीं जलाता है रोशनी नहीं वह पाता है।

–रामधारी सिंह दिनकर

मधुमेह के निदान में वनस्पतियों का योगदान

डॉ वाई.सी. त्रिपाठी, डॉ. राकेश कुमार एवं श्री विकास
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

मधुमेह–एक परिचय

मधुमेह जिसे डाइबेटीज मिलेटस या सामान्यतः डाइबेटीज कहते हैं, चयापची रोगों का एक समूह है, जिसका मुख्य संकेतन रक्त शर्करा में वृद्धि के रुप में होता है। इसके अन्य लक्षणों में बहुमूत्रण (पॉलियूरिया), अत्यधिक पसीना (ग्लाइकोसूरिया), अत्यधिक प्यास (पॉलिडिप्सीया) तथा अत्यधिक भूख लगना (पॉलिफेजिया) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थितियाँ भी मधुमेह के अन्तर्गत पारिभाषित हैं। वस्तुतः डाइबेटीज शब्द ग्रीक भाषा के डाइबेनेन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ होता है 'प्रवाह' जो इस व्याधि के अन्तर्गत अत्यधिक मूत्र प्रवाह से संबन्धित है। व्याधि की तीव्रता, स्थिति एवं निदान के आधार पर मधुमेह के विभिन्न प्रकार हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा मधुमेह के मुख्यतः तीन प्रकार बताये गये हैं, जिनमें इन्सुलिन अनाश्रित, इन्सुलिन आश्रित तथा कुपोषण सम्बन्धी मधुमेह प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त फाइब्रोकैलकुलस पैंक्रियाटिक तथा प्रोटीन डेफिसिएंट पैंक्रियाटिक मधुमेह के भी अन्य प्रकार बताये गये हैं। मधुमेह के इन सभी प्रकारों में कुछ विभिन्नताओं के अतिरिक्त अधिकांश लक्षण समान होते हैं।

वैश्विक परिदृश्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट 2005 के अनुसार विश्वभर में मधुमेह के 180 मिलियन रोगी हैं जिनकी संख्या सन् 2030 तक दो गुनी से अधिक हो सकती है। लगभग 80 प्रतिशत मधुमेह जनित मृत्यु अल्प या मध्यम आय वाले देशों में पाई गयी है। भारत में यह रोग एक बड़ी स्वास्थ्य समस्या के रूप में उभर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय डाइबेटिज फेडरेशन द्वारा प्रकाशित डाइबेटिज एटलस के अनुसार सन् 2025 तक भारत में मधुमेह रोगियों की संख्या 70 मिलियन से अधिक हो सकती है तथा सन् 2030 तक भारत, चीन व अमेरिका में मधुमेह रोगियों की संख्या सबसे ज्यादा होगी। इस दर से देश में मधुमेह रोगियों की संख्या इस हद तक बढ़ जायेगी कि मधुमेह प्रभावित हर पाँचवा व्यक्ति भारतीय होगा। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि आगामी वर्षों में यह रोग बड़ी स्वास्थ्य समस्या के रुप मे उभरेगा जिसका निदान समाज के लिए एक अहम् चुनौती होगा।

कारण एवं निदान

मधुमेह के कारणों में स्थूलता, शारीरिक श्रम की कमी, मानसिक तनाव, असंयमित खान–पान, आधुनिक जीवन शैली, आदि प्रमुख हैं। इन्सुलिन की खोज के बाद पाया गया कि मानव शरीर में इस हारमोन की कमी या पूर्णतया अभाव ही इस बीमारी की वजह है। इसके अतिरिक्त इस बीमारी के अनुवांशिक कारणों का भी पता चला है। चिकित्सीय अध्ययनों से ज्ञात है अग्नाशय की बीटा कोशिकाओं द्वारा इन्सुलिन के उत्पादन एवं यथानुसार समुचित उपलब्धता में व्यतिक्रम उत्पन्न होने से शरीर में इस रोग का प्रादुर्भाव होता है। मधुमेह शरीर के कई जीवनरक्षक अंगों एवं प्रणालियों को बुरी तरह प्रभावित करता है। अनियंत्रित मधुमेह दृष्टिदोष, हृदय रोग, किडनी रोग, रक्तसंचार में रूकावट, आदि को जन्म देता है। इस रोग के निवारण हेतु औषधीय उपचार के साथ ही साथ संतुलित आहार, नियमित व्यायाम एवं सक्रिय जीवनशैली अपनाने की सलाह दी जाती है तथा शरीर में हो रहे छोटे से छोटे परिवर्तनों एवं व्यतिक्रमों का पूरा–पूरा ध्यान रखना होता है। समन्वित रूप से कहा जाय तो इस रोग का निदान एक संपूर्ण नैदानिक प्रबंधन है, जिसे मधुमेह प्रबंधन भी कहते हैं।

गुड़मार *(जिमनेमा सिल्वेस्टर)*

गुड़मार की पत्तियों को चबाने से मीठे स्वाद के प्रति उत्कंठा कम हो जाती है जिससे मधुमेही को बार–बार मीठा खाने की इच्छा नही रह जाती। इस प्रकार संभवतः रक्त में ग्लूकोज की मात्रा न बढ़ने से पैंक्रियाज को इन्सुलिन के स्राव

हेतु बार–बार प्रेरित करने का दबाव उसे थकान से बचाता है। गुड़मार की पत्तियों में पाये जाने वाले सक्रिय तत्व जिम्नेमिक एसिड से ऐलोक्सन डायबेटिक चूहों को उपचारित करने पर रक्तषर्करा में सार्थक कमी देखी गई पर सामान्य चूहों में सार्थक गिरावट नहीं देखी गई। मधुमेह से ग्रसित मनुष्यों में भी रक्त शर्करा में ऐसी ही कमी पायी गई है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में मधुमेह के प्रेरणात्मक कारणों में तनाव व उससे जुड़े हार्मोंस का विशेष स्थान है। एक अन्य शोध में गुड़मार के सत्व, एड्रीनलीन व कार्टीसोन जनित तनाव की प्रतिक्रिया में रक्तशर्करा को बढ़ने से रोकने में सक्षम पाये गये। इन शोधों के आधार पर कहा जा सकता है कि गुड़मार तनाव जनित व असंतुलित हार्मोन के स्राव से कुपित मधुमेह एवं प्रौढ़ रोगियों की कार्बोहाइड्रेट चयापचय को नियंत्रित करने में अहम भूमिका निभाता है।

बड़ *(फाईकस बेंगालेन्सिस)*

बड़ की जड़ व तने से निर्गत दूधिया रस जोड़ों के दर्द, गठिया आदि वात रोगों में प्रयुक्त होता है तथा इसकी छाल का अर्क मधुमेह के उपचार में दिये जाने की प्रथा परम्परागत चिकित्सा पद्धति में रही है। 100 ग्राम बड़ की छाल को एक गिलास पानी में 24 घंटे रखने के बाद पानी को छान कर पीने से 3 से 6 माह में मधुमेही की रक्त शर्करा में कमी देखी गई है। एक अन्य शोध में 20 ग्राम/किग्रा शरीर भार की मात्रा में इसकी छाल के सत्व को एक माह तक डाईबेटिक चूहों को देने पर 49–52 प्रतिशत तक रक्त शर्करा में कमी देखी गयी तथा दवा बंद करने पर भी रक्त शर्करा सामान्य बनी रही। इसके साथ ही रक्त यूरिया एवं कोलेस्ट्राल में भी गिरावट देखी गयी। बड़ की छाल में लेवोन्वाएड नामक रासायनिक यौगिक पाये गये हैं जिनमें रक्त ग्लूकोज को कम करने की क्षमता टालबूटेमाइड के समान या उससे भी बेहतर पायी गयी है। इसकी छाल से निष्कर्षित एक अन्य सक्रिय तत्व ल्यूकोपेलार्गोनीडिन की 100 मिग्रा/किग्रा मात्रा का डाइबेटिक कुत्तों पर परीक्षण करने पर सार्थक अल्पग्लूकोजरक्तता तथा इन्सुलिन स्तर बढ़ाने की क्षमता पाई गई तथा ग्लाइकोसिलेट हीमोग्लोबीन के प्रतिशत में भी कमी दर्ज की गयी। इन वैज्ञानिक परीक्षणों एवं तथ्यों से पौधे के मधुमेह उपचार में लाभदायक प्रभाव की पुष्टि होती है।

कुंदरू/बिम्बा *(कोसिनिया इन्डिका)*

इस पौधे के औषधीय गुणों के मद्देनजर इसे इंसुलिन का भारतीय अनुकल्प माना जाता रहा है। बिम्बा की पत्तियों से निष्कर्षित ताजे स्वरस को डाइबेटिक चूहों पर परीक्षण करने से रक्त ग्लूकोज में सकारात्मक कमी देखी गयी। इसके फलों का रासायनिक निष्कर्ष डाइबेटिक खरगोशों में टालबूटेमाइड के समान रक्त शर्करा कम करने तथा कार्टीसोन प्रेरित अतिग्लूकोजरक्तता रोकने में सक्षम पाया गया है। मधुमेह से प्रभावित प्रौढ़ व्यक्तियों (40–60 वर्ष) को बिम्बा के तने से बनाये चूर्ण की 3–4 ग्राम प्रतिदिन देने पर रक्तशर्करा में संतोषजनक कमी आई, साथ ही रक्त में यूरिया व कोलेस्ट्रॉल में भी कमी देखी गयी जो कि हृदय रोग से बचाव के लिए अच्छा संकेत है। बिम्बा से एक पेक्टिन निकाला गया है जिसमें रक्तशर्करा में सार्थक कमी तथा यकृत ग्लाइकोजन में वृद्धि करने की क्षमता पायी गयी है। एक अन्य शोध में बिम्बा के उपचार से सीरम इन्सुलिन में बढ़त पायी गई तथा रोगियों में कब्जीयत, अति क्षुधा एवं प्यास के लक्षणों में कमी आई। बिम्बा से विगलित ट्राइटरपीन मधुमेह के कारण बिगड़े चयापचय को सुधारने में सक्षम पाया गया है।

करेला *(मोमोर्डिका चिरंशिया)*

परम्परागत चिकित्सा पद्धति में करेला का स्वरस पेट की बीमारियों के अलावा मधुमेह के इलाज हेतु किया जाता रहा है। करेले के बीजों से एक सक्रिय तत्व चारेनटिन निकाला गया है, जिससे डाइबेटिक खरगोशों को उपचारित करने पर उनमें अल्पग्लूकोजरक्तता पायी गई। इसके स्वरस को टालबूटेमाइड के साथ देने पर रक्त ग्लूकोज कम करने की

क्षमता में वृद्धि देखी गयी। एक अन्य शोध में करेला से एक विशुद्ध क्रिस्टलीय प्रोटीन निकाला गया है जिसमें मधुमेह पीड़ित बाल एवं प्रौढ़ रोगियों को उपचारित करने से रक्त ग्लूकोज की मात्रा में 4 से 5 घंटे तक कमी होती देखी गई, परंतु करेला फल के सूखे चूर्ण द्वारा उपचार से यथोचित परिणाम न मिलने से इस बात की पुष्टि होती है कि करेले का स्वरस व उसका यौगिक ताप–अस्थिर हैं। करेले का रस ऊत्तकों में ग्लूकोज उद्ग्रहण बढ़ाने के अलावा पैंक्रियाज में इन्सुलिन का स्राव बढ़ाने में योगदान करता है। करेले के रस में पाये जाने वाले कुछ तत्व रक्त मूत्र परीक्षण में शर्करा होने का भ्रामक संदेश देते हैं, जिससे सावधान रहना चाहिए।

जामुन *(इयुगेनिया जामोलाना)*

जामुन के बीज, छाल व पत्तियों से निकाले रस के जलीय सत्व मधुमेह के उपचार में प्रयुक्त होते रहे हैं। इसकी गुठलियों को सुखाकर बनाए गये चूर्ण की 3 ग्राम मात्रा प्रतिदिन सुबह–शाम ग्रहण करने से मधुमेह में लाभ देखा गया है। ताजे जामुन के 60–300 ग्राम रस के प्रयोग से मधुमेही के मूत्र में जाने वाली शर्करा तथा बीजों के अल्कोहॉलिक सत्व के प्रयोग से रक्त शर्करा में कमी पाई गयी है। अन्य प्रयोगों में जामुन की छाल का सत्व यकृत तथा ऊत्तकों में ग्लाइकोजन की मात्रा बढ़ाने में सक्षम पाया गया जिससे जामुन के कार्बोहाइड्रेट चयापचय क्षमता की पुष्टि होती है।

गुडूची *(टीनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया)*

गुडूची मधुमेह व चयापचीय रोगों के निवारण के लिए उपयोगी औषधी मानी जाती रही है। पौराणिक ग्रंथों में गुडूची को अमृत कहा गया है, जो असमय बुढ़ापे के लक्षणों को दूर करने में सक्षम है। वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा इसमें प्रतिरक्षीकरण की क्षमता पायी गई है तथा आयुर्वेदिक ग्रंथों में इसे रोग प्रतिरोधक माना गया है। भेषजीय परीक्षणों में गुडूची के जलीय सत्व से मधुमेह प्रभावित चूहों एवं खरगोशों को उपचारित करने से उनमे अल्पग्लूकोजरक्तता दर्ज की गई तथा निरंतर उपचार की अवस्था में ग्लूकोज चयापचय में वृद्धि देखी गई। गुडूची में एक कड़वा सक्रिय मूल पाया गया है, जो एड्रीनिलीन प्रेरित अतिग्लूकोजरक्तता को नियंत्रित करने में सफल पाया गया है। परीक्षणों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि गुडूची मधुमेही व्यक्ति के तनाव की स्थिति में रक्तशर्करा को बढ़ने से रोक कर अतिग्लूकोजरक्तता के दुष्प्रभावों से बचाव कर सकता है।

बीजासार *(टेरोकार्पस मारसूपियम)*

बीजासार की लकड़ी से बने गिलास में रातभर रखा पानी पीने से मधुमेह के रोगियों की बढ़ी रक्त शर्करा सामान्य करने का दावा किया जाता रहा है। इसके जलीय क्वाथ को ग्लूकोज के साथ चूहों को पिलाने से रक्तशर्करा में उल्लेखनीय कमी देखी गई जो इस तथ्य का परिचायक है कि बीजासार शरीर में शर्करा का अवशोषण बाधित करता है। बीजासार की छाल से प्राप्त सक्रिय तत्व, एल–इपीकैटेचीन के प्रभाव से मधुमेह प्रभावित चूहों में अल्पग्लूकोजरक्तता देखी गई है तथा इन चूहों के पैन्क्रियाज में इन्सुलिन निर्मित करने वाली बीटा कोषिकाओं के पुनर्जनन की भी क्षमता पायी गई। चिकित्सीय परीक्षणों में प्रौढावस्था के मधुमेह रोगियों में ग्लूकोज चयापचय में वृद्धि होती देखी गई। मधुमेह रोगियों द्वारा लंबे समय तक बीजासार के चूर्ण का सेवन करने से कदाचित् उनमें कब्जियत, भूख की कमी तथा बदहजमी की शिकायत देखी गई है, परंतु इन सब के बावजूद बीजासार को परम्परागत चिकित्सा पद्धति में अहम् स्थान प्राप्त है।

पिम्परी *(कासियेरिया एसकुलेंटा)*

पिम्परी की जड़ की छाल पुराने व जटिल मधुमेह की चिकित्सा में प्रभावी है। इसके जलीय सत्व में

अल्पग्लूकोजरक्तता का प्रभाव पाया गया है। चिकित्सीय परीक्षणों में ऐसा पाया गया है कि जलीय सत्व का 2–3 सप्ताह तक सेवन, ग्लूकोज चयापचय में उल्लेखनीय वृद्धि करता है तथा इन्सुलिन के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाता है।

चिरायता *(स्वेर्टिया चिराता)*

चिरायता का क्वाथ मधुमेह के उपचार में एक शक्तिवर्द्धक, क्षुधा पौष्टिक व मल–मूत्र नियंत्रक के रूप में आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयोग किया जाता रहा है। चिकित्सीय परीक्षणों के दौरान रोगियों में इसके उपचार से अतिपिपासा, अतिक्षुधा, बहुमूत्रता, आदि मधुमेह के लक्षणों में कमी पायी गई, परंतु रक्तशर्करा में विशेष कमी नहीं देखी गयी। टॉलबूटेमाइड के साथ ग्रहण करने से अल्पग्लूकोजरक्तता में इजाफा पाया गया तथा प्लाजमा इन्सुलिन के स्तर में बढ़त दर्ज की गयी। इसके सक्रिय मूल द्वारा उपचारित करने पर रक्तशर्करा में सार्थक कमी के साथ–साथ लीवर में ग्लाइकोजन का स्तर बढ़ा हुआ पाया गया।

नीम *(एजाडिरेक्टा इंडिका)*

नीम की पत्तियों के जलीय सत्व में रक्त शर्करा को कम करने का गुण विद्यमान होता है। इसमें उपस्थित सकिय मूल, निम्बिडीन के खरगोशों पर परीक्षण द्वारा इसके अल्पग्लूकोजरक्तता सम्बन्धित गुणों की पुष्टि की गई है। साथ ही यह अतिग्लूकोजरक्तता को रोकने में भी सक्षम पाया गया। इन परीक्षणों से इसके तनाव की स्थिति में भी सक्रिय होने की पुष्टि होती है।

मेथीदाना *(ट्राइगोनेला फोएनम ग्रेसियम)*

मेथीदाना 6 ग्राम को आधे ग्लास पानी में भिंगो कर सुबह उसका पानी निथार कर पीने से मूत्रशर्करा की शिकायत दूर हो जाती है। मेथी दाने में ट्राइगोनेलीन नामक एलकेल्वाएड पाया गया है, जिसका मधुमेह प्रभावित चूहों पर प्रयोग से 24 घंटों तक अल्पग्लूकोजरक्तता देखी गयी। मेथीदाना कई आयुर्वेदिक औषधियों का महत्वपूर्ण घटक है। इसके शोथरोधी गुण मधुमेही जनित शोथज विकार दूर करने में सहायक हैं।

सदाबहार *(कैथेरेंथस रोजियस)*

प्राचीन चिकित्सीय ग्रंथों में सदाबहार को मधुमेह रोधी बताया गया है। इसकी पत्तियों के सत्व का डाइबेटिक खरगोशों पर परीक्षण करने पर इसमें अल्पग्लूकोज रक्तता का गुण पाया गया है। आधुनिक परीक्षणों के आधार पर सदाबहार का कैंसर की चिकित्सा में भी विशेष स्थान है।

ग्वारपाठा *(एलोवेरा)*

एलोवेरा की पत्तियों से निष्कर्षित सक्रिय मूल भेषजीय परीक्षणों में रक्तशर्करा को कम करने वाला पाया गया है। इसके एलाक्सीन डाइबेटिक खरगोशों पर परीक्षण से रक्तशर्करा में उल्लेखनीय कमी देखी गई है।

तेजपत्र *(सिनामोमम तमला)*

तेजपत्र का मसाले रुप मे प्रयोग सर्वविदित है। परम्परागत रुप से इसका औषधीय प्रयोग भी होता रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा इनके मधुमेहरोधी गुणों का पता

चला है। तेजपत्र की पत्तियों से इन्सुलिन अनाश्रित मधुमेह रोगियों की रक्तशर्करा में गिरावट देखी गयी तथा इनके प्लाजमा इन्सुलिन में इजाफा पाया गया।

हरिद्रा *(कुरकुमा लौंगा)*

हरिद्रा या हल्दी, मधुमेह निदान से संबन्धित आयुर्वेदिक दवाओं में प्रयुक्त होता रहा है। प्रतिरक्षीकरण एवं पित्तवर्धी गुणों के कारण यह बदहजमी को रोकता है। हरिद्रा में कुरकुमीन नामक प्रभावी अंश पाया जाता है जिसका कार्बोहाइड्रेट–प्रचुर आहार पोषित खरगोशों पर भेषजीय परीक्षण में रक्त ग्लूकोज कम होता पाया गया है। स्थूलता व मधुमेह से प्रभावित रोगियों में हरिद्रा रक्त शर्करा को कम करने में सहायक होता है।

अरनी *(क्लिरोडेंड्रान फलोमिडिस)*

अरनी का अल्कोहलीय निष्कर्ष में रक्तशर्करा को कम करने का गुण पाया गया है। पौधे का अल्कोहलीय निष्कर्ष हाइपोग्लासिमिया की स्थिति में लाभकारी पाया गया है।

अवर्तकी *(कैसिया आरिकुलाटा)*

पौधे का अल्कोहलीय एवं जलीय निष्कर्ष हाइपोग्लासिमिया की अवस्था में लाभकारी है। इसके अल्कोहलीय निष्कर्ष का एलाक्सीन डाइबेटिक चूहों एवं खरगोशों पर परीक्षण से यह रक्तशर्करा को कम करने में प्रभावी पाया गया है।

इनके अतिरिक्त गहन रासायनिक, जैवकियात्मक एवं भेषजीय अनुसंधानों द्वारा मार्निंग ग्लोरी *(आइपोमिया नील)*, बेर या चाइनीज डेट *(जीजिफस जुजुबा)*, अदरख *(जींजिबर आफिसिनेलिस)*, पीलिया या यलोट्रमपेटबष *(टेकोमा स्टेन्स)*, वर्डोलागा, पुनर्वा या पिगवीड *(पोरटुलेका ओलेरेसिया)*, आदि रक्तशर्करा को कम करने में सहायक पाये गये हैं। इसी प्रकार कोंच, किवांच, वेलवेट बीन *(मुकुनिया प्यूरिटा)*, कँवल या वाटर लिली *(निम्फाइया नाउचाली)*, बाणबेल *(किकसिया रेमोसीसिमा)*, अमलतास *(कैसिया फिसतुला)*, सेमला *(बाउहिनिया रेटुसा)*, तामालिनी, काला सिरिस *(एलबिजिया स्टीपुलाटा)*, संखाहुली या छोटा धतूरा *(जैनथम स्ट्रमेरियम)*, विजयसर या मालाबार कीनो वृक्ष *(टेरोकार्पस मारसुपियम)*, एरण्ड *(राइसिनस कोम्यूनिस)*, आदि के सत्व व सक्रिय मूल भी हाइपोग्लासिमिया के इलाज में प्रभावी पाये गये हैं।

मधुमेह के उपचार में उपरोक्त वनस्पतियों के भिन्न–भिन्न जलवायु एवम् विभिन्न खनिज व पोषकों से युक्त मृदा में उत्पन्न होने के कारण उनमें सक्रिय तत्वों की मात्रा में भिन्नता पाई जाती है, जिससे औषधियों के मानकीकरण में कठिनाई आती है। इन्हीं कारणों से ये वनस्पतियाँ आम उपचार के लिए केवल वैकल्पिक चिकित्सा का ही दर्जा पा सकी हैं। परम्परागत रुप से ये औषधीय वनस्पतियाँ सत्व, काढ़ा या चूर्ण के रुप में प्रयुक्त होती रही हैं। आज जरुरत इस बात की है कि सघन अनुसंधान के द्वारा आधुनिक मांग एवं चलन के अनुसार इन्हें मानकीकृत दवाओं के रुप में विकसित किया जाये। विकासशील देशों की लगभग 75 प्रतिशत आबादी आज भी एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति का बोझ उठाने में असमर्थ है, और इस प्रकार वैकल्पिक चिकित्सा पर ही निर्भर है। अतः जन सामान्य को सस्ती एवम् प्रभावी चिकित्सा उपलब्ध कराने हेतु इस दिशा में हर संभव प्रयास अपेक्षित है।

सुगन्धित तेल: स्वाद एवं सुगंध उद्योगों हेतु एक बहुमूल्य प्राकृतिक उत्पाद

डॉ. विनय कुमार वार्ष्णेय,
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सुगन्धित पौधों (एरोमेटिक प्लान्ट्स) का मानव जीवन में प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। चमेली, चम्पा, केतकी, गुलाब, खस, केवड़ा, चन्दन आदि के सुगन्ध गुणों का प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णन मिलता है। सुगन्धित तेल युक्त पादपों का आयुर्वेद में भी उनके औषधीय गुणों के उपयोग हेतु उल्लेख किया गया है। सुगन्धित पौधों में सुगन्ध उनके विभिन्न भागों यथा पत्तियों (जिरेनियम, कपूर, यूकेलिप्टस, लेमन ग्रास, दालचीनी आदि), फूलों (बेला, चमेली, गुलाब, गेंदा), फलों (नींबू, संतरा, बनिला), काष्ठ (चन्दन, अगर, देवदार), बीजों (मस्क दाना, तिल), मूलों (जड़ों)– खस, कन्द (बच्छ, अदरक, हल्दी), छाल (दालचीनी, केसिया), वायवीय भाग (पुदीना, तुलसी, लेवेण्डर) में उपस्थित सुगन्धित यौगिकों के कारण होती है। जब इन भागों का आसवन किया जाता है तब एक सुगन्धित द्रव्य प्राप्त होता है जिसे सुगन्धित तेल (essential oil) कहते हैं। सुगन्धित यौगिकों के जटिल मिश्रण से युक्त यह तेल अत्यन्त वाष्पशील होता है।

सुगन्धित तेल पौधों के किसी एक विशिष्ट भाग अथवा विभिन्न भागों में उपस्थित विशिष्ट कोशिकाओं, ग्रन्थियों अथवा नलिकाओं में सूक्ष्म बूंदों के रूप में उपस्थित होते हैं। ये तेल लगभग 60 पादप कुलों (फैमिली) के पौधों में पाए जाते हैं। लैबिएटी, रूटेसी, जर्मिनेसी, अम्बैलीफेरी, एस्टैरेसी, लॉरेसी तथा ग्रेमिनी आदि कुलों में पाए जाने वाले पौधे सुगन्धित तेलों के अच्छे स्रोत माने जाते हैं। सुगन्धित तेल सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण प्राकृतिक उत्पाद है। अपनी विशिष्ट सुगंध के कारण ये तेल स्वाद एवं सुगन्ध उद्योगों में कच्चे माल के रूप में विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाने में प्रयोग किए जाते हैं। व्यापारिक रूप से इनको मुख्यतः तीन प्रकार से प्रयोग किया जाता है:–

1. सौंदर्य प्रसाधन, परफ्यूम, साबुन, डिटर्जेंट और विविध औद्योगिक उत्पाद जैसे – कीटनाशक, पेन्ट आदि में सुगन्ध प्रदान करने हेतु।
2. विभिन्न खाद्य उत्पादों यथा बेकरी उत्पाद, कैण्डी, कन्फैक्शनरी, प्रसंस्करित माँस तथा शीतल पेय आदि में स्वाद के लिए तथा
3. स्वास्थ्य उत्पादों जैसे– डेन्टल क्रीम, सीरप, टैबलेट, माउथवाश, जीवाणुनाशक आदि में औषधीय गुणों के लिए।

विश्व भर में पादप आधारित उत्पादों की बढ़ती माँग के चलते सुगन्धित पौधों के उत्पादन एवं प्रसंस्करण पर बहुत जोर दिया जा रहा है। प्रस्तुत लेख में सुगन्धित पौधों से तेल उत्पादन की विधि, तेलों के रासायनिक संघटन, लाक्षणिक गुण तथा विश्लेषण, इनके विस्तृत उपयोग तथा सामाजिक आर्थिक परिदृश्य में इनकी भूमिका पर चर्चा की गई है।

सुगन्धित तेल उत्पादन की विधियाँ

सुगन्धित पौधों से सुगन्धित तेल प्राप्त करने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। उपयुक्त विधि का चयन तेल के उपयोग तथा पादप भागों जिससे तेल प्राप्त किया जाता है, पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त तेलों के सुगन्ध एवं औषधीय गुण भी उत्पादन विधि द्वारा प्रभावित होते हैं। व्यापारिक उत्पादन हेतु मुख्यतः आसवन विधियों का उपयोग किया जाता है। तेलों की वाष्पशीलता गुण का लाभ इन विधियों में लिया जाता है। सिद्धान्तिक रूप से आसवन के अंतर्गत, पादप मिश्रण से तेलों को वाष्प में परिवर्तित किया जाता है और वाष्प को ठंडा कर तेल प्राप्त कर लिया जाता है। प्रमुखतः तीन आसवन विधियों – जल आसवन, जल भाप आसवन तथा भाप आसवन का उपयोग किया जाता है।

जल आसवनः– इस विधि में तेल युक्त पादप भाग को जल के साथ आसवित करते हैं तथा तेल और जल का मिश्रण प्राप्त होता है। तेल जल से हल्का होने के कारण इसके ऊपर रहता है और सुगमता से पृथक कर लिया जाता है। जल आसवन एक पारम्परिक विधि है और इसका उपयोग मुख्यतः फूलों से

तेल निकालने में किया जाता है। गुलाब, सिट्रस, कनांगा ओडोरेटा आदि फूलों का सुगन्धित तेल इसी विधि से प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त जल आसवन विधि से विभिन्न प्रकार के अतर (इत्र) जैसे – बेला, केवड़ा, खस, गुलाब, विभिन्न मसालों के इत्र आदि भी बनाए जाते हैं। मिट्टी का इत्र जिसकी अरब देशों में बहुत माँग है, का भी व्यापारिक उत्पादन इसी विधि से करते हैं। उत्तर प्रदेश का कन्नौज क्षेत्र अतर उत्पादन में अग्रणी है।

जल भाप आसवन :– यह जल आसवन के समान होता है परन्तु इसमें जल तथा तेल युक्त पादप भाग को पृथक – पृथक रखा जाता है। जल को गर्म करने पर उससे बनी भाप जब पादप में से प्रवाहित होती है तो अपने साथ उसमें उपस्थित तेल ले जाती है और भाप तथा तेल वाष्प का मिश्रण संघनक में से प्रवाहित होने पर ठंडा होकर तेल व जल का मिश्रण प्राप्त होता है। इससे बाद में मानक विधियों द्वारा तेल अलग कर लेते हैं। यह विधि जलासवन से उत्तम है तथा इससे अच्छे गुणवत्ता वाला तेल प्राप्त होता है। क्योंकि जल तथा पादप एक दूसरे के सम्पर्क में नहीं आते तथा जलापघटन तथा तापअपघटन आदि रासायनिक क्रियाएं नहीं हो पाती। ये रासायनिक क्रियाएं तेल की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। जल भाप आसवन विधि शाक (हर्ब्स) तथा पत्तियों के आसवन के लिए उपयुक्त है। लैवेन्डर, थाइम, मिंट (पुदीना) आदि का व्यापारिक उत्पादन इसी विधि से किया जाता है।

जल एवं तेल के मिश्रण से तेल को पृथक करने के बाद शेष जल में सुगन्धित यौगिक घुले रहते हैं। इस जल को पुनः आसवन पात्र में पहुँचा दिया जाता है तथा इस प्रक्रम को जब तक दोहराते हैं जब तक कि जल में सुगन्धित यौगिकों की मात्रा वांछित स्तर पर न पहुँच जाए। इस प्रकार प्राप्त जल को मूल रूप में ही प्रयोग किया जाता है जैसे गुलाबजल अथवा इसमें से सुगन्धित यौगिकों का निष्कर्षण उचित विलायक द्वारा कर लिया जाता है। उपरोक्त प्रक्रम को कोहोबेशन कहते हैं।

भाप आसवनः– यह विधि मूलों, काष्ठ, बीजों आदि सख्त भागों से तेल प्राप्त करने की उत्तम विधि है। इसमें अधिक दाब (5–10 बार) तथा ताप (150 – 200° से.) वाली भाप का प्रयोग किया जता है। भाप के दाब एवं ताप को नियंत्रित किया जा सकता है। इस नियन्त्रण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि जलापघटन तथा तापाघपटन जैसी क्रियाएं नियन्त्रित की जा सकती है। अधिकतर सुगन्धित तेलों का इसी विधि से उत्पादन किया जाता है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त विलायक निष्कर्षण (सोल्वेंट एक्सट्रेक्शन) तथा परम क्रांतिक द्रव निष्कर्षण (सूपर क्रीटिकल लूड एक्सट्रेक्शन) विधियां भी तेलों के उत्पादन में प्रयोग की जाती है। वर्तमान में हमारे देश में जिन सुगन्धित तेलों का व्यापारिक रूप से उत्पादन किया जाता है, वे हैं – पुदीना (मिंट), तुलसी, पचौली, पामारोजा, लेमनग्रास, लेवेण्डर, खस, नागरमोथा, चमेली, बेला, रोजमेरी, मेरीगोल्ड, चन्दन आदि।

रासायनिक संघटन, लाक्षणिक गुण तथा विश्लेषण

सुगन्धित तेल विभिन्न रासायनिक यौगिकों का एक जटिल मिश्रण है। सामान्यतः इनमें तीन मुख्य प्रकार के यौगिक पाये जाते हैं :–

1. हाइड्रोकार्बन, 2. आक्सीजनीकृत यौगिक तथा 3. मिश्रित यौगिक। हाइड्रोकार्बन, कार्बन व हाइड्रोजन से बने यौगिक होते हैं और इनमें मोनोटरपीन, सेस्कुइटरपीन सम्मिलित होते हैं। आक्सीजनीकृत यौगिकों के रूप में उपरोक्त टरपीन हाइड्रोकार्बनों के एस्टर, एल्डिहाइड, कीटोन, एल्कोहॉल आदि यौगिक उपस्थित होते हैं जबकि मिश्रित यौगिकों में अम्ल, लैक्टोन तथा सल्फर व नाइट्रोजन युक्त यौगिक सम्मिलित हैं। सुगन्धित तेल जल में अघुलनशील परन्तु एल्कोहॉल, ईथर तथा वसा अम्लों आदि में घुलनशील होते हैं। इन तेलों के औषधीय एवं सुगन्ध गुण इनके गुणात्मक एवं मात्रात्मक संगठन पर निर्भर करते हैं। अतः सुगन्धित तेलों का संगठन निर्धारित करने के लिए विभिन्न तकनीकों का उपयोग किया जाता है। गुणात्मक विश्लेषण के लिए विभिन्न भौतिक रासायनिक गुणधर्मों जैसे – क्वथनांक, घनत्व, प्रकाशीय घूर्णन, अपवर्तनाक, विलेयता, अम्ल मूल्य, आयोडीन मूल्य, कार्बोनिक मूल्य तथा साबुनीकरण मूल्य का निर्धारण किया जाता है। मात्रात्मक विश्लेषण करने के लिए सामान्यता जी सी – एम एस तकनीक का प्रयोग करते हैं। तेलों में उपस्थित यौगिकों के संरचना निर्धारण हेतु विभिन्न क्रोमेटोग्राफी तथा स्पेक्ट्रोस्कोपी तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

उपयोग :– सुगन्धित पौधों से प्राप्त सुगन्धित तेलों का वृहद एवं विस्तृत उपयोग है। ये तेल मानव को प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक अनुपम भेंट है। मूलतः सुगन्धित तेल स्वाद एवं सुगन्ध उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। ये तेल अपने मूल रूप में अथवा अवयव सुगन्ध यौगिकों (जो तेल के प्रसंस्करण से प्राप्त किए जाते हैं) के रूप में विभिन्न उद्योगों में लगभग सभी प्रकार के उपभोक्ता उत्पादों में सुगन्ध तथा स्वाद प्रदान करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त सुगन्धित तेलों का उपयोग एरोमाथैरेपी में भी किया जाता है जिसमें सुगन्ध द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार किया जाता है। मसालों के रूप में इन तेलों का भारतीय रसोई में एक विशिष्ट स्थान है। मसालों में उपस्थित सुगन्धित तेल व्यंजन को एक विशेष स्वाद प्रदान करते हैं और इनकी महक तथा स्वाद से शरीर में विभिन्न पाचक रसों का स्त्राव शुरू हो जाता है।

भारत में उत्पादित तेलों का एक बड़ा भाग (लगभग 20 हजार टन) प्रसंस्करित किया जाता है। इस प्रक्रम द्वारा तेलों में से अवांछित पदार्थ हटाकर उनकी सुगन्ध गुणवत्ता तथा स्थायित्व बढ़ाया जाता है। जैसे – अल्पमात्रा में उपस्थित जल तथा रंग को हटाना, सिट्रस पील तथा जिरेनियम तेलों में टरपीन यौगिकों को हटाकर तीव्र सुगन्ध वाले आक्सीजनीकृत टरपीनों की मात्रा बढ़ाना। इसके अतिरिक्त प्रसंस्करण तकनीकों द्वारा तेलों के सुगन्धित अवयव जैसे – मिंट तेल से मेन्थॉल, लौंग के तेल से यूजीनॉल, सिट्रोनेला तथा पामारोजा तेल से जिरेनिऑल, यूकेलिप्टस सिट्रोडोरा तेल से सिट्रोनेलॉल तथा लेमनग्रास तेल से सिट्रॉल का पृथक्करण किया जाता है। ये यौगिक अपने मूल रूप में अथवा रासायनिक व्युत्पन्नों के रूप में रासायनिक क्रियाओं द्वारा उनके महत्वपूर्ण सुगन्ध व्युत्पन्नों/यौगिकों (जैसे – जिरेनियॉल/सिट्रोनेलॉल को इनके एसीटेट, लाइमोनीन को कारवोन, सिट्रॉल को स्यूडोआयोनोन) में परिवर्तित किया जाता है।

सामाजिक आर्थिक परिदृश्य में सुगन्धित तेलों की भूमिका

विश्व में सुगन्धित तेलों एवं इनके उत्पादों का बहुत बड़ा बाजार है। इनकी गुणवत्ता तथा मूल्य में बहुत विविधता पाई जाती है। यह विभिन्नता सुगन्धित पौधों की उपलब्धता, कृषि – जलवायु, दशाऐं जिसमें ये उगते हैं, तेल की मात्रा तथा उत्पादक के नियन्त्रण मानकों के कारण होती है। इसके अतिरिक्त संश्लेषित यौगिक, जिनको इन तेलों तथा इनके अवयवों के स्थान पर विभिन्न उत्पादों में प्रयोग किया जाता है, यह यौगिक तेलों के व्यापार को प्रभावित करते है। फिर भी प्रकृति द्वारा प्रदत्त इन प्राकृतिक तेलों का विभिन्न स्वाद तथा सुगन्ध उत्पादों में उपयोग आवश्यक रूप से जारी है क्योंकि :–

1. प्राकृतिक रूप से प्राप्त तेलों के रासायनिक संघटन एवं उनके सुगन्ध तथा स्वाद गुणों को संश्लेषित पदार्थों के मिश्रण से निर्मित नहीं किया जा सकता।
2. किसी एक विशेष उत्पाद के लाक्षणिक स्वाद एवं सुगन्ध प्रदान करने वाले अवयवों को संश्लेषित करना सदैव आर्थिक रूप से लाभकारी नहीं होता है।
3. कुछ निश्चित स्वाद उत्पादों में प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग अपरिहार्य है तथा विश्व स्तर पर प्राकृतिक पदार्थों पर आधारित उत्पादों, उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न डालने के कारण, माँग में तेजी से वृद्धि हो रही है।

सुगन्धित तेलों (तारपीन तेल छोड़कर) का विश्व में अनुमानित उत्पादन लगभग 1,05,000 टन है। भारत 17% हिस्सेदारी के साथ विश्व बाजार में तीसरे स्थान पर अमेरिका तथा चीन के पश्चात आता है। देश में सुगन्धित तेलों का अनुमानित उत्पादन लगभग 23,000 टन है। उपयोग के आधार पर भारतीय सुगन्धित तेलों को तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है –

क. सुगन्ध उत्पादों में उपयोग हेतु (लगभग 175 टन)
ख. स्वाद उत्पादों में उपयोग हेतु (लगभग 300 टन)
ग. प्रसंस्करण हेतु (लगभग 20,000 टन)

प्रसंस्करण हेतु उपलब्ध तेल हैं – तुलसी, डीमेन्थोलाइस्ड मिंट, सिट्रोनेला जावा, लेमन ग्रास, मेन्था पिपरेटा, *यूकेलिप्टस सिट्रोडोरा*, सिडारवुड (देवदार) आदि। सुगन्ध आधारित उत्पादों के बाजार में विभिन्न उत्पादों की भागीदारी इस प्रकार है :–

घरेलू उत्पाद	15 %
उच्च गुणवत्ता वाली परफ्यूम	21 %
साबुन, डिटर्जेंट	34 %
प्रसाधन	25 %
अन्य	05 %

वर्तमान में वैश्विक स्वाद एवं सुगन्ध उद्योग लगभग 11 विलियन डॉलर का है जबकि भारत की इस उद्योग में

भागीदारी मात्र 2.3% है। भारत में लगभग 1300 से ज्यादा एरोमैटिक पौधें पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त मसाले प्रदान करने वाले पौधों की भी कई प्रजातियां हैं। 18 कुलों के लगभग 44 सुगन्धित पौधे देश में सुगन्धित तेलों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। लगभग 20 से ज्यादा प्रजातियां सीमांत से 60,000 हेक्टेयर वाले क्षेत्र में उगाई जाती हैं।

भारत की अपनी विविध कृषि जलवायु दशाओं, उर्वरा मृदा शक्ति, पारम्परिक ज्ञान तथा बहुतायत में उपलब्ध मानव संसाधन के साथ प्राकृतिक सुंगन्धित तेलों तथा इनके उत्पादों की उत्पादन तथा पूर्ति हेतु विश्व बाजार में एक अहम् भूमिका है। सुगन्धित पौधों के वाणिज्यिक उत्पादन की भारत जैसे विकासशील देश में एक महती आवश्यकता है क्योंकि –

1. उन्नत किस्मों वाले सुगन्धित पौधों के उत्पादन से स्वाद एवं सुगन्ध उद्योग को गुणवत्ता वाले कच्चे माल की नियमित आपूर्ति सम्भव होगी। कच्चे माल की अनियमित और गुणवत्ताहीन तथा दूषित आपूर्ति वर्तमान में इस उद्योग के लिए एक प्रतिकूल कारक है। उच्च गुणवत्ता वाले कच्चे माल से उत्पादित उत्पादों की बाजार में ज्यादा मांग है तथा इनके निर्माण में लाभांश भी ज्यादा है।
2. किसानों का पारम्परिक फसलों से हटकर ज्यादा पैदावार तथा आकर्षक आय देने वाली फसलों की तरफ रुझान बढ़ रहा है। जो किसान सुगन्धित तेल प्रदान करने वाली फसलों का उत्पादन करते हैं उनमें ज्यादा पैदावार देने वाली उन्नत किस्मों की प्राथमिकता बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त इन फसलों के उत्पादन तथा उनका प्रसंस्करण हेतु मानव संसाधन की आवश्यकता होती है जो हमारे देश में प्रचुरता से उपलब्ध है। अतः सुगन्ध प्रदान करने वाले पौधों और फसलों का वाणिज्यिक उत्पादन, ग्रामीण जनसंख्या और कृषकों के सामाजिक आर्थिक उत्थान हेतु एक अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है।
3. उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ सुगन्ध प्रदान करने वाले ऐसे पौधे (उदाहरणार्थ : खस, पामारोजा, बेसिल, लेमनग्रास आदि) भी है, जिन्हें अनुत्पादक भूमि (जिस पर सामान्य फसल उगाना सम्भव नहीं होता और जो भारत में बहुतायत में उपलबध है) पर भी सफलतापूर्वक उत्पादित किया जा सकता है।

पीसा जाता जब इक्षु–दण्ड, झरती रस की धारा अखण्ड,
मेंहदी जब सहती प्रहार, बनती ललनाओं का सिंगार।
जब पुष्प पिरोये जाते हैं, हम उनको गले लगाते हैं।
वसुधा का नेता कौन हुआ ? भूखण्ड – विजेता कौन हुआ ?
अतुलित यश क्रेता कौन हुआ ? नव–धर्म प्रणेता कौन हुआ ?
जिसने न कभी आराम किया, विघ्नों में रहकर नाम किया।
जब विघ्न सामने आते हैं, सोते से हमें जगाते हैं,
मन को मरोड़ते हैं पल–पल, तन को झँझोरते हैं पल–पल।
सत्पथ की ओर लगाकर ही, जाते हैं हमें जगाकर ही।

– रामधारी सिंह दिनकर

कण्डाली की खेती प्रदेश की आर्थिक उन्नति

श्री एस. आर. बालोच
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वनस्पतिक नाम–जिरारडियाना डाइवरसीफोलिया
प्रचलित नाम– कण्डाली व बिच्छु घास

भौगोलिक उपस्थिति

इसका पौधा 3000–12000 फीट की ऊँचाई वाली जगहों में पाया जाता है। वृक्ष घास की ही एक जाति है। ये ज्यादातार छायादार वृक्ष व पहाड़ों की तलों पर उगती है। इसकी ऊँचाई 6 से 10 फीट तक होती है। इसकी पहचान इसके पत्तियों व काटों से की जाती है जो कि पूरे पौधें में होते है और अगर आप इन काटों को छूते है तो इससे जलन होती है। यह पौधा पहाड़ी इलाकों में उगता है। वहाँ के लोग

हाथ करघे द्वारा रेशों की कताई
तथा बुनाई द्वारा बनाये वस्त्र

इसकी खेती नहीं करते है। ये वहाँ जंगली रूप में उगता है। इसको उगने के लिए एक अच्छी उपजाऊ मिट्टी व अच्छी नमी की जरूरत होती है। इस पौधे को ज्यादा देखभाल की जरूरत नहीं होती है। यह अनूकुलित वातावरण में अच्छे से उगता है। हवा व जानवर इसको एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने का कार्य करते है।

उपयोग

इसके कई उपयोग है। ये खाने व रेशे के लिए महत्वपूर्ण है। लोग इसे गरीब की सब्जी भी कहते है। इसकी पत्तियों को उबालने से इसके काटों का असर खत्म हो जाता है जिससे इसे आसानी से खाया जा सकता है। इसकी पत्तियों को उबालकर पशुओं को खिलाने से पशुओं के दूध में वृद्धि होती है। लोग इसके बीजों से तेल निकालते है जो कि दर्द में लगाने के काम आता है। इसकी पत्तियों के निकले रस से गैस, व पेट दर्द आदि कई बीमारियों का उपाय किया जाता है। इसकी जड़ों का उपयोग कूट–पीट कर व उबाल कर जो रस तैयार होता है उसको लोग सिर धोने के काम लाते है। कहा जाता है कि इससे सिर में डेन्ड्रफ नहीं होता है। इसका सेवन गर्भवती औरतों को नहीं कराया जाता है। ये उनके स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता है। इसके कॉटों का उपयोग गठिया रोग के लोगों के लिए भी किया जाता है। जिससे इन काँटों

रेशा प्रदान करने लायक तना

तनों को काटकर बनाये गये बंडल

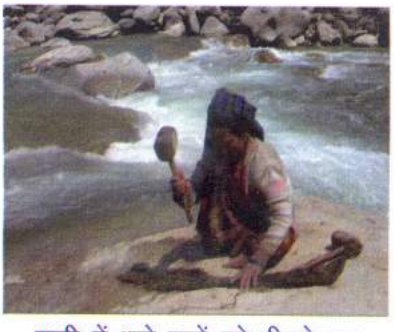

पानी में धुले तनों को पीटते हुए

से गठिया से प्रभावित जगहों में आराम मिलता है। इसकी पत्तियाँ के रस के नियमित सेवन से पेट सम्बन्धी बीमारियाँ दूर होती हैं और खून भी साफ होता है जिससे त्वचा सम्बन्धी रोग भी दूर होते हैं।

गाँव के लोग इसकी पत्तियों का रस घाव पर लगाते हैं जिससे घाव जल्दी भरते है। इसके तनों से रेशा तैयार किया जाता है। जब इसका तना काले या भूरे रंग का हो जाता है तब इसका रेशा तैयार किया जाता है। गाँव के लोग इसके तनों को 4–5 महीनों के लिए साफ नदी के पानी में डालकर रख देते है फिर इसे पीट–पीट कर धुनाई की जाती है जब यह अच्छी तरह से घुन जाता है तो इससे रस्सियाँ तैयार की जाती है। प्राचीन काल में गाँव के लोग इसे चरखी से कात कर कम्बल व शाल तैयार करते थे। इन रेशों से बोरियाँ भी तैयार की जाती थी जिनमें अनाज भरकर रखा जाता था। इससे पट्टियाँ भी तैयार की जाती थी जो हड्डी टूटने पर बाँधी जाती थी। आज भी स्थानीय लोग इन वस्तुओं के निर्माण में इसका प्रयोग करते हैं।

कच्चे रेशों को सूर्य के प्रकाश में सुखाना

कच्चे रेशों की ढुलाई

इससे बनी रस्सियाँ काफी मजबूत होती हैं जो कि जानवरों को बाँधने के काम में आती हैं। इसकी जड़ों से डाई भी निकाली जाती है जो कि रेशों को रंगने के काम आती है। इससे नीली व गुलाबी डाई प्राप्त होती है। कण्डाली से लोगों की धार्मिक आस्थायें भी जुड़ी होती है। लोग मानते है कि इससे भूत–प्रेत व अन्य अला–बला भी दूर की जाती है।

रेशो का बण्डल बनाना

नर्सरी तकनीक–

खेती की तैयारी

सबसे पहले खेत में 15–20 टन प्रति हैक्टेयर की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद समान रूप से फैला देते हैं। बाद में दो बार आड़ी व तिरछी दिशा में जुताई करते हैं। खेत में से खरपतवारों को निकाल देते हैं।

बोने का तरीका

व्यवसायिक खेती के लिये बीज द्वारा बुवाई उपयुक्त है। 2–3 किलो बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होते हैं।

बीज का आकार

1. 15–20 सेमी उठी हुई, 5 मीटर लम्बी व 5 मीटर चौड़ी भलीभांति तैयार नर्सरी में 3–4 सेमी की दूरी पर बनी कतारों में मार्च–अप्रैल में बुवाई कर बारीक रेत की पतली पर्त से ढककर हल्की सिंचाई करते हैं। 15–25 दिनों में बीजों का अंकुरण होने लगता है। अंकुरण लगभग 50–60 प्रतिशत होता है।
2. हाईको–ट्रे में मार्च–अप्रैल में बारीक रेत व खाद का मिश्रण बनाकर भर देते हैं। उसके बाद 1–2 बीज बो कर हल्की सिंचाई करते हैं। 15–25 दिनों में बीजों का

हाईको–ट्रे में बीजों का अंकुरण

अंकुरण होने लगता है। अंकुरण दर लगभग 40–50 प्रतिशत होती है। हाईको–ट्रे को पालीहाउस–ग्रीनहाउस में रखते हैं।

3. पोलीथीन थैलियों में मार्च–अप्रैल में बारीक रेत व खाद का मिश्रण बनाकर भर देते हैं उसके बाद 3–4 बीजों को प्लास्टिक थैली में बो कर हल्की सिंचाई करते हैं। 15–25 दिनों में बीजों का अंकुरण होने लगता है। अंकुरण दर लगभग 30–40 प्रतिशत होती है। पोलीथीन थैलियों को पोलीहाउस–ग्रीनहाउस में रखते हैं।

खेत में पौधों की रोपाई

जब पौधें 5 से.मी. ऊचें हो जायें तब उनको खाद व मिट्टी के मिश्रण से भरी हुई पोलीथीन थैलियों में स्थानान्तरण करते है। 2–3 महीने की आयु के पौधों को जून माह में 80–90 से.मी. के अन्तराल पर प्रत्यारोपित करते है।

खेत में पौधों की रोपाई

सिंचाई एवं खरपतवार नियन्त्रण

पौधों की वृद्धि के लिये पर्याप्त पानी आवश्यक होता है। गर्मियों में 5–6 दिनों के अन्तराल पर व सर्दियों में 15–20 दिन के अन्तर से सिंचाई करते हैं। पौधों के चारों तरफ 15–20 दिन के अन्तर से हल्की खुदाई कर खरपतवार निकालते है।

कीट नियन्त्रण

पत्तियों में होने वाले रोग

यह रोग तितली की सूंड़ी (butterfly larva) से होता है। इस रोग से पत्तियाँ मुरझा जाती हैं और समय से पूर्व ही गिर जाती हैं। पौधे का विकास रुक जाता है तथा तितली की सूंडी के नियन्त्रण के लिये रोगोर 0.1 प्रतिशत (एक मिलीलीटर दवा एक लीटर पानी में) छिड़काव करते हैं।

फसल की खुदाई व भण्डारण

पौध रोपण के 19 से 20 दिन बाद (नवम्बर से दिसम्बर) पौधे 6 से 10 फीट तक लम्बे होते हैं। जब इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं और इसका तना भूरे रंग का हो जाता है तो ये रेशा प्रदान करने लायक हो जाते हैं। तने को काटकर अलग करते हैं।

नर्सरी की क्यारियों में लगी पौधें

पैदावार

पकने पर इसका तना भूरे रंग का हो जाता है तो ये रेशा प्रदान करने लायक हो जाते हैं। लगभग 370 तनों से 100 ग्राम कच्चा रेशा प्राप्त होता है और लगभग 5 ग्राम अच्छा रेशा प्राप्त होता है। नेपाल में ग्रामीण लोगों को 30–40 किलोग्राम तनों के बण्डल का लगभग 30–35 रूपये मिलते हैं।

रेशम उद्योग: शत्रु -रोग एवं उपाय

डॉ के.पी. सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सर्वप्रथम रेशम का उत्पादन चीन में हुआ जिसका श्रेय चीन के शासक हांगती की पत्नी सिलांग–ची को है, जिन्होने 2600 ई0 पूर्व रेशम कीटों को पालकर रेशम प्राप्त किया। भारत रेशम उत्पादन में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है भारत में रेशम की वार्षिक खपत 22000 टन है जबकि उत्पादन 15000 टन है। देश में चारों प्रकार के रेशम (शहतूती, टसर, ऐरी एवं मूगा) का उत्पादन होता है, हालांकि कुल रेशम उत्पादन का 90.95 प्रतिशत शहतूती रेशम है। देश के प्रमुख रेशम उत्पादक राज्य कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, असम, एवं तमिलनाडु हैं। कर्नाटक में वार्षिक रेशम उत्पादन 900 मीट्रिक टन है, जो कुल रेशम उत्पादन का 65 प्रतिशत है।

रेशम कीटः

रेशम का उत्पादन एक कीट करता है जिसका वैज्ञानिक नाम *"बाम्बिक्स मोरी"* है। शहतूती रेशम का कीट शहतूत (*Morus alba*) के वृक्ष पर होता है इसके अलावा अन्य प्रजातियाँ टसर एवं ऐरी से भी रेशम मिलता है। टसर अर्जुन, साल, बेर, तथा वनों में पाये जाने वाले वृक्षों पर होता है जबकि ऐरी कीट अरण्डी के वृक्ष पर पाया जाता है सामान्यतः एक एकड़ में पांच कीटाण्ड का पालन किया जा सकता है जिससे 175 कि.ग्राम कोया प्रतिवर्ष होता है। रेशम कीट का सम्पूर्ण जीवनकाल 22–28 दिनों में पूरा होता है। रेशम कीट की मादा एक बार में 500–600 अण्डे देती है तथा रेशम के कीडे शहतूत की पत्तियाँ खाते हैं। जब कीड़ा कोया बनकर तैयार हो जाता है तो पत्तियाँ खाना बन्द कर देता है तथा इसका रंग कुछ पारदर्शी हो जाता है और मौसमानुसार 48–72 घंटे में कोया का निर्माण पूरा हो जाता है। तैयार कोये को उबलते पानी, भाप, ताप या धूप में रखने से कीट मर जाते हैं एवं इससे रेशम के धागे मुलायम व पृथक हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को स्टिफेनिंग कहते है। एक रेशम कीट लगभग 1000–1500 मी. लम्बाई का धागा बनाता है। प्रति 10–12 किलो कोये से एक कि.ग्रा. रेशम मिलता है।

रेशम कीट शत्रु

(क) रेशम कीट के शत्रुः रेशम कीट के प्रमुख शत्रु इस प्रकार हैं :– यूजी मक्खी, डरमीस्टिड बीटल, छिपकली, चीटिंयाँ, चूहे, गिलहरी एवं चिड़ियाँ। यूजी मक्खी इन कीटों की घातक दुश्मन है। मादा मक्खी रेशम कीट के शरीर पर अण्डे देती है जिससे 48 घण्टे में बच्चे निकल जाते हैं जिन्हें मैगट कहते हैं। ये कीट के शरीर में छेद कर अन्दर घुस जाते हैं जिससे कीट के शरीर पर काले तिकांने धब्बे बन जाते हैं और एक सप्ताह बाद शरीर से बाहर आ जाते है और कीट की मृत्यु हो जाती है।

उपचारः कीट पालन वाले कमरों में जाली लगायें ताकि इनके प्रवेश को रोक सकें।

(ख) डर्मेस्टिड बीटलः इस बीटल के लार्वे एवं वयस्क रेशम कीट को खाते हैं।

उपचारः नियमित सफाई एवं मेथिल ब्रोमाईड का धुआँ देने से इसे नियत्रिंत किया जा सकता है। इसके अलावा चीटिंयाँ, गिलहरी, छिपकली, चूहे आदि से समुचित बचाव किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

रेशम कीट रोग :

(क) पेबरीनः रेशम कीट में लगने वाला यह घातक रोग है। यह दो प्रकार का होता है, आनुवांशिक तथा संक्रमित। आनुवांशिक पेबरीन में अण्डे मातृ कीट में संक्रमित हो जाते हैं तथा संक्रामण पेबरीन कीट द्वारा संक्रमित पदार्थ खाने से होता है। संक्रमित अण्डे गुच्छों में व अनिषेचित होते है। इस रोग में इनका विकास धीमा होता है तथा प्रभावित लार्वे

पीले–भूरे, चमकरहित एवं त्वचा झुर्रीदार हो जाती है। प्यूपा अवस्था में प्रभावित होने से इनका पेट फूल जाता है तथा इस पर काले या भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। पूर्ण विकसित कीट में संक्रमण होने पर त्वचा रंगहीन तथा अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है।

उपचार: अण्डों को 20 मिनट तक 2% फार्मेलीन के घोल में डुबाकर साफ जल से धो लेना चाहिये।

(ख) मस्कार्डिन: यह रोग कवक द्वारा फैलता है तथा कवक कीडें के शरीर में फैल जाता है। कीट का रंग लाल, हरा या पीला हो जाता है। रोगी भोजन नहीं लेता तथा 5 दिनों बाद मर जाता है।

उपचार: कीट को 2% फार्मेलीन घोल से धों लें। संक्रमित कीट को नष्ट कर दें तथा कीट पालने वाले कमरे हवादार एवं नमी रहित होने चाहिए।

(ग) ग्रोसरिक: इसे पीलिया रोग भी कहते हैं तथा यह विषाणुओं द्वारा फैलता है प्रभावित कीट पीले रंग के होकर इनके शरीर में सूजन आ जाती है एवं कई जगह से फट जाते हैं। फटे भागों से पीले रंग का तरल पदार्थ निकलता है। कीट पत्तियाँ खाना बन्द कर देता है तथा ट्रे से बाहर निकलने की कोशिश करता है।

उपचार: अण्डों को 2% फार्मेलीन से विसंक्रमित कर साफ पानी से धो लें एवं स्थान साफ व हवादार हो।

(घ) फलैचेरी: यह जीवाणु जन्य रोग है तथा यह अधिक ताप, नमी, अपर्याप्त वायु संचार, गंदी पत्तियों तथा अधिक भोजन करने से फैलता है। इस रोग में कीट काले व भूरे रंग के हो जाते हैं।

उपचार: कीट पालन करने से पूर्व स्थान, तथा उपकरणों को विसंक्रमित कर रोगी कीटों को मिट्टी में दबा दें।

वाटिका और वन एक नहीं, आराम और रण एक नहीं।
वर्षा, अंधड़, आतप अखंड, पौरूष के हैं साधन प्रचण्ड।
वन में प्रसून तो खिलते हैं, बागों में शाल न मिलते हैं।

कड़करियाँ जिनकी सेज सुधर, छाया देता केवल अम्बर,
विपदाएँ दूध पिलाती हैं, लोरी आँधियाँ सुनाती हैं।
जो लाक्षा–गृह में जलते हैं, वे ही शूरमा निकलते हैं।

बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर ! मेरे ताजा !
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने दे।
तू स्वयं तेज भयकारी है, क्या कर सकती चिनगारी है ?

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है
देश–देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्कर है
निखिल विश्व को जन्मभूमि–वंदन को नमन करूँ मैं!

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

पर्यावरण एवं प्रदूषण

डॉ. ओमकुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

पर्यावरण शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है। परि + आवरण अर्थात पृथ्वी और उसके चारों ओर विद्यमान चीजों का समूह हमारे चारों ओर जो परिवेश है वही हमारा पर्यावरण है। पर्यावरण से अभिप्राय हमारे चारों ओर जो भी वातावरण जिसमें जलवायु, मिट्टी पेड़ पौधे व जीव–जन्तु सभी मिलकर पर्यावरण की संरचना करते हैं। वस्तुतः पर्यावरण का तात्पर्य उस समुचित भौतिक एवं जैविक व्यवस्था से है जिसमें जीवधारी रहते हैं, बढ़ते व पनपते हैं।

प्रदूषणः वातावरण में ऐसे तत्वों को मनुष्य द्वारा मिला दिया जाना जो अपनी मात्रा और घनत्व के कारण एक निश्चित समय में उस क्षेत्र के रहने वाले पेड़ पौधों व जीव–जन्तुओं को तकलीफ पहुँचाने लगते है तो कहा जाता है कि वहाँ पर्यावरण में प्रदूषण हो रहा है।

पर्यावरण में कई प्रकार का प्रदूषण पाया जाता है।
(1) वायु प्रदूषण (2) जल प्रदूषण
(3) ध्वनि प्रदूषण (4) भूमि प्रदूषण

वायु प्रदूषण

वायु में जब कोई ऐसे तत्व मिलने शुरु हो जाए जिससे हवा में ऑक्सीजन का अनुपात बदल जाता है या आदमी, पशु–पक्षी, पेड़–पौधों और यहां तक कि इमारतों तक को नुकसान पहुँचाने वाली गैसें वातावरण में भरने लगती हैं तो इसे वायु प्रदूषण कहते हैं।

पर्यावरण वैज्ञानिकों ने अब यह सिद्ध कर दिया कि युवाओं में फैला असन्तोष हिंसा की प्रवृति अराजकता, लूटपाट, शिक्षा का गिरता स्तर व नैतिक पतन प्रदूषण के दुष्परिणामों का प्रतिफल है।

प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि भारी तत्व मनुष्य के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाते हैं तो हिंसात्मक उत्तेजना पैदा करते हैं और युवा वर्ग सबसे अधिक प्रभावित होता है। इतिहास साक्षी है कि जो समुदाय जगलों में जीवन व्याप्त करते रहे हैं वे शान्ति प्रिय व अहिंसा प्रेमी रहे हैं। लेकिन जो लोग वन विहीन धरती पर बसे थे वे अधिकतर हिंसक और हत्यारे रहे।

तालिका 1 विभिन्न प्रकार के ईंधन के जलने पर उत्पन्न SO_2 की मात्रा

	सल्फरडाइ आक्साइड़ किलोग्राम/टन ईंधन
लकड़ी	20
कोयला	6 से 150
एल.पी.जी.	0.0002 से 0.008
प्राकृतिक गैस	0.2
पैट्रोल	0.54
डिजल	5 से 6

सल्फरडाई आक्साइड गैस की सान्द्रताः मोटर गाड़ी पैट्रोल आदि के चलने वाले इंजनों के कारण बहुत बडी मात्रा में जहरीले पदार्थ जैसे सल्फरडाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड व अन्य प्रकार की विभिन्न गैसें हमारे वातावरण को दूषित कर रही हैं। इसी प्रकार देहरादून मसूरी क्षेत्र में चूने पत्थर की खुदाई व चूने के भट्टों से निकला धुआँ व विशेषकर कार्बन मोनो आक्साइड जैसी गैसें बहुत नुकसान पहुँचाते हैं यह आँकड़े जानकर आपको आश्चर्य होगा कि हमने अपने को अपनी ही प्रगति का कितना बन्दी बना दिया है और उसी प्रगति में घुट–घुट कर मरने को मजबूर हो रहे हैं। कार हमारे जीवन को गति देती है वही दूसरी तरफ हमारे प्राणवायु को दूषित भी करती है। एक कार 96 किलोमीटर चलने पर उतनी आक्सीजन प्रयोग कर लेती है जितनी एक मानव के लिए साल भर के लिए काफी होती है। दिल्ली में चलने वाले 10 लाख 45 हजार वाहन रोज 170 टन कार्बन मोनो आक्साइड, 70 टन हाईड्रो कार्बन, 80 टन

नाइट्रोजन आक्साइड और 02 टन सल्फरडाई आक्साइड उडेंलते हैं। लन्दन में वायु प्रदूषण के सम्बन्ध में किये गये एक अध्ययन के अनुसार एक सिपाही चार घन्टे तक यातायात नियंत्रण के बाद फेफड़ों में इतना विष भर लेता है जितना एक आदमी के 105 सिगरेट पीने से भरता है।

कार्बनडाई आक्साइड (CO_2)

प्रयोग में आने वाले सभी रसायन जैसे पैट्रोलियम, कोयला, लकड़ी व प्राकृतिक गैस से यह प्राप्त होता है। कार्बनडाई आक्साइड वायुमण्डल के दस हजार भाग में केवल तीन भाग में ही उपस्थित होती है तथा वायुमण्डल के ताप क्रम पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। जो कि अन्त में सम्पूर्ण जलवायु को प्रभावित करती है। कार्बनडाई आक्साइड गैस जल में घुलनशील होती है। समुद्र के जल के दस हजारवें भाग में इसका एक भाग पाया जाता है जो कि समुद्री पौधों के लिए प्रकाश संश्लेषण के दौरान कार्बन स्रोत के रुप में प्रयोग में ली जाती है। मनुष्य इसकी 5000 पी.पी.एम. सान्द्रता को श्वसन क्रिया पर बिना किसी अवरोध के सहन करने की क्षमता रखता है। यह जल को अम्लीय भी बनाती है। वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की सान्द्रता में 25 प्रतिशत वृद्धि से जल को पी–एच में 1 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

कार्बनडाई आक्साइड से बनने वाले अम्लीय पदार्थों का मकान बनाने वाले पत्थरों मुख्य रुप से चूने युक्त पत्थर जैसेः संगमरमर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। चूने के पत्थर का कैल्शियम कार्बोनेट कार्बनडाई आक्साइड तथा जल से क्रिया करके बाईकार्बोनेट में परिवर्तित हो जाता है यह पदार्थ जल में घुलनशील होता है।

तालिका – 2 वायु प्रदूषकों के सामान्य स्रोत

प्रदूषक	प्रमुख स्रोत	प्रभाव
कार्बनडाई आक्साइड	गरम करने, यातायात, ऊर्जा उत्पादन के लिए ईंधन दहन।	लोगों पर सीधा प्रभाव नहीं पडता। कालांतर में पृथ्वी का तापमान बढ सकता है।
कार्बन मोनो आक्साइड	ईंधन का अधूरा दहन	आक्सीजन के ऊतक घटाता है। साँस के रोगियों पर विशेष प्रभाव।
सल्फरडाई आक्साइड	गंध युक्त ईंधन का जलना, जैसे कोयला व तेल	धुएँ के साथ मिलकर ज्यादा खतरनाक होता है सांस की बीमारी बढ़ना, दम घुटना, गले की खराश और आँखों में जलन पैदा होती है। यह वातावरण में उपस्थित पानी के भाप से मिलकर ऐसिड वर्षा पैदा करता है अन्न की उपज घटाता है मिट्टी और जलाशयों में एसिड पैदा करता है इमारतों को जर्जर बना देते है।
सस्पेडेड़ पार्टिकुलेट मैटर	घरों, उद्योगों और वाहनों का धुआँ	विशेष मिश्रण के अनुसार जहरीला प्रभाव अलग–अलग होता है।

कार्बन मोनोआक्साइड

वायुमण्डल में कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा को सही रुप से मापना अत्याधिक कठिन होता है। वायु में यह सुक्ष्मातिसूक्ष्म मात्रा (0.00005 प्रतिशत था 0.5 पी.पी.एम.) होती है। यह गैस स्वभाव में रंगहीन, गंधहीन तथा निष्क्रिय होती है। यह अत्याधिक विषैली गैस है। इसकी 0.1 प्रतिशत मात्रा किसी भी प्राणी के जीवन के लिए घातक होती है। वायुमण्डल में 0.1 प्रतिशत CO_2 की उपस्थिति से कोई भी प्राणी एक घन्टे में मूच्छित व चार घन्टे में मर भी सकता है।

स्रोत

कुछ विशिष्ट प्रकार के जीवाणु सूक्ष्म मात्रा में कार्बन मोनोआक्साइड को निर्मुक्त करते है। कुछ समुद्रीय शैवाल (नीरीयोसिस्टस) में पाई जाने वाली थैलियो में 800 पी.पी.एम. तक कार्बन मौनोआक्साइड पाई जाती है। साइनोफोरा समुद्री

जल में गैस के बुलबुले छोड़ता है जिसके 80 प्रतिशत भाग में कार्बन मोनोआक्साइड पाई जाती है।

पौधों पर प्रभाव

कार्बन मोनोआक्साइड पौधों में होने वाली नाइट्रोजन स्थिरीकरण प्रक्रिया पर निरोधक प्रभाव दर्शाती है। 0.01 से 1 प्रतिशत सान्द्रता (100 से 10,000 पी.पी.एम.) पर पौधों की पत्तियाँ परिपक्व होने से पूर्व ही झड़ने लग जाती हैं तथा तने पर जड़ों का बनना प्रारम्भ हो जाता है। कार्बन मोनोआक्साइड पौधों के कोशिकीय श्वसन पर भी निरोधक प्रभाव डालती है।

कार्बन मोनोआक्साइड से व्यक्ति को पुनः ठीक दशा में लाने के लिए 95 प्रतिशत आक्सीजन तथा 5 प्रतिशत कार्बनडाई आक्साइड का मिश्रण श्वसन के लिए उपयोग में लाया जाता है।

सल्फर डाई ऑक्साइड

यह एक रंगहीन, तीखी गन्ध वाली गैस है जिसकी कम सान्द्रता श्वसन तन्त्र पर उत्तेजक प्रभाव डालती है। इसका निर्माण सल्फर का आक्सीजन की उपस्थिति में दहन से होता है यह एक घुलनशील गैस है तथा आर्द्र वातावरण में यह एक आक्सीकारक सल्फ्यूरिक अम्ल बनाती है जो धीरे से सल्फ्यूरिक अम्ल बनाता है। सल्फरडाई आक्साइड को लगभग 80 प्रतिशत सल्फर युक्त भाग वायुमण्डल में हाइड्रोजन सल्फाइड के रुप में मिलता है जो अन्त में सल्फर डाई ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है।

सल्फर डाई ऑक्साइड मनुष्य की आँखों तथा श्वसन नलिका पर उत्तेजक प्रभाव डालती है। औसतन मनुष्य में इसकी सान्द्रता 3 पी.पी.एम. होती है। मनुष्य इसकी 1 से 5 पी.पी.एम. सान्द्रता को तो सहन कर सकता है लेकिन इसकी 10 प्रतिशत मात्रा उसकी संवेदनशीलता को कम करती है। इसमे अधिक रहने वाले को कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह आदि बीमारियां हो जाती हैं।

सल्फर डाई ऑक्साइड के स्रोत

इस गैस के प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक (मानवीय) दो स्रोत हैं। वायुमण्डल में 90 प्रतिशत सल्फरडाई आक्साइड गैस प्राकृतिक स्रोत द्वारा सम्मिलित होती है जिसमें 67 प्रतिशत योगदान ज्वालामुखी का तथा शेष 33 प्रतिशत जैविक पदार्थों के सड़ने एवं समुद्र के द्वारा होता है। अप्राकृतिक स्रोत का योगदान सिर्फ 10 प्रतिशत ही होता है जिसमें 70 प्रतिशत योगदान विद्युत ताप, विद्युत ऊर्जा एवं घरेलू कार्यों में ईंधन के दहन द्वारा 28 प्रतिशत औद्योगिक संयत्रों तथा शेष 2 प्रतिशत यातायात के संसाधनों के ईंधन के जलने के फलस्वरुप होता है।

तालिका 3 सल्फर डाई ऑक्साइड गैस के प्रति विभिन्न पौधों की सहनशीलता

गुण	पौधों के नाम
अत्याधिक संवेदनशील	लाइकेन्स एवं मॉस
संवेदनशील	इमली, आम, बरगद व चीड़
सहनशील	नीम, पीपल, गुलर
अवशोषित करने वाले	अल्फा–अल्फा, बैगन, ग्वार

सल्फर डाई ऑक्साइड की 0.5 पी.पी.एम. सान्द्रता का पौधों पर खास प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है और कुछ पौधे 60 पी.पी.एम. तक भी जीवित रह जाते हैं। आम, बरगद, चीड़ आदि पौधे सल्फर डाई ऑक्साइड गैस के प्रति संवेदनशील होते हैं।

वायु का महत्व

पेड़ पौधों या प्राणियों को अपना जीवन चक्र चलाने के लिए हवा की आवश्यकता होती है। हवा में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत आक्सीजन और 3 प्रतिशत कार्बनडाई आक्साइड है। कार्बनडाई आक्साइड में एक हिस्सा कार्बन के साथ दो हिस्सा आक्सीजन है। अन्य गैस बहुत कम मात्रा में रहती हैं। लाखों वर्षों से वायुमण्डल की गैसों का अनुपात प्राणी और वनस्पतियों के विकास के लिए अनुकूल रहा है। वायुमण्डल में लगातार कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। जब यह प्रक्रिया एक बार शुरु हो जाती है तो बढ़ती जाती है। आजकल सारी दुनिया में वन भी लगातार कट रहे हैं इससे भी वायुमण्डल में कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है।

वायु प्रदूषण के प्रकार

वायु प्रदूषण दो प्रकार से होता है। पहले प्रदूषक तत्व तो वे हैं जो धूल व राख आदि के रुप में वायु को प्रदूषित करते है दूसरी तरह के तत्व वे है जिनमें नाइट्रोजन आक्साइड, गन्धक के आक्साइड, धातुओं के गलाने से पैदा होने वाली लपटें, तरह–तरह की फैक्ट्रियों से जलने वाले ईंधन से निकले धुएं और उनके अनजले अवशिष्ट पदार्थ आदि।

हमारे देश में अगर प्रदूषण से प्रभावित शहरों का क्रम बनाया जाय तो उस क्रम से सबसे पहले कलकत्ता आता है।

बीमारी

वायु प्रदूषण से सबसे ज्यादा बीमारी वो होती है जिनका संबन्ध फेफड़ों व खून की शुद्धता से होता है जैसे दमा, खाँसी, फेफड़ों का कैंसर और कुछ हद तक मानसिक बीमारियाँ। इसके अतिरिक्त हमारे पेड़–पौधों व जीव–जन्तु भी वायु प्रदूषण के शिकार होते हैं।

प्रदूषण नापा कैसे जाए

पश्चिमी देशों में अत्यधिक लागत वाले जटिल बनावट वाले यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है परन्तु हमारे जैसे गरीब देश में वायु प्रदूषण को नापने के लिए पौधे सबसे अच्छे मापक यन्त्र हैं क्योंकि वे एक ही स्थान पर रहते हैं और लगातार प्रदूषकों के सम्पर्क में रहते है।

वायु प्रदूषण के कारण

शहरों में वायु प्रदूषण के मुख्य कारण यातायात के साधन हैं जैसे वायुयान, मोटर बस व रेलगाडी आदि से निकने वाला धुआँ है। दूसरे कारखानों की चिमनियों से निकलने वाला धुआँ जिससे वायु में विषैली गैसों की मात्रा बढ़ जाती है और आक्सीजन की कमी हो जाती है।

तालिका 4 विभिन्न गैसों की मात्रा

गैसें	स्वच्छ वायु	प्रदूषित वायु
CO	115	$46\text{-}80.5 \times 10^3$
CO_2	57.6×10^4	72.0×10^4
CH_4	920	1533
NO_2	1.9	376
O_3	39	980
SO_2	0.5	524
NH_3	7-0	14.0

तालिका 5– समुद्र तल के पास या उस पर स्वच्छ व शुष्क हवा की रासायनिकी

घटक	प्रतिशत (आयतन)
नाइट्रोजन	78.084
आक्सीजन	20.9476
आर्गन	0.934
कार्बन डाइआक्साइड	0.0314
नियोन	0.001818
हिलीयम	0.000524
मिथेन	0.0002
क्रिप्टोन	0.000114
सल्फरडाई आक्साइड	0 से 0.0001
हाइड्रोजन	0.00005
नाइट्रस आक्साइड	0.00005
जिनोन	0.0000087
ओजोन	0.000007
नाइट्रोजनडाई आक्साइड	0.000002
आयोडीन	0.000001
अमोनिया	0 से
कार्बन मौनोआक्साइड	0.1 पी.पी.एम. से 2 पी.पी.एम.

वायु प्रदूषण का नियन्त्रण

वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. अधिकाधिक क्षेत्रों में वनीकरण करना।
2. कारखानों को आबादी से दूर लगाना चाहिए।
3. कोयले से चलने वाले इन्जनों की जगह बिजली के इन्जनों का प्रयोग करना चाहिए।
4. कारखानों की चिमनी काफी ऊँची बनाई जानी चाहिए।

कारखानों के चारों ओर अधिक से अधिक पेड पौधे लगाये जायें।

5. मोटर कारों में विशेष छलनी लगनी चाहिए। जिससे धुएँ के विषाक्त पदार्थ अवशोषित हो जाए। एक अनुमान के अनुसार एक हैक्टेयर वन क्षेत्र तालिका 6 के अनुसार प्रदूषकों को अवशोषित कर लेता है।

6. हरे पौधे पर्यावरण में उपस्थित कार्बनडाई आक्साइड को शर्करा में बदल कर आक्सीजन छोड़ते हैं जिससे पर्यावरण में आक्सीजन का सन्तुलन बना रहता है। अतः हमें अधिक से अधिक पेड़ लगाने चाहिए।

7. परिवहन प्रदूषण रोकथाम दल बनाकर वायु प्रदूषण उत्पन्न करने वाले वाहनों की नियमित जांच करनी चाहिए।

8. सड़कों के दोनों ओर सघन वृक्षारोपण किया जाय जो वायु प्रदूषण को रोकते है।

9. घनी आबादी के क्षेत्रों में वाहनों का आवागमन वर्जित किया जाय।

10. पैट्रोल वाहनों के स्थान पर सौर वाहनों को प्राथमिकता दी जाए।

तालिका 6

प्रदूषक	शोशित मात्रा टन/वर्ष
ओजोन	9.6×10^4
सल्फरडाई आक्साइड	748
कार्बन मोनो आक्साइड	2.2
नाइट्रोजन आक्साइड	0.38
कार्बनडाई आक्साइड	3.7
पेराक्जाइल एसीटाइलनाइट्रेड	0.17
उत्सर्जन	2.0

वायु प्रदूषण के सूचक पौधे

कुछ पौधे वायु में उत्पन्न प्रदूषण के प्रति अत्याधिक संवेदनशील होते हैं। ऐसे पौधों को प्रदूषण सूचक पौधे कहते हैं।

तालिका 7 प्रदूषण सूचक पौधे

प्रदूषण सूचक	पौधों पर मुख्य प्रभाव	प्रदूषक पदार्थ
चीड़, सालविया, दहलिया	पत्तियों की ऊपरी सतह पर लाल व भूरी–धारियाँ या सफेद चकत्ते, अधिक मात्रा में प्रदूषण होने की स्थिति में पत्तियों का किनारे से मुड़ जाना व फट जाना, चीड़ की पत्तियों की नोक के ऊपरी भाग का जल जाना।	ओजोन
बरगद, चीड़ तथा जीनिया	पत्तियों की शिराओं और किनारे के मध्य हल्के चकत्ते तथा उसके पास के उत्तको का मृत हो जाना।	सल्फरडाई आक्साइड
ग्लेडयूलस और चीड़	पत्तियों की ऊपरी नोक व किनारे के उत्तकों का मृत हो जाना।	हाइड्रोजन फलोराइड़

इसी प्रकार निम्नवर्ग के पौधे जैसे लाइकेन्स, मांस भी प्रदूषण की सूचना देते हैं क्योंकि ये अत्यधिक संवेदनशील पौधे होते हैं। एक पीपल का पेड़ जिसकी छाया 162 वर्ग मी. हो लगभग 1712 कि.ग्रा. आक्सीजन प्रति घण्टा निकालता है तथा 2252 कि.ग्रा. कार्बनडाई आक्साइड शोषित करता है।

अध्ययन के अनुसार वनस्पति के ऊपर यदि 150 पी.पी.एम. ओजोन वाली वायु 8 घण्टे तक रहे तो लगभग 80 प्रतिशत उसकी मात्रा को शोषित कर लेता है। 500 मी चौड़ा हरा क्षेत्र यदि किसी कारखाने के चारों और हो तो सल्फरडाई आक्साइड की मात्रा को 70 प्रतिशत और नाइट्रिक आक्साइड की मात्रा को 67 प्रतिशत कम कर देते है।

मुख्य प्रदूषण सहनशील पौधे

1. बबूल *(अकेशिया एरेबिका)*
2. बेल *(ऐंगल मारमीलोस)*
3. सीरस *(एलबैजीया लिबेक)*
4. नीम *(एजेडिरेक्टा इंडीका)*
5. सीसम *(डैलबर्जिया सिसौ)*

6. पीपल *(फाइक्स रिलीजोसा)*
7. बैर *(जीजीपस माउटीटीना)*
8. सामी *(परोसीपस जुलीलोरा)*
9. सफैदा *(यूकेलिप्टस सीटरीडोरा)*
10. लैमन *(सिट्रस मिडीका)*
11. साजन *(मौरिंगा औलीफैरा)*

झाड़ियां

1. गधेरी *(लैन्टैना कैमरा)*
2. कामीनी *(मुराया एक्जोटिका)*
3. कनैर *(निरीयम औडेरम)*
4. अरड़ *(रिसीनस कौमौनीस)*

हिन्दुस्तान में सबसे बड़ा खतरा वायु प्रदूषण का है वह धुए के बढ़ने और जंगलों के कटने से पहाड़ों की तराइयों में इस तरह अंधाधुंध जंगलों का कटना हमारे वातावरण को सबसे अधिक खतरा पैदा कर रहा है। पौधों पर प्रदूषकों द्वारा डाले जाने वाले प्रभाव केवल पौधों तक ही सीमित नहीं रहते हैं। इसका प्रभाव पूरे पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ता है। प्रदूषण प्रभावित क्षेत्र में वनस्पति समुदाय का संगठन ही परिवर्तित हो जाता है। किसी स्थान के वानस्पतिक संगठन का वहां के पर्यावरण से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण इस परिवर्तन का प्रभाव स्थान विशेष के पर्यावरण पर भी पड़ना स्वभाविक है।

उत्तर प्रदेश के दक्षिणांचल में विंध्य श्रेणी के मध्य स्थित "हिन्दूस्तान एल्यूमीनियम फैक्ट्री" के आस पास का क्षेत्र इसका ज्वलन्त उदाहरण है जहां कुछ वर्ष पूर्व घने जंगल थे फैक्ट्री की चिमनियों से निकलने वाले लोराइड युक्त धुएं के प्रभाव के कारण क्रमशः मरुभूमि की सी स्थिति होती जा रही है। स्थिति के अनुसार पौधों की प्रदूषकों से रक्षा करने के लिए या उनके प्रभावों को न्यूनीकृत करने के लिए उर्वरक संकरण विधियों, भूमि प्रबन्ध, रासायनिक तथा भौतिक उपचार तथा अन्य साधनों का प्रयोग करना चाहिए।

जल प्रदूषण

पृथ्वी पर जल का भण्डार उसके स्थल क्षेत्रफल से भी ज्यादा है। लेकिन इस भण्डार के महत्वपूर्ण अंग समुद्र का जल खारा है। इस लिए उसका उपयोग मनुष्य या पेड़–पौधे नहीं कर सकते हैं। जो जल वर्षा से मिलता है। इसमें से कुछ हिस्सा अपने चक्र को पूरा करने के लिए तथा नदियों के द्वारा समुद्र की ओर लौट जाता है। कुछ हिस्सा मिट्टी में अवशोषित हो कर भूगर्भ के जल भण्डारों की पुनः पूर्ति करता है।

जल के वातावरण में भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं के असन्तुलित परिवर्तन द्वारा जो हानि कारक एवं विषाक्त प्रभाव जीवों पर पड़ता है वह जल प्रदूषण कहलाता है।

कारखानों के द्वारा बहाया गया मलबा, रेडियो एक्टिव अवशेष, घरेलू अवशेष, रासायनिक खादों के अवशेष, व बड़े नगरों का प्रवाहित मल आदि जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। जल प्रदूषण के कारण अनेक रोग होते हैं जैसे पेचिस, हैजा, पीलिया, पेट के कीड़े इत्यादि।

जल ही जीवन है बिना जल के इस संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती, आक्सीजन के बाद पानी जीवन के लिए सबसे जरुरी है, हमारे शरीर में 60 प्रतिशत पानी ही है। किन्हीं वनस्पतियों में तो 95 प्रतिशत पानी तक पाया जाता है। संसार का 4 प्रतिशत पानी पृथ्वी पर है बाकी पानी समुद्रों में है। पृथ्वी पर जितना पानी है उसका 0.3 प्रतिशत भाग ही साफ और शुद्ध है और इसी पर सारी दुनिया निर्भर है। लगातार जनसंख्या बढ़ने से जल की आवश्यकता भी बढ़ रही है। इस लिए मानव जाति के लिए जल को लेकर तीन समस्याएं है। 1. पानी को नष्ट होने से बचाना 2. जल को प्रदूषण से बचाना 3. प्रदूषित जल का उपचार।

स्वच्छ जल का अभाव

आजकल हर बड़े शहर में जल का अभाव है और यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है क्योंकि हमारी नदियाँ जो जल पूर्ती का मुख्य हिस्सा है आज प्रदूषण से अछूती नहीं है। जगह–जगह शहरों से निकलने वाले गन्दे नाले व कल कारखानों का अवशेष नदियों में डाला जा रहा है। जिससे दिन प्रतिदिन समस्या बढ़ती जा रही है। हर साल 50 लाख और एक करोड़ टन के बीच सड़ते हुए तेल का प्रदूषण नदियों से बहकर समुद्र में पहुँचता है। मोटरों से निकलने वाला लाख टन धुँआ वातावरण में उड़ कर बाद में समुद्र की सतह पर अवक्षेपित होता है।

नल के पानी से कैंसर

अमेरिकन एसोसिएशन फार एडवासमेंट आफ साइंस द्वारा प्रकाशित "साइंस" पत्रिका में वैज्ञनिकों की एक खोज के अनुसार यह पाया गया है कि मिट्टी में मौजूद हयूमिक एसिड की क्लोरिन के साथ प्रतिक्रिया होने पर कारनिवोजिन पैदा होता है जो मूत्राशय, मलाशय और आंतों में कैंसर का कारण बनता है और यह देखा गया कि जहां लोग नदियों व कुऐं का पानी पीते हैं वहां कैंसर का खतरा तेरह प्रतिशत रहता है तथा शहरों में जहां नलों से क्लोरिन युक्त पानी पीते है कैंसर का 93 प्रतिशत खतरा रहता है।

जल प्रदूषण पर नियंत्रण

जल प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. नगरों का प्रवाहित मल नदियों में ले जाने से पहले उसमें उपस्थित विषाक्त पदार्थों को रासायनिक विधि से और कार्बनिक पदार्थों को जीवाणुओं की क्रिया द्वारा विघटित करना चाहिए।
2. अधिकाधिक क्षेत्र में वनीकरण करना चाहिए।
3. पेड़ पौधों द्वारा भी जल प्रदूषण दूर किया जा सकता है। पौदीना, गैलियम व समुद्र सोक ऐसे पौधे है जो जल प्रदूषण दूर करने के सहायक हैं।
4. कुओं में दवाईयाँ डालकर शुद्ध किया जाये।
5. तीर्थों में अधजले शवों का बहाना रोका जाये और उनके लिए विद्युत शवदाह गृहों का निर्माण किया जाये।
6. आम आदमी को इस समस्या के प्रति जाग्रत किया जाये।
7. जल संयन्त्रों में पानी साफ किया जाये और उनकी समुचित देखभाल हो।
8. नदियों में कूड़ा करकट, मल, व्यर्थ पदार्थों व अपमार्जक न डाले जायें।

ध्वनि प्रदूषण

कल कारखानों में लगी मशीनों की भड़भड़, ट्रकों के इंजिन तथा टायरों की घर्राहट, मोटर गाड़ियों के हॉर्न की सरगम, ट्रेन की धड़धड़ाहट, जेट विमानों की घुर्राहट, टाइप राइटर की खटखट। यही है हमारे आसपास के वातावरण में गूँजने वाली विभिन्न कोलाहल पूर्ण ध्वनि जो हमारे औधोगिक सभ्यता की देन है। नोवेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक राबर्ट काच ने शोर के बारे में कहा था कि एक दिन ऐसा आयेगा जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बुरे शत्रु के रुप में निर्दयी शोर से संघर्ष करना पड़ेगा। लगता है कि वह दुखद दिन अब निकट आ गया है। शोर की गिनती भी प्रदूषकों में होने लगी है।

मनुष्य अपने चारों ओर फैले प्रदूषकों के प्रति एक निश्चित सीमा तक सहनशील होता है। एक नियत सीमा से अधिक तीव्रता की ध्वनि कान के पर्दे को स्थायी रुप से निष्क्रिय कर देती है। नियत सीमा से अधिक तीव्र ध्वनि अधिक समय तक होने पर मानसिक रोग उत्पन्न होता है। तीव्र ध्वनि के इस दुष्प्रभाव को ध्वनि प्रदूषण या शोर प्रदूषण कहते है। सामान्य परिभाषा के अनुसार शोर एक अवांछित ध्वनि है।

मुख्य स्रोत

ध्वनि प्रदूषण दो प्रकार से होता है। प्राकृतिक स्रोत व मनुष्य द्वारा उत्पन्न स्रोत। प्राकृतिक स्रोतों में ध्वनि प्रदूषण बादलों का गर्जना, भूकम्प, तीव्र हवाएं, बिजली का कड़कना, जल का ऊँचे से गिरना जबकि मनुष्य द्वारा उत्पन्न स्रोतों में मुख्य है कारखानों द्वारा उत्पन्न होने वाला शोर, यातायात के साधनों से उत्पन्न शोर, मनोरंजन के साधनों द्वारा उत्पन्न शोर। ध्वनि मापने के लिए डेसविल (डी.वी) इकाई मानी गयी है। 84 डी.वी. और उसके ऊपर की ध्वनि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

तालिका 8 विभिन्न स्रोतों द्वारा उत्पन्न ध्वनि

स्रोत	ध्वनि डेसविल
अन्तरिक्ष राकेट का प्रारम्भ होना	170 से 180 डी.वी.
मोटर के भोपू की आवाज	110 डी.वी.
वायुयान	110 डी.वी.
सड़क पर लाउड स्पीकर की आवाज	95 डी.वी.
भारी यातायात के क्षेत्र में ध्वनि	90 डी.वी.
रात के समय बस्ती में ध्वनि	50 डी.वी.
हाथ की घण्टी की आवाज	20 डी.वी.

तालिका 9 कारखाने में कार्यरत मजदूरों के लिए अहानिकारक शोर–स्तर

क्र.सं.	उम्र (वर्षों में)	सर्वाधिक अहानिकारक शोर–स्तर डेसविल में
1.	30 से कम	95
2	30–40	88
3	40–50	84
4	50–60	80

हमारे देश में दिन प्रतिदिन बढ़ते उद्याोगों के कारण ध्वनि प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है। भारतीय महानगरों में बढ़ता शोर सहन शक्ति से बाहर होता जा रहा है। इन नगरों में ध्वनि दाब का यह स्तर 90 से 100 डेसविल के मध्य है। कलकत्ता जैसे शहर में तो कही–कही यह स्तर 120 डेसविल से भी अधिक है। कानूनी प्रतिबन्ध होने पर भी नगरों में शोर के स्तर में कमी नहीं आ रही है। यह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। मुम्बई, कोलकत्ता, दिल्ली, कानपुर आदि महानगरों में कम शोर वाले क्षेत्रों में भी यह 50 डेसविल से नीचे नहीं उतर पा रहा है।

शोर मापक यंत्र –एक सामान्य माइक्रोफोन ध्वनि विद्युत शक्ति में परिवर्तित कर देता है। इसी आधार पर शोर मापक यंत्र (डेसविल) मोटर बनाये जाते है। जो डेसविल में पाठ्यांक प्रदर्शित करते हैं।

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव : ध्वनि प्रदूषण का हमारे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कारखानों में काम करने वाले मजदूरों में कम से कम 10 प्रतिशत बहरे हो जाते हैं। इसके साथ ही ध्वनि प्रदूषण हृदय, मस्तिष्क केन्द्रीय, तंत्रिका तंत्र और आमाशय में विकृति उत्पन्न कर देता है। दूसरी ओर इससे होने वाली अति थकान के कारण सड़कों पर दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ जाती है तथा मजदूरों में काम करने की क्षमता भी घट जाती है। 130 डी.वी. की आवाज पर आदमी बहुत परेशान हो जाता है। और 140 डी.वी. पर सिरदर्द हो जाता है। अमेरिका में चूहों पर किये गये प्रयोग से मालूम होता है कि ध्वनि प्रदूषण से गर्भ पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। गर्भवती माताओं पर ध्वनि का प्रभाव पड़ने पर उनके तथा भ्रूण दोनों के हृदय की गति बढ़ जाती है। उच्च स्तरीय ध्वनि प्रदूषण से न केवल मनुष्य में बल्कि पशुओं में भी चिड़चिड़ापन एवं थकान देखी जा सकती है।

तालिका 10– उद्योगों में ध्वनि प्रदूषण

उद्योग	ध्वनि(डेसविल में)
कपड़ा उद्योग	92–105
भारी यांत्रिकी उद्योग	94–120
कार उद्योग	104–120
कृत्रिम धागा बनाने वाले उद्योग	90–117
दवाई उद्योग	94–128

ध्वनि प्रदूषण पर नियन्त्रण

1. कारखानों की दीवारों को ऐसा बनाया जाये ताकि ध्वनि को अवशोषित कर ले।
2. ध्वनि नियन्त्रण उपकरण पहन कर हम ध्वनि प्रदूषण से बच सकते हैं।
3. ध्वनि स्रोतों के इन्जन को ध्वनि नियन्त्रण कवच से ढक दिया जाए जिससे कम से कम ध्वनि प्रदूषण हो।
4. पेड़ पौधों को लगाकर भी हम ध्वनि प्रदूषण को कम कर सकते है। ऐसा माना जाता है कि चीड़ पाइन की 50 से 100 मीटर कतार 10 से लेकर 20 डेसीवल ध्वनि को कम कर देती है। अतः रेलवे लाइन व सड़कों के दोनों ओर पौधों की उचित किस्मों को उचित ढ़ंग से लगाने पर ध्वनि प्रदूषण को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

ध्वनि प्रदूषण को नियन्त्रित करने में पेड़ पौधों का महत्वपूर्ण योगदान है। शोभादार पौधों को लगाकर इसमें कमी लायी जा सकती है। नगरीय क्षेत्रों के यह प्रवृति बढ़ती जा रही है कि मकान के आस पास शोभादार पौधे अवश्य लगाये जाएं। यह एक अच्छा संकेत है। सड़क तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर पौधों की उचित किस्म लगाकर हम ध्वनि प्रदूषण को कम कर सकते हैं।

भूमि प्रदूषण

पृथ्वी के धरातल का एक चौथाई भाग भूमि है। जिसका लगभग आधा भाग ध्रुवी क्षेत्रों, मरुस्थलों तथा पर्वतों के रुप में होने से मनुष्य के आवास योग्य नहीं है। यद्यपि मानव ने भूमि की संरचना में परिर्वतन लाने की क्षमता प्राप्त कर ली है परन्तु यह अभी छोटे पैमाने पर ही सम्भव है। सहारा जैसे बड़े मरुस्थलों को उपजाऊ भूमि में बदलना अभी मनुष्य के सामर्थ्य में नहीं है। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल

328 मिलियन हैक्टेयर है। भारत में प्रति व्यक्ति भूमि का औसत 0.142 हैक्टेयर है। अतः उपलब्ध भूमि का हम वैज्ञानिक ढ़ग से उपयोग करे जिससे कम से कम ह्रास हो तथा प्राकृतिक संरचना में कोई बदलाव न आये। भूमि का प्राकृतिक संसाधनों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। बढ़ते उद्योग धंधों व जनसंख्या के साथ–साथ अपशिष्ट पदार्थ की मात्रा भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विभिन्न रासायनिक प्रदूषकों तथा अन्य अपशिष्ट पदार्थों का विलय प्रायः भूमि में होता रहता है। जिससे भूमि प्रदूषण की समस्या धीरे–धीरे बढ़ती जाती है। मानव का भूमि के प्रति अविवेकपूर्ण व्यवहार का ही एक उदाहरण है भूमि प्रदूषण।

भूमि प्रदूषण की परिभाषा : भूमि के भौतिक रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी अवांछनीय परिर्वतन जिसका प्रभाव पौधों मनुष्यों तथा अन्य जीवों पर पड़े या जिसके कारण भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उसकी उपयोगिता नष्ट हो भूमि प्रदूषण कहलाता है।

भूमि प्रदूषण के स्रोत : भूमि प्रदूषण के मुख्य स्रोत निम्न लिखित हैः–

1. **औद्योगिक अपशिष्ट :** सबसे अधिक भूमि प्रदूषण औद्योगिक अपशिष्टों के भूमि में मिलने से होता है। इसमें कुछ ज्वलनशील, विषैले, दुर्गन्ध युक्त और अक्रियाशील होते हैं और सभी किसी न किसी तरह भूमि प्रदूषण करते हैं। दूसरे औद्योगिक उपप्रवाह को बिना समुचित उपचार किए खेतों की सिचाई में प्रयोग किया जाने लगा है। लगातार सिचाई से मृदा में ठोस कणों का जमाव हो जाता है और ठीक तरह से वायु संचार नहीं होता है और अतः मृदा कृषि के लिए उपयुक्त नहीं रहती है।

2. **कृषि अपशिष्ट :** खेती में प्रयोग होने वाली रासायनिक खादें, कीटनाशक दवाऐं, खरपतवार नाशक रसायन, फफूंदी नाशक रसायन इत्यादि इसके अन्तर्गत आते हैं जिससे हमारी पैदावार में वृद्धि होती है। परन्तु इसका दूरगामी हानिकारक प्रभाव पड़ता है और मृदा की संरचना बदल जाती है।

भारत के कृषि मंत्रालय द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति के अनुसार हमारे देश की कुल 3040 लाख हैक्टेयर भूमि में से करीब 1750 लाख हैक्टेयर (लगभग 56%) भू प्रदूषण से प्रभावित है। प्रतिवर्ष लगभग 40% भू क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित होता है। जिस कारण अपार धन व जन हानि के साथ ही साथ विभिन्न संक्रामक रोग फैलते हैं और भूक्षरण तो होता ही है। बाढ़ आने के प्रमुख कारणों में एक है विगत वर्षों में वनस्पति–मृदा आवरण की क्षति। तालिका में देश के विभिन्न क्षरणों से प्रभावित क्षेत्रों का उल्लेख किया है जो भू–प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है।

प्रमुख तत्व जैसे पारा, कैडमियम, शीशा व आर्सेनिक का भूमि विलय हो जाता है। इन तत्वों की एक सीमा से अधिक मात्रा प्रतिकूल प्रभाव डालती है और भूमि प्रदूषण का मुख्य कारण बन जाती है।

3. **घरेलू अपशिष्ट :** प्रायः लोग अपने घरों के अन्दर से निकले कचरे को बाहर खुले में डाल देते हैं और सोचते हैं कि हमारा घर तो साफ है। इस प्रकार से भूमि प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं और दूसरी और मक्खी, मच्छर, कीड़े मकौडे पैदा होते है जो विभिन्न बीमारी फैलाते हैं।

4. **नगर अपशिष्ट :** इस श्रेणी में हमारे नगरों से निकला अपशिष्ट जैसे पशुशालाओं, मानव मल, नालियों एवं गटरों से निकला हुआ कचरा चर्म शोधन संस्थानों से निकला ठोस अपशिष्ट इत्यादि आते हैं। इनका समुचित प्रबन्ध न होने से भूमि प्रदूषण की समस्या होती है।

5. **खनन प्रक्रिया से :** विभिन्न खनिजों व धातुओं के अवैज्ञानिक खनन से भी क्षेत्र अनुपयुक्त हो जाता है।

6. **भू–क्षरण :** भू–क्षरण एक यान्त्रिक प्रक्रिया है जिसमें मृदा कण अपने मूल स्थान से अन्यत्र परिवहित हो जाते हैं जिससे भूमि की संरचना बदल जाती है। मृदा–क्षरण, वनों का विनाश, चरागाहों का विनाश एवं अवैज्ञानिक कृषि के कारण यह समस्या उत्पन्न होती है।

भूमि–प्रदूषण के दुष्प्रभाव

भूमि–प्रदूषण से होने वाले अनेकानेक दुष्प्रभाव देखे जा सकते हैं जो निम्नलिखित हैः–

1. हमारे देश की 80% आबादी गाँव में रहती है जहां मानव मल निक्षेपण की कोई व्यवस्था नहीं है। यही कारण है कि

हमारे देश में टाइफाइड, पैराटाइफाइड, आंत्रशोध्र पेचिश, संक्रामक यकृत शीघ्र पोलियो आदि बीमारियाँ अत्याधिक मात्रा में होती हैं जो अपर्याप्त मल व्यवस्था के कारण होती हैं।

2. घरों से निकलने वाले व्यर्थ जल की समुचित व्यवस्था न होने पर यह जल घरों के बाहर सड़कों तथा गलियों में यों ही बहा दिया जाता है इससे कीचड़ बन जाता है। जिसमें मक्खी, मच्छर व अन्य कीड़े–मकोड़े पनपते हैं।
3. कूड़े–करकट से जहां एक ओर मच्छर, मक्खी, कीडे–मकोड़े तथा चूहों का उत्पात भी बढ़ता है दूसरी ओर गन्दगी में विभिन्न प्रकार की बीमारियों के कीटाणु भी तेजी से पनपते हैं।
4. आजकल कहीं–कहीं खेतों में मल–जल से सिचाई की जाती है। लगातार मलजल के प्रयोग से मृदा के छिद्रों की संख्या लगातार घटती चली जाती है। एक अवस्था ऐसी आती है जब मल जल के ठोस कणों के जल जाने के कारण मृदा पूर्णरुप से रुद्ध हो जाती है। इस अवस्था तक पहुचने के बाद मृदा के छिद्रों से वायु परिसंचरित नहीं हो पाती है और मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की वायु श्वसन क्रियायें जारी नहीं रह पाती हैं। इन अवायु–श्वसन परिस्थितियों में अवायु श्वसन–विघटन के फलस्वरुप हाइड्रोजन सल्फाइड गैस पैदा होती है। इससे आस–पास के क्षेत्र में दुर्गन्ध फैलती है और इस अवस्था में भूमि की मल–जल उपचार क्षमता पूर्णतः नष्ट हो जाती है। इस प्रकार की भूमि को रोगी भूमि की संज्ञा देते हैं। दुर्घटना या असावधानीवश विभिन्न औद्योगिक अपशिष्टों द्वारा जल स्रोतों या भूमि के प्रदूषण से विभिन्न जानवरों तथा मानव के स्वास्थ्य को हानि होने की सम्भावना रहती है। बहुधा ठोस अपशिष्ट को निक्षेपण हेतु भूमि में विसर्जित कर दिया जाता है। इससे एक तो अनवीनकरणीय धातुओं विशेषकर ताँबा, जिंक, लेड़ इत्यादि की प्रभावकारी हानि होती है तथा दूसरे विजातीय तत्वों के समावेश से मृदा की प्रकृति में परिवर्तन आता है।

भूमि प्रदूषण पर नियन्त्रण

भूमि प्रदूषण रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिएः–

1. हानिकारक कीटनाशी पदार्थों (डी.डी.टी.) इत्यादि का उपयोग कम से कम करना चाहिए।
2. जैविक नियन्त्रण विधि अपनाई जानी चाहिए।
3. आणविक बमों के परीक्षणों पर नियन्त्रण होना चाहिए।
4. नागरिकों को चाहिए कि वह अपना कूड़ा करकट सड़क पर न फेकें तथा कचरा पात्रों का प्रयोग करें।
5. मल मूत्र, गोबर व कूड़ा करकट आदि को बन्द गढडों में बस्ती से बाहर सड़ा कर गोबर की खाद बनानी चाहिए।
6. रेडियो–एक्टिव पदार्थों पर नियन्त्रण होना चाहिए।
7. औद्योगिक संस्थानों को अपने अपशिष्टों का उपचार कराने के पश्चात् ही विसर्जित करना चाहिए।
8. खनन वैज्ञानिक विधि के द्वारा ही करना चाहिए।
9. उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।
10. उपयुक्त भूमि पर अधिक से अधिक वनों को लगाना चाहिए ताकि कम से कम भूमि कटाव हो।
11. लम्बी अवधि तक विघटित न होने वाले रसायनों पर प्रतिबन्ध लगना चाहिए।
12. नगरपालिका को कम्पोस्टिंग हेतु वैज्ञानिक संयन्त्रों की जगह–जगह स्थापना करनी चाहिए।

प्रदूषण रोकने के सुझाव

व्यर्थ कांच, व्यर्थ प्लास्टिक, व्यर्थ लोहे एवं टिन आदि को पुर्नचक्रीय प्रक्रिया द्वारा उपयोगी स्वरुपों में बदला जा सकता है तथा व्यर्थ कागज और कपड़ों से कागज की लुग्दी बनाई जा सकती है। साथ ही मिट्टी को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। कीटनाशी तथा अन्य रसायनों का प्रयोग सीमित स्तर पर करना चाहिए। इससे भी मिट्टी के प्रदूषण को कम किया जा सकता है। बस्तियों में कूड़ेदान उचित स्थानों पर रखे जाने चाहिए ताकि अधिक से अधिक उनका प्रयोग किया जा सकें। एक महत्वपूर्ण कार्य कूडेदान का उचित प्रयोग है ऐसा देखा गया कि कूड़ा कूड़ेदान में ना ड़ालकर उसके पास डाल दिया जाता है। अतः ठीक प्रकार से कूड़ेदान का प्रयोग कर हम प्रदूषण से बच सकते हैं।

बहुउपयोगी, सर्वसुलभ, रोगोपचारक, वनस्पति: निर्गुण्डी

श्री बाबू लाल शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सृष्टि रचयिता परब्रह्म परमेश्वर ने 'जन्मादस्य यत: (वेदान्त सूत्र) जिसमें यह चर–अचर सृष्टि उत्पन्न हुई, ज्ञान–विज्ञानमय जिसका स्वरूप है, जो चेतन है, सर्वव्यापक है– 'परास्यशक्ति विविधैव श्रुयते स्वाभाविकी ज्ञान, बल क्रिया च:।' (श्वेताश्वर उप: 6/8) अर्थात जिसका वब, ज्ञान,

स्वाभाविक है, अपने सामर्थ्य प्रेरणा से इस धरातल पर विभिन्न प्रकार की वन–वनस्पतियां, वृक्ष, पौधे, झाड़ियां, पत्र, पुष्प, फल, लतायें, कन्द मूल, अन्नादि, औषध, जड़ी–बूटी एवं घासादि समस्त प्राणियों के कल्याण, जीवन निर्वाह आदि आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुये उत्पन्न किये। तत्पश्चात आदिकाल के ऋषि–मुनियों, योगीजनों आदि ने वनों में प्रकृति प्रदत्त (मृतिका) वन सम्पदा, घास–फूस, पत्र, काष्ठ, बांस आदि से अपने रहने हेतु कुटी का निर्माणकर वनों में रहकर योग–साधना, ईश्वर ध्यानोपासना, चिन्तन, मनन व यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत तथा वनस्पति के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग, पंचाग की सदुपयोगिता, उनके गुण–दोष व प्रयोजन के आधार पर प्रयोगकर अनुसंधान व खोज करते हुये वनस्पति जड़ी–बूटी औषधादि का समस्त प्राणियों के हितार्थ व सुख को दृष्टिगत रखते हुये वर्गीकरण किया। जिनका स्पष्ट उल्लेख हिन्दू सद् ग्रन्थों, वेद–उपनिषद्, आयुर्वेद शास्त्र, जो उपवेद के नाम से जाना जाता है, तथा अन्यादि ग्रन्थों में वर्तमान में भी उनका अनुभूत ज्ञान ज्वलन्त प्रमाण के रूप में मिलता है। यही आदि काल के ऋषियों–मुनियों आदि की खोज व देन है। उनके इस योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। भगवान धन्वन्तरि, महात्मासुधन्वा, सुश्रुत, महर्षि चरक, निघन्टु, भाव प्रकाश, बाणभट्ट, महर्षि कश्यप, महर्षि च्यवन, आदि अनेकों ऋषिजन अपने समय के विख्यात आयुर्वेद विज्ञानी रहे हैं। भारतीय संस्कृति के प्रतीक इन महाऋषियों को नमन है। सर्व सुलभ बहुउपयोगी औषधादि गुणों से युक्त निर्गुण्डी वनस्पति पर यह लेख कुछ नये तथ्यों सहित प्रस्तुत है।

एक सामान्य परिचय– वनस्पति का नाम 'वाइटेक्स निगन्डू कुलवर्वनेसी (Vitex negundo Linn-Family-Verbnaceae) **संस्कृत व आयुर्वेद–** में निर्गुण्डी, **हिन्दी**–सम्हालू, सम्भहलू, शिवारी, निर्शीन्डा, समालू, निर्गुण्डी, **गुजराती**–नागोड़ा, नागोल, **तेलगु**– वाआविली तैलावाआविती, **तमिल**– वेलईनोंकोही, निर्कुण्डी, वेनमोची,, **कन्नड.**– लक्कीगीड़ा, नवकीलु, नक्की, **मलयालम**– बेलामोक्की, **उडिया**–वेथगुना, वगुन्डा, निर्गुण्डी, **पंजाब**– बनाना, भरवान, शवरी, **कुमांयु**– शिवाली, **आसाम**– पशुलिया, अगलाचिता, **कोल**–सिन्दुवार, खरवार, **बरार**–सिन्दवारी। **ग्रमीण भाषा में**– मेउडी के नाम से जाना जाता है।

निर्गुण्डी वनस्पति की पहचान, लक्षण, उत्पत्ति व प्राप्ति स्थान–

भारत वर्ष में वाइटेक्स (Vitex Genus) के करीब 14 जातियां पायी जाती है। इनमें से कुछ सुवासित, झाड़ीनुमा चार–पांच मीटर सीधी लम्बाई में जानेवाली और कुछ

छोटे–बड़े आकार के वृक्ष हैं। निर्गुण्डी भारतवर्ष में प्रायः सभी प्रदेशों सर्वत्र सामान्य तौर पर लम्बाई में 4–5 मीटर सुगन्धित, झाड़ीनुमा आकार के रूप में वृक्षों, भू–भाग, सड़क के किनारे, नदी, नालों, नहरें, नमी वाले स्थानों, परिस्थिति तथा व्यर्थ खुली खाली पड़ी भूमि अथवा पर्णपाती वनों में पायी जाती है। यह बाह्य हिमालय में समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी छाल पतली, भूरी–सलेटी रंग की होती है। यह एक सुगन्धित बड़ी झाड़ी है, इसमें सफेद रंग की चतुष्कोणीय घनी शाखायें होती हैं इसकी शाखाओं में पत्तियाँ एक डण्डी में प्रायः 3 से 5 तक पायी जाती हैं तथा इसकी पत्तियों के पीछे के भाग में सफेद पाउडर जैसा पदार्थ पुता हुआ, देखा जाता है। ये पत्तियाँ छूने मे रोम युक्त मखमली सी लगती हैं। यह अरहर के पेड़ जैसा, वर्षा ऋतु में यह पनपता व वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, लम्बी, सीधी, शाखाओं के कारण अधिक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ अरहर की पत्तियों से काफी मिलती जुलती हैं इसके पुष्प खिलने का समय मई से दिसम्बर है तथा इसके, पुष्प नीले, बैंगनी, छोटे एवं साइम (Cymes) पुष्पक्रम में होते हैं। शरद ऋतु में इसकी वृद्धि व विकास रूक जाता है और खड़े वृक्ष की भांति इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसको खेतों के किनारे बाढ़ के रूप में अन्नादि की खड़ी तैयार फसल को सुरक्षा की दृष्टि से पशुओं से बचाने हेतु लगाया जाता है। इसके काट देने पर पुनः उसी स्थान पर उग आता है। पशु सामान्यतया इसकी पत्तियों को नहीं चरते। इसकी वृद्धि विकास दर सात रिंगस प्रति इंच रेडियस है।

बहुउपयोगी वनस्पति निर्गुण्डी–

भारतीय औषधि में प्रयोग में आने वाली यह वनस्पति बहुत साधारण तथा जानी पहचानी है। करीब–करीब इसके सभी भाग औषधि के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। किन्तु इसकी पत्तियाँ और जड़ें अधिक महत्वपूर्ण औषधि गुण होने के कारण औषध के नाम पर बेची जाती हैं। इसकी सूखी पत्तियाँ औषधि गुण तत्व से युक्त तथा ताजा हरी पत्तियों जैसे सामान्य लक्षणगुण रखने वाली होती है तथा इसकी ताजी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती हैं इनका उपयोग स्वास्थ्य वर्धक टानिक, पत्तियाँ सुगन्धित होने के कारण वर्मीफ्यूज के रूप में होता है। इसकी पत्तियाँ कालीमिर्च के योग से सिर के भारीपन एवं बहरेपन, सुस्ती में प्रयोग की जाती है तथा इसकी पत्तियों का धुआँ सिरदर्द मे लाभ प्रदान करता है। इसी पत्तियों के भाप का स्नान जोड़ों के दर्द एवं फ्रेवराइलकेटरल में लिया जाता है। इसकी पत्तियां चर्मरोगों, जोड़ों की सूजन आदि में भी प्रयोग मे लायी जाती हैं। बालों के टानिक के रूप में इसकी पत्तियों के रस से बनाया गया मलहम प्रयोग किया जाता है। यह 'विषगर्भ तेल' व अन्य आयुर्वेदिक तेलों का घटक पदार्थ है।

वनस्पति तंत्र शास्त्र में 'निर्गुण्डी' अर्थात 'सम्हालू' नाम जो बहुत प्रचलित व जाना पहचाना है। इसकी औषधीय गुणवत्ता होने, उसके प्रयोग व प्रयोजन के संबंध में ऐसा कहा गया है– ''तन्त्र शास्त्र आयुर्वेद के बहुत निकट है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आयुर्वेद वस्तुतः तन्त्रशास्त्र का एक अंग है। आयुर्वेद में विभिन्न घटकों के मिश्रण से औषधियाँ तैयार की जाती हैं।''

निर्गुण्डी वनस्पति के गुण तथा रोग विकार आदि में प्रयोग–

तन्त्र शास्त्र में इसके विषय में यह कहा गया है कि निर्गुण्डी वनस्पति साधारण होकर असाधारण प्रभाव रखता है। तान्त्रिक विद्या से शुभ मुहूर्त काल में इसका उपयोग आश्चर्यजनक परिणाम देता है।

आरोग्य हेतु–

निर्गुण्डी मूल का चूर्ण दूध के साथ दो महीने तक सेवन करने से शरीर निरोग और वलिष्ठ हो जाता है तथा उक्त चूर्ण का चालीस दिनों तक नियमित सेवन करने से शरीर को स्फूर्ति, शक्ति, ओज–तेज देकर आयु की वृद्धि करता हे। नेत्रों की ज्योति और दृष्टि शक्ति बढ़ाने के लिये एक मास तक इसके चूर्ण का सेवन करना चाहिये। ज्वर निवारण के लिये निर्गुण्डी की छाल और जीरा चूर्ण सेवन करने से समस्त प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं।

कण्ठावरोध में–

यह चूर्ण प्रतिदिन प्रातः तीन मासे की मात्रा में गुनगुने जल से सेवन किया जाये तो कण्ठावरोध दूर होकर समस्त प्रकार के उच्चारण दोष समाप्त हो जाते हैं और स्वर अत्यधिक मधुर हो जाता है। संगीत साधकों के लिये यह प्रयोग लाभकारी होता है।

रक्त शोधक प्रयोग–

रक्त शोधन के लिये निर्गुण्डी मूल का चूर्ण नित्य प्रातः सायं तीन मास की मात्रा में शहद में मिलाकर सेवन करें, ऊपर से साफ ताजा पानी पी लें। रक्त शोधन के इस प्रयोग से रक्त विकारों से उत्पन्न अनेक प्रकार के चर्म रोग, खाज, खुजली, दाद आदि दूर हो जाते हैं और रक्त शुद्धि के इस प्रयोग से व्यक्ति का शरीर स्वस्थ सबल होने लगता है और चेहरे पर क्रान्ति आ जाती है।

शान्तिदायीतन्त्र–

तन्त्रशास्त्र में यह भी कहा गया है कि शुभ मुहूर्त में रवि–पुष्य योग में पूर्व निमंत्रण देकर लाकर विधिवत पूजी गई निर्गुण्डी की जड़ बहुत ही शान्तिदायक होती है। इसे लाकर घर में कहीं सुरक्षित पवित्र स्थान में रख दें तथा किसी कपड़े में बांधकर या तावीज कवच भरकर गले या भुजा पर धारण कर लें इसके प्रभाव से सुख व शान्ति रहती है। गृह कलह के कारण, दरिद्रता, मानसिक तनाव, कार्यावरोध तथा आर्थिक समस्या, हानि हो रही हो अथवा अशान्ति, उपद्रव बैर विरोध के कारण उत्पन्न कोई अन्य समस्या पीड़ित कर रही हो उस समय यह प्रयोग बहुत ही लाभकारी होता है।

ध्यान रहे की औषधि सेवन और तान्त्रिक प्रयोग सदैव शुभ मुहूर्त में ही आरम्भ किये जाते हैं। अशुभ समय, दुर्योग, कुबेला, वर्जित काल में किया हुआ कार्य कभी सफल नहीं होता, बल्कि घातक हो जाता है।

निर्गुण्डी कल्प–

इसके विषय में वनस्पति तन्त्र में ऐसा कहा गया है– निर्गुण्डी के कुछ ऐसे प्रयोग भी प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है जो कायाकल्प कर देते हैं। कायाकल्प का अर्थ है, शरीर को नवीनता प्राप्त होना। आयुर्वेद शास्त्र में भी इसके कई प्रयोग वर्णित हैं जो मानव शरीर को स्वस्थ, सबल, युवा बना देते हैं। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कायाकल्प ऋषियों, मुनियों व योगियों का विषय रहा है जिन्होने वनों में रहते हुये तपस्या, योग साधना, तथा तपस्या करके एक–एक वनौषधि (वनस्पति के अंग–प्रत्यंग) को जानने का प्रयास किया। कायाकल्प का अभिप्राय यह है–शरीर यदि जीर्ण हो जाये, शरीर में जीर्णता आ जाये, जीवन शक्ति का ह्रास हो जाये, तो उन वनौषधियों (वनस्पति) से जीवन शक्ति प्राप्त की जाती है।

च्यवनऋषि प्राचीन काल के शास्त्रों के अनुसार कायाकल्प के अद्वितीय ज्वलन्त उदाहरण हैं जिन्होने स्वयं अपना कायाकल्प किया। च्यवनप्राश औषधि उनके नाम से जानी जाती हैं यद्यपि यह परम्परागत माना गया है क्योंकि इसमें अष्टवर्ग का प्रयोग होता है। वर्तमान आधुनिक काल में वही च्यवनप्राश वृद्धों, जीर्ण देहवाले को युवा क्यों नहीं बना रहा है। यह अष्टवर्ग अब कहाँ लुप्त हो गया है ? यह भी सम्भव है कि च्यवनप्राश के बनाने वालों को अष्टवर्ग का ज्ञान न हो।

तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार

लहरों के स्वर में कुछ बोलो
इस अंधड में साहस तोलो
कभी–कभी मिलता जीवन में
तूफानों का प्यार

तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार

– शिवमंगल सिंह 'सुमन'

प्राकृतिक रंगों का अद्भुत संसार

डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्राकृतिक रंग–इतिहास के आइने में

मानव सभ्यता में रंगो का स्थान बहुत पुराना है। वैदिक साहित्य में अक्सर पीताम्बर का उल्लेख किया गया है। पीतांबर अर्थात् पीला है वस्त्र जिसका, यानी भगवान विष्णु। अथर्व वेद में रंगो का उल्लेख मिलता है। आदिकाल से मनुष्य फूल, फल, पत्ती, तना, छाल इत्यादि से रंगों का निष्कर्षण करता रहा है। रंगो का मानव मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस तथ्य के आलोक में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को खास रंग देना, शरीर की रंगो से सजावट, दीवार की पेंटिग, लिखने के लिए रंगीन स्याही, अलग–अलग त्यौहारों के लिए खास रंग से रंगीन वस्त्र पहनने की परंपरा रही है। भगवद् पूजा के लिए अलग–अलग रंगो के फूलों का प्रावधान किया गया है। हर ग्रह का अपना एक रंग है। चूकि मनुष्य ग्रहों से प्रभावित है, अतः उनसे जुड़े रंग भी उसे प्रभावित करते हैं। इसे रंगो का मानव व्यक्तित्व पर वैज्ञानिक प्रभाव कहते है। लाल रंग पसंद व्यक्ति आवेश और शौर्य वाला होता है। इसी तरह एक वैश्विक सर्वे के आधार पर विभिन्न रंगो का अलग–अलग प्रतीक बताया गया है।

खुशी	–	पीला
शुद्धता	–	उजला
गुडलक	–	हरा
अच्छा स्वाद	–	लाल
डिगनिटी	–	बैगनी
उच्च तकनीक	–	सिल्वर
कीमती	–	सुनहला
ताकतवर	–	लाल
आतंकित	–	नीला इत्यादि

रंगों का लिखित इतिहास वैदिक युग से आरंभ होता है। मोहनजोदड़ो (300 ई0पू0) के खुदाई के दौरान एक बैगनी रंग का सूती कपड़ा पाया गया, जो कि आधुनिक रसायनिक जांच से पता चला की यह कपड़ा मंजिस्ठा के रंग से रंगा गया है।

बलि बलि जाऊं
मैं तोरे रंगरेजवा
ओ तेरे रंगरेजवा
अपने ही रंग में
रंग दीन्ही रे
मोसे नैना मिलाई के
छाप तिलक सब छीनी रे
मोसे नैना मिलाई के

अमीर खुसरो

वैदिक काल मे नीला, महारांजना (सैलावर), मजिट्ठा, लोधड़ा और हल्दी का विवरण है, लाख जो कि एक कीड़े से मिलता है,इसका भी उल्लेख वैदिक काल मे किया गया है। उत्तर वैदिक काल (500 ईपू–300 ई) में कुमकुम, नील, लाख, गैरिका, काजल, गो–मूत्र से तैयार पीला रंग, इत्यादि मुख्य रंजक थे। मध्यकालीन युग में काम्पीलिका (कमला), पातंग, कोचिनियल, हरड़, आँवला, भृगंराज, नील, पीपल, लोहा, हरा कसीस, आंजना, इत्यादि रंजक के मुख्य स्रोत थे। मध्यकाल मे एक सबसे बडी खोज रंगो का कपडों पर तुवरी (एलम) के द्वारा फिक्सेसन था। अठराहवीं शताब्दी में लोहे और एल्युमिनियम के लवण रंगाई में प्रयुक्त होने लगे थे। उन्नसवीं शताब्दी (1856) में पहला कृत्रिम रंग का आविष्कार हेनरी विलियम परकीन द्वारा किया गया और बीसवीं शताब्दी के आते–आते प्राकृतिक रंगो का इस्तेमाल बहुत कम (लगभग 1 प्रतिशत) ही रह गया।

प्राचीन भारत में रंगो का कपड़ों के व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ के कपडे और वस्त्र कई देशों में निर्यात किये जाते थे। यहाँ की रंगाई और छपाई की तकनीक बहुत उन्नत थी। रंगाई और छपाई का काम एक जाति विशेष (रंगरेज) के द्वारा किया जाता था। इस क्षेत्र में लाखो लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त थे। बुकनैन (1928,1939) ने रंगरेजों

द्वारा बनाये गये मुख्य रंगों का वर्णन किया है। मुख्य रंग थे काकरेज (गहरा भूरा) अगारी (भूरा), उदा (बैगनी), हब्सी (लाल), सतारी (हलका भूरा), आसमानी (स्काई), फाक्ता (ऐस ब्लू), सिसा (हल्का नीला), नारंगी इत्यादि। रंगीन चूडियाँ लहेरिया समुदाय के द्वारा बनायी जाती थी। होली के अवसर पर पलाश के फूलों से गुलाल बनाया जाता था। कपड़े के रंग के लिये वैसे तो कई पौधों का इस्तेमाल किया जाता था, परन्तु उनमे कुसम (कारथेमस टिंक्टारियस) का महत्वपूर्ण स्थान था । इससे अलग–अलग विधियों द्वारा कई रंग प्राप्त किये जाते थे जैसे आसमानी, बादामी, बैगनी, चम्पई, गुलाबी, कैगी (नेवी ब्लू), काला, केसरिया, मासी (गहरा हरा), लाल, नीला, नारंगी, पैठानी, (नीला), फालशाही, (बेर का रंग), साबुजा (हरा), सुरमई, सूर्ख इत्यादि।

प्राकृतिक रंगों के मुख्य स्रोत

रंग कई तरह के पेड़ पौधों, जानवरों और खनिज से निकलते हैं। परन्तु मुख्यतः पेड़ पौधे ही रंगो के मुख्य स्रोत है। बेल के पत्ते, भांग के पत्ते, नील, मेहंदी, बबूल, बेल, सीता सिंदूर, सेम, लालपता, खैर, इत्यादि से रंग निकाले जा सकते हैं। कुछ रंग जीव जन्तुओं से भी प्राप्त होते हैं जैसे गाय के गोबर और जौ के बीज से भूरा रंग, एक प्रकार के धोंधे से बैगनी रंग, लाख के कीड़े से लाल रंग इत्यादि।

आम के पतों को गाय को खिलाने से गहरे पीले रंग का गोमूत्र मिलता है जिसे केसर के साथ मिलाकर एक विशेष रंग, गोगोली बनता है, जो मधुबनी पेंटिग में प्रयुक्त होता है। कई खनिज पदार्थ जैसे फिटकरी, सुहागा, चूना, मिट्टी, लोहे इत्यादि रंग बनाने में प्रयुक्त होते है।

कृत्रिम बनाम प्राकृतिक रंजक

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले प्राकृतिक रंजक ही व्यवहार में पाये जाते थे। परन्तु बीसवीं सदी आते आते प्राकृतिक रंजक का उपयोग नगण्य हो गया और कृत्रिम रंजक ही मुख्य रुप से उपयोग में आने लगे, क्योंकि कृत्रिम रंजक सस्ते, अधिक चमकीले और पक्के रंग वाले होते हैं, जबकि प्राकृतिक रंजक की रंग प्रतिरोधक क्षमता अपेक्षात्मक रुप से कम होती है।

प्राकृतिक रंजकों के गुण	प्राकृतिक रंजकों के दोष
• प्राकृतिक रंजक हानि रहित होते हैं तथा इनसे वातावरण प्रदूषित नहीं होता है। • पर्यावरण अनुकूल होता है। • एक रंजक से कई अलग–अलग प्रकार के शेड बनाय जा सकते हैं। • इसके बनाने मे तथा उपयोग में नहीं के बराबर रासायनिक प्रतिक्रिया होती है।	• इनसे किये गए कपड़ों का कलर फास्टनेस कम होता है। • सेडस की रिपिटिबेलिटी कम होती है। • अधिक मात्रा में बड़ी टेक्सटाइल यूनिट को प्राकृतिक रंजक उपलब्ध नहीं होते है।

प्राकृतिक रंजकों के महत्वपूर्ण स्रोत

मंजिष्ठा (*रुबीया कार्डिफोलिया*)

यह एक सबसे पुराना लाल रंग के रंजक का स्रोत है। अथर्ववेद में इसका विवरण दिया गया है। संशलेषित रंजक के आगमन के पूर्व इसका उपयोग लाल रंग प्राप्त करने से किया जाता था। इसके तने और जड़ से रंग प्राप्त किये जाते हैं। रासायनिक रुप से एलिजरीन और परपप्यूरीन जो कि मंजिष्ठा में पाये जाते हैं, रंग उत्पन्न करते हैं। मुख्य रुप से इसका इस्तेमाल कपडें रंगने में किया जाता है। परन्तु चमड़े और बालों की रंगाई भी इससे की जाती है।

कमला रंजक (*मेलोटस फिलिपेंसिस*)

इसका पूरा नाम काम्पिल्या था जो की काम्पिल्या साम्राज्य में पाया जाता था। यह एक छोटा सदाबहार वृक्ष है, जिसके फल से लाल और नारंगी रंग प्राप्त होता है। इसके द्वारा खास कर सिल्क के कपडों की रंगाई की जाती है। इसका सक्रिय मूल रॉटलेरीन मुख्यतः इसके रंग के लिए जिम्मेदार है।

लाख (*लैसिफर लैक*)

यह लाख के कीड़े से उत्पन्न होता है, जिससे लाल रंग प्राप्त होता है। उतर वैदिक काल से लेकर आज तक इसका उपयोग कपड़े रंगने में किया जाता है। लाल रंग उत्पन्न करने वाला रसायन लैकीक अम्ल होता है।

कुसुम (*कारथेमस टिक्टोरियस*)

इसके फूल से लाल और नारंगी रंग प्राप्त होता है। उतर वैदिक काल में इससे कपड़े रंगे जाते थे। आज भी यह लाल और नारंगी रंग का एक मुख्य स्रोत है। इसकी खेती भी की जाती है।

हल्दी (*करकुमा लौंगा*) – हल्दी एक प्रमुख खाद्य रंग है। आयुर्वेद में इसके कई गुण वर्णित है। मसालो में इसका उपयोग किया जाता रहा है। इससे पीला रंग प्राप्त होता है। करकुमिन नामक रसायन मुख्य रुप से रंग उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी है।

नील (*इंडिगोफेरा इंडिका*) – इसका वर्णन अर्थववेद में नीले रंग के लिए किया गया है। यह नीले रंग का सबसे मुख्य स्रोत है। भारत वर्ष से कई देशों को इसका निर्यात किया जाता था। सन् 1887–88 में लगभग चार करोड़ रुपये मूल्य का नील विदेशों को निर्यात हुआ था। यह एक बैट डाई है।

इसके अलावा अन्य पौधों से भी प्राकृतिक रंग प्राप्त होते हैं, जिनका उल्लेख निम्नांकित सारणी–1 में किया गया है।

सारणी 1 प्राकृतिक रंगों के पादप स्रोत

क्र. सं.	वानस्पतिक नाम	व्यापारिक नाम	पौधे की माँग	रंग उत्पन्न
1	एकेसिया निलोटीका	कीकर	पत्ते,छाल और पोडस	काला से गाढा भूरा
2	एकेसिया कटैचू	खैर	हार्डवुड	लाल और भूरा
3	एकेसिया सिनूइटा	रीठा	छाल	भूरा
4	एकेसिया फारनेसियाना	बबूल	छाल	काला
5	एकेसिया ल्युकोसीफेला	सफेद कीकर	छाल और पत्ते	लाल
6	एगील मारमेलोस	बेल	फल	पीला
7	एल्बीजिया ओडोरेटिसिमा	काला सीरीस	छाल	भूरा
8	एल्युरीटस मोलुकाना	जंगली अखरोट	जड़	भूरा
9	एलनस नेपालेन्सीस	उदीस	छाल	भूरा
10	एन्ड्रोपोगन षोरगम	चीनी इख	बीज	लाल
11	एनोना रेटिकुलेटा	रामफल	फल	लाल
12	एनोगाइसस लैटिफोलिया	बकला	पत्ते	काला
13	आरटोकारपस हेटरोफाइलस	कटहल	लकड़ी	पीला
14	आरटोकारपस लेकूचा	दाहुवा	जड़	पीला
15	मधुका लौन्गीफोलिया	बटर ट्री	छाल	भूरा
16	बाउहिनीया बैरीगाटा	कचनार	छाल	लाल
17	बरबेरिस नेपालेन्सीस	नेपाली बेरी	जड़	पीला
18	बीक्सा ओलेराना	लटकन	बीज	लाल और नारंगी
19	ब्यूटीया मोनोस्पर्मा	ढाक	फूल	पीला
20	ब्यूटीया सुपर्बा	पलास लता	जड़	लाल
21	सिसलपिनिया सैपन	पातंग	लकड़ी	लाल
22	कैरिया आरबोरिया	कुम्भी	छाल	भूरा
23	कारथेमस टिंक्टोरिमस	कुसुम	फूल	लाल
24	केसिया ऑरिकुलाटा	तरवार	फूल	पीला
25	केसिया टोरा	चंकुदा	बीज	नीला और लाल
26	केसिया फिस्टूला	अमलतास	छाल	लाल

क्र. सं.	वानस्पतिक नाम	व्यापारिक नाम	पौधे की माँग	रंग उत्पन्न
27	केजुरिना इक्विसेटीफोलिया	जंगली सारु	छाल	भूरा
28	टुना सिलियाटा	तुन	पत्ते, फूल	लाल और पीला
29	सेरियोप्स कैन्डोलिना	मैंग्रोव	छाल	लाल और भूरा
30	क्रोकस सटाइवस	केसर	फूल	पीला
31	करकुमा लौंगा	हल्दी	जड़	पीला
32	साइनोमेट्रा रैमिफ्लोरा	–	जड़	वैगनी
33	डेटिस्का कैनाबिना	अकलवीर	जड़	पीला
34	डेलफिनीयम जालिल	असबर	फूल	पीला
35	डायस्पोरस मैलबैरिका	गब	फल	भूरा
36	साइजाइगियम क्यूमिनी	जामुन	छाल	लाल
37	फाईकस रिलीजिओसा	पीपल	छाल और पत्ते	लाल भूरा और पीला
38	फ्लेमिंगा माइक्रोफाइला	वालरस	छाल और पत्ते	पीला
39	गारसीनिया जैंथोकाइमस	तामल	छाल	पीला
40	गरुगा पिनाटा	चोगार	पत्ते	लाल
41	जेरिनेयम नपालिन्स	भांडा	जड़	लाल
42	गौसीपियम हरबेसियम	कपास	फूल	पीला
43	इंडिगोफेरा टिंक्टोरिया	नील	पते	नीला
44	जैसमिनियम हयूमाइल	पित मालती	जड़	पीला
45	कैंडिलीया कैन्डेल	–	छाल	लाल और भूरा
46	लाउसोनिया इनरमिस	मेहंदीं	पत्ते और जड़	लाल
47	मैलोटस फिलीपैंसिस	कमला	फल	नारंगी
48	मैंजिफेरा इंडिका	आम	छाल	पीला
49	मैलेस्टोमा मैलबैथरिकम	इंडियन रोडेन्ड्रॉन	फल	बैंगनी
50	मेमीसिलोन अम्बीलेटम	लौह काष्ठ	पत्ते और फूल	पीला
51	मेसुआ नागा	नाकेसर	फूल और छाल	पीला
52	माइमस्मस एलेंगी	बकुल	छाल	भूरा
53	मोरिंडा सिट्रीफोलिया	इंडियन मलबरी	जड और छाल	लाल
54	मोरिंडा टिंक्टोरिया	आक	छाल	लाल
55	मोरिंडा अम्बेलेट	–	जड़	पीला
56	मोरिंगा ओलियोफेरा	सोजना	लकड़ी	नीला
57	माइरिका स्कुलेन्टा	काफल	फल	गुलाबी
58	निक्टैन्थस आरबोरट्राइटिस	हरसिंगार	फूल	पीला
59	लैनिया कोरोमैनडिलिका	जींगन	छाल	सुनहरा और भूरा
60	हाइडयोटिस प्यूबेरुला	चीरीवाल	जड़	लाल
61	एम्बिलिका ऑफिसिनेलिस	आँवला	छाल और फल	काला, स्लेटी और भूरा
62	पाइनस वैलिचियाना	कैल	छाल	पीला और नारंगी
63	पाइनस राक्सबरगाई	चीड पाइन	छाल	भूरा
64	टेरोकारपस मारसुपियम	वीजासल	छाल	लाल
65	टेरोकारपस सैंटालिनस	लालचंदन	लकड़ी	लाल
66	रोइजोफोरा म्यूक्रोनेटा	मैनग्रोव	छाल	गाढ़ा भूरा
67	रुबीया कार्डिफोलिया	मंजिष्ठा	जड़ और तना	लाल
68	सेमिकारपस अनाकारडियम	मारकिंग नट	फल और छाल	काला

क्र. सं.	वानस्पतिक नाम	व्यापारिक नाम	पौधे की माँग	रंग उत्पन्न
69	सोरिया रोबस्टा	साल	छाल	लाल और काला
70	सिम्पोलोकोस रेसिमोसा	लोध	लकड़ी और पत्ते	पीला
71	टैक्टोना ग्रैनडिस	सागवान	पत्ते	पीला
72	टरमिनेलिया बेलैरिका	बहेडा	फल	पीला और भूरा
73	टरमिनेलिया चीबूला	हरड	फल	पीला और भूरा
74	टरमिनेलिया टोमेंटोसा	असन	छाल और जड़	भूरा
75	व्डफोर्डिया फ्रुटीकोसा	धाइ	फूल	गुलाबी से लाल
76	जिजिफस मॉरिसियाना	बेर	पत्ते	लाल गुलाबी

आज का परिदृश्य

आज के समय में पर्यावरण, स्वास्थ्य और सामाजिक जन जागरण के चलते पूरे विश्व के उपभोक्ताओं में जागृति आई है और वे ऐसी वस्तुओं का उपयोग करना चाहते हैं जो पर्यावरण के अनुकूल हो और स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक न हो। इसलिए प्राकृतिक रंगो की माँग भी लगातार बढ़ रही है। सन् 2002 से 2007 के बीच यूरोपीय संघ मे प्राकृतिक रंगों के आयात में 3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई है, तथा संश्लेषित रंगो का आयात 2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से घटा है। इसका कारण पर्यावरण अनूकूल वस्तुओं की मांग में वृद्धि हैं। परन्तु बड़े–बड़े रंजक उपक्रम अभी भी प्राकृतिक रंगों के इस्तेमाल में पर्याप्त अभिरुचि नहीं दिखा रहे हैं, और संश्लेषित रंजकों का ही उपयोग कर रहे हैं। प्राकृतिक रंग अभी भी छोटे स्तर पर, खादी वस्त्र इत्यादि में ही प्रयुक्त होते है। परन्तु आने वाले समय में इसका उपयोग और भी बढने की पूरी संभावना है। इसके लिये कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने चाहिये जैसे, बड़े पैमाने तथा उचित मूल्य पर गुणवत्ता से भरपूर प्राकृतिक रंगो का निर्माण और ऐसे रंगो का निर्माण जिसका कलर फास्टनेस बहुत अधिक हो।

सन् 2002 में यूरोपीय संघ ने कई एंजो रंजक और उनसे रंगे कपड़ों के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया जिसके फलस्वरुप प्राकृतिक रंगों की मांग में तेजी आई है। यूरोपीय देशों में प्राकृतिक रंगों के उत्पादन सीमित हैं, क्योंकि वहॉ मजदूरी बहुत अधिक है तथा रंग देने वाले पौधों के उत्पादन के लिए अनूकूल परिस्थितियाँ नहीं है। इससे एशिया के देशों में इसके उत्पादन की असीम संभावनायें हैं। प्राकृतिक रंगों का औद्योगिक स्तर पर उत्पादन अभी भी विकास के चरण में है क्योंकि एक मैच के रंगों का दूसरे मैच के रंगों से मिलान कठिन है। इसलिए बडे औद्योगिक टेक्सटाइल यूनिट इस ओर कदम नही बढाते। परन्तु अभी हाल ही में भारत के दो बडे टेक्सटाइल ग्रुप ने पूरी तरह ऑरगेनिक और प्राकृतिक रंगों से रंगे सूती वस्त्र विश्व बाजार में लाए हैं। अतः आज और आने वाला कल प्राकृतिक रंगों का ही है।

अन्दर मूरत पर चढ़े घी, पूरी मिष्ठान,
मन्दिर के बाहर खड़ा, ईश्वर मांगे दान।

सातों दिन भगवान के क्या मंगल क्या वीर,
जिस दिन सोये देर तक, भूखा रहे फकीर।

– निदा फ़ाज़ली

पादप रसायन विज्ञान के नवीन आयाम एवम् भावी स्वरूप

डॉ.वाई.सी. त्रिपाठी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

भूमिका

प्रकृति में ही जीवन के समस्त तत्व विद्यमान है तथा प्राकृतिक स्रोतों में मानव जीवन की समस्याओं का समाधान है। मानव सभ्यता के प्रादुर्भाव के पूर्व से ही वन्य वनस्पतियाँ इस पृथ्वी पर जीवधारियों के भरण–पोषण का प्रमुख साधन रही हैं। इसके अतिरिक्त रोगोपचार एवं स्वास्थ्यरक्षा के लिए भी जीवधारी पौधों पर ही निर्भर रहे हैं। वनस्पति जगत के पोषक एवं भेषजीय गुण हमेशा से जिज्ञासा का विषय रहे हैं। ज्ञात है कि पौधे अभिवृद्धि एव जीवन के लिए प्रकाश संशलेशण क्रिया द्वारा अपने भोजन के रूप में प्राथमिक चयापचयी यौगिकों का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार विभिन्न अंतः क्रियायों, परीस्थितिकीय संतुलन तथा प्रतिरक्षा तंत्र के विकास के क्रम में पौधे प्राकृतिक रुप से द्वितीयक चयापचयी यौगिकों का एक विशाल समूह उत्पन्न करते हैं, जिनकी प्रकृति, आण्विक संरचना, गुण एवं भूमिका पौधों की प्रजाति के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। यद्यपि पौधों में जीन्स के संयुक्तिकृत रासायनिक क्रिया द्वारा संयोग, मिलन व विकसित करने की क्षमता, विभिन्न द्वितीयक चयापचयी उत्पादों का जैविक संश्लेषण, उनकी उत्तरजीविता एवं वनस्पति जगत में विविधीकरण के लिए अपरिहार्य है तथापि विज्ञान जगत में पौधों की इस विशिष्ट जैवसंशलेषण प्रणाली के बारे में जानकारी आंशिक ही है। पौधों के द्वितीयक चयापचयी उत्पादों के विशिष्ठ जैवक्रियात्मक गुणों के आलोक में इनके रासायनिक अध्ययन का सूत्रपात हुआ और इस प्रकार पादप रसायनशास्त्र का जन्म हुआ। प्रारम्भ में पादप रसायनशास्त्र को कार्बनिक रसायनशास्त्र की एक शाखा के रुप में माना गया। कालांतर में इस विज्ञान के वृहत् विकास एवं सम्भावनाओं को देखते हुए इसे अध्ययन–अनुसंधान के क्षेत्र में स्वतंत्र विषय का दर्जा हासिल हुआ।

द्वितीयक चयापचयन

पौधों में द्वितीयक चयापचयन प्रक्रिया की खोज एवं व्याख्या सर्वप्रथम सन् 1891 ई0 में ऑलब्रिच कोसेल द्वारा की गयी। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक द्वितीयक चयापचयी अनुसंधान पौधे से यौगिकों का विलगन तथा अभिक्रियाओं पर आधारित उनकी पहचान तक ही सीमित रही। सन् 1950 के प्रारम्भ में रेडियोधर्मी न्यूक्लियाइड्स की खोज एवं जटिल खोजी तकनीकों द्वारा द्वितीयक चयापचयी तत्वों की जैवसंश्लेषण प्रक्रिया के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी हासिल हुई। सन 1950 तक द्वितीयक चयापचयों को विषहारक तत्व माना जाता रहा, तत्पश्चात् करीब 50 वर्षों के गहन अनुसंधान के बाद इन व्यर्थ माने जाने वाले यौगिकों की प्रतिकूल परिस्थिति में पौधों की उत्तरजीविता एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की गयी। प्रतिरक्षी क्षमता के कारण पौधों के नियामक विकास व जीन परिवर्तन में द्वितीयक चयापचयी घटकों की भूमिका को भी रेखांकित किया गया। द्वितीयक चयापचयों के अद्वितीय रक्षात्मक गुणों से इस तथ्य को बल मिला कि इन जैवरासायनिक घटकों का जीवधारियों की शारीरिक प्रणाली पर भी सार्थक एवं लाभकारी प्रभाव है। उदाहरण स्वरूप जीवाणु जनित रोगों से पौधों में संश्लेषित रासायनिक घटक प्रतिजीवाणु औषधि के रूप में प्रयोग किये जा सकते हैं। इसी प्रकार, न्यूरोटॉक्सीन के द्वारा पौधों में प्रतिरक्षा तंत्र विकसित करने के लिए उत्तरदायी रसायन मानव की तंत्रिका प्रणाली से सम्बन्धित व्याधियों का निदान कर सकते हैं। सन् 1960 के दशक तक रासायनिक प्रक्रियात्मक अध्ययन ही पादप रसायनों के संरचनात्मक अध्ययन का आधार रहा। पृथक्करण की उन्नत क्रोमेटोग्राफिक तकनीकों एवं संरचनात्मक अध्ययन हेतु स्पेक्ट्रोस्कोपिक तकनीकों के आगमन के साथ पादप रसायन अनुसंधान के क्षेत्र में गुणात्मक एवं दूरगामी परिवर्तन हुये। बाद के वर्षों में इन तकनीकों नें पादप रसायन अनुसंधान में

महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जिसमें औषधि विज्ञान का महत्वपूर्ण संयोग है। इन अन्वेषणों से पादप रसायनों से सम्बन्धित ज्ञान एवं उनके अनुप्रयोग में व्यापक सुधार आये।

वनस्पतियों के सक्रिय मूल

पौपी (*पापावर सोम्नीफेरम*) के पौधे से मॉरफीन नामक जैवक्रियाशील यौगिक के विलगन को पौधों के द्वितीयक चयापचयी उत्पादों पर अनुसंधान का प्रारम्भ माना जाता है। जबकि इस क्षेत्र में गहन एवं व्यापक अनुसंधान की शुरूआत 20 वीं सदी के मध्य काल से हुई। इसके साथ ही औषधीय पौधों से सक्रिय मूलों के पृथक्करण में तेजी आई। तत्पश्चात् मूल तत्वों का विलगन होता गया जिससे आज की तारीख में पौधों से प्राप्त संरचनात्मक रूप से स्थापित द्वितीयक चयापचयी यौगिकों की संख्या दो लाख से अधिक हो चुकी है। इनमें प्रमुख रूप से औषधीय पौधों से विलगित सक्रिय मूल जैसे मॉर्फिन व कोडिन (*पापावर सोम्नीफेरम*), रेसरपीन (*रावल्फिया सरपेंटिना*), एट्रोपीन (*हायोसायमस म्यूटिकस*), स्यूडोएफेड्रिन व एफेड्रिन (*इफेड्रा प्रजाति*), स्कोपोलेनीन (*धतूरा*), मोनोटरपीन इरिडोठड्स (*पिकोराइजा कुरोआ*), डिजिटॉक्सीन (*डिजिटेलिस परप्यूरिया*), आर्टिमिसीन (*आर्टिमीसीया एनुआ*), वालट्रेट (*वेलेरियाना वालिषाई*), शतावरीन (*एस्पैरेगस रेसिमोसस*), जिन्सीनोसाइड (*पैनेक्स जिनसेंग*), जेड व ई– गुगुलस्टीरॉन (*कोमिफोरा वेटियाई*) पेरूवोसाइड (*थैवेटिया नेरिफोलिया*), विथेनोलाइड्स जैसे विथाफेरीन आदि (*विथेनिया सोम्नीफेरा*), विनब्लास्टीन व विनक्रिस्टीन (*कैथेरेंथस रोजियस*), टेक्सॉल (*टेक्सास बकाटा*), आदि शामिल हैं। सन् 1950–1970 के मध्य करीब 100 सक्रिय मूलों का निष्कर्षण वनस्पतियों से हुआ। इसके उपरांत यह संख्या तेजी से बढ़ी।

विकास की इस प्रक्रिया में इंडिगो (नील) का संश्लेषण मील का पत्थर साबित हुआ, जिससे प्राकृतिक रूप से जैवसंश्लेषित द्वितीय चयापचयी यौगिकों के कृत्रिम संश्लेषण का मार्ग खुला तथा इस सफलता ने विशलेषणात्मक पादप रसायन विज्ञान को नई दिशा प्रदान की।

औषधीय उपादेयता

भेषजीय एवं चिकित्सीय अनुसंधानों द्वारा विभिन्न पौधों से विलगित सक्रिय मूलों की जैवक्रियाशीलता के अध्ययन से न केवल उनके वानस्पतिक स्रोतों के पारम्परिक औषधीय गुणों की पुष्टि की गयी वरन् इन सक्रिय मूलों के नये रोग निवारक गुण भी उद्घाटित हुए। इनमें से कुछ सक्रिय मूल आश्चर्यजनक रूप से ऐसी व्याधियों के लिए प्रभावी पाये गये जिनका इलाज आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी चुनौतिपूर्ण रहा है। *कैथेरेंथस रोजियस* से प्राप्त विनब्लास्टीन व विनक्रिस्टीन, *टेक्सास बकाटा* से टेक्सॉल, पोडोफाइलम प्रजाति के पौधे से विलगित अेनिपोसाइड व इटोपोसाइड, इत्यादि विभिन्न प्रकार के कैंसर के इलाज में प्रयुक्त हो रहे हैं। अब तक प्रतिजैविक के रुप में प्रभावी लगभग 64 तथा मधुमेहरोधी के रुप में प्रभावी 24 पादप रसायनों को चिन्हित किया गया है। एक रिपोर्ट के अनुसार आधुनिक समय में कैंसर के इलाज में प्रयुक्त दवाओं का लगभग 60 प्रतिशत तथा इन्फेक्शियस रोगों के लिए 75 प्रतिशत औषधियाँ या तो वानस्पतिक मूल की हैं या इनके सक्रिय मूलों के रासायनिक रुपान्तरण से निर्मित हैं। पिछले तीन दशकों के दौरान वानस्पतिक पॉलिफिनाल पर काफी अनुसंधान हुए हैं, जिसके फलस्वरुप बड़ी संख्या में पॉलिफिनाल यौगिकों का विलगन एवं पहचान सम्भव हो सका है। प्रतिआक्सीकारक गुणों के कारण ये प्राकृतिक पॉलिफिनाल विश्व भर के वैज्ञानिकों के ध्यानाकर्षण का केंद्र बने हैं। उल्लेखनीय है कि मानव शरीर में ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस अनेक प्रकार के व्यतिकमों का कारण बनता रहा है। प्रतिआक्सीकारक इस ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं, जिनसे न केवल व्याधियों से बचाव होता है बल्कि सम्पूर्ण स्वास्थ्य रक्षा भी होती है। पादप जनित सक्रिय मूल प्रभावशीलता के आधार पर आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी अहम् स्थान बना चुके हैं और इनका प्रयोग उदर रोग, चर्म रोग, हृदय रोग, अवसाद, मधुमेह, पीलिया, कैंसर, आदि बीमारियों के इलाज में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इससे आगे कुछ अन्य चुनौतिपूर्ण व्याधियों जैसे हेपिटाइटीस, अलजाइमर, एड्स, इत्यादि के प्रभावी निदान हेतु औषधीय वनस्पतियों में सम्भावना तलाशी जा रही है और इस दिशा में गहन अनुसंधान जारी हैं।

वनस्पतियों से पोषण

परम्परागत रुप से पौधों में कार्बोहाइड्रेट्स की भूमिका संरचनात्मक एवं उर्जा संचय तक सीमित मानी जाती रही है। परन्तु आधुनिक युग के उच्च एवं परिष्कृत अनुसंधानों के परिणाम स्वरुप इनके जैवशारीरिक प्रणालियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव की पुष्टि की गयी है। इनके क्रियात्मक गुणों की बेहतर जानकारी की बदौलत चिकित्सा जगत में कार्बोहाइड्रेट्स की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारा जा रहा है। खाद्य प्रौद्योगिकी में कार्बोहाइड्रेट्स का महत्व एवं योगदान सर्वविदित है। आज की आधुनिक जीवनशैली में कम कैलोरी एवं सीमित वसा वाले खाद्य पदार्थों की वृहत् मांग है, जिसके फलस्वरुप औद्योगिक खाद्य उत्पादों में वसा की मात्रा कम करने या वसा रहित करने हेतु वैकल्पिक अवयवों की आवश्यकता है। इस संदर्भ में कार्बोहाइड्रेट यौगिकों की महति भूमिका है तथा इनके रासायनिक रुपान्तरण से ऐसे उत्पाद तैयार किये गये हैं जो वसा के समान ही गुण एवं प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। ऐसे उत्पाद वसा के विकल्प के रुप में खाद्य पदार्थों के औद्योगिक उत्पादन में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त हो रहे हैं।

वनस्पतियों से प्राप्त वसा उत्पाद् भोजन के अभिन्न अंग रहे हैं। इनके अवयवी घटकों के आधार पर इन्हें विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में विश्व स्तर पर स्वास्थ्य के प्रति आई जागरुकता ने उच्च पोषण एवं भेषजीय गुणों से युक्त वसा उत्पादों के विकास को गति प्रदान की है। वसा के रासायनिक घटकों का विश्लेषण एवं स्वास्थ्य पर उनके प्रभावों का अध्ययन कर वांछित गुणवत्ता से युक्त वसाओं की पहचान की गई है। साथ ही ऐसे डिजाइनर तेल एवं वसा उत्पाद तैयार किये जा रहे हैं जो पोषण के साथ–साथ स्वास्थ्य रक्षा में भी प्रभावी हो सकें। इस संदर्भ में स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण वसा अम्लों जैसे आल्फा–लिनोलेनिक अम्ल, गामा–लिनोलेनिक अम्ल तथा आल्फा–टोकोफेरोल की प्रचुरता वाले वसा उत्पादों के विकास पर बल दिया जा रहा है। आजकल ऐसी कृत्रिम वसाएँ तैयार की जा रही हैं जो वसाएँ नहीं हैं। वानस्पतिक पोषकों पर आधारित इन अनुसंधानों की बदौलत उच्च पोषण एवं स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों से युक्त कृत्रिम भोज्य पदार्थ तैयार करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

प्राकृतिक कीटनाशक

पौधों के कीट एवं रोग नाशक गुणों की जानकारी तथा फसलों एवं कृषि उत्पादों को कीटों एवं रोगो से बचाव में उनके प्रयोग का इतिहास करीब 700 ई०पू० पुराना है। इस आशय का लिखित उल्लेख सन् 1690 ई० का है जब तम्बाकू की पत्तियों के जलीय निष्कर्ष का प्रयोग बागवानी में पौधों को कीटों से बचाने में किया जाता था। तदन्तर सन् 1828 ई० में रासायनिक अध्ययनों द्वारा तम्बाकू पत्तियों से निकोटीन नामक एल्केल्वाएड (सक्रिय मूल) विलगित किया गया, जिसमे कीटनाशक गुण पाये गये। इस प्रकार निकोटीन प्रथम प्राकृतिक कीटनाशी के रुप में जाना गया। इसी कड़ी में सन् 1850 ई० के दौरान *डेरिस एक्लिप्टा* से रोटेनोन व डाइहाइड्रोरोटेनोन तथा *काइसेनथिमम सिनेरेरियेफोलियम* से पाइरेथ्रम नामक महत्वपूर्ण कीटनाशी यौगिक प्राप्त किये गये।

पादप कीटनाशको के क्षेत्र में वास्तविक एवं व्यवहारिक उपलब्धि नीम वृक्ष के कीटनाशक गुणों के उद्घाटन से हुई। नीम के बीजों से प्राप्त एजाडिरेक्टीन नामक सक्रीय मूल के व्यापक कीटनाशक गुणों की पहचान के साथ ही प्राकृतिक कीटनाशकों के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास में काफी तेजी आई। अब तक लगभग लगभग 600 पौधों के कीट व रोग नियंत्रक गुणों का पता लगाया जा चुका है। संश्लेषित कीटनाशकों का पर्यावरण एवं जीवधारियों पर दुष्प्रभाव को देखते हुए इनके अत्यधिक प्रभावकारी प्राकृतिक विकल्प तलाशने हेतु विश्व स्तर पर सघन अनुसंधान हो रहे हैं।

नवीन आयाम

प्रारम्भ में पादप रसायन (फाइटोकेमिकल) आधारित अनुसंधान उनके विलगन, संरचना निर्धारण एवं मानवीय उपयोगिताओं पर ही केंद्रित रहा। कालांतर में प्राकृतिक उत्पाद् अन्वेषण का स्वरुप परिवर्तित हुआ जिससे इस क्षेत्र में मूलभूत जानकारी बढ़ी तथा वानस्पतिक उत्पाद आधारित उद्योगों का विकास हुआ। औषधीय रसायन विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त हुए, जिसने हर्बल सेक्टर में नवीन सम्भावनाओं का सूत्रपात किया। करीब पचहत्तर वर्ष पूर्व रसायन विज्ञान के क्षेत्र में नई प्राविधियों एवं नवीन यंत्रीकरण के प्रादुर्भाव के साथ एक नये युग का सूत्रपात हुआ जिससे

आणविक संरचना एवं क्वांटम यांत्रिकी ने परमाणुओं के आचरण की सही–सही तस्वीर प्रस्तुत की। प्राकृतिक उत्पाद् अन्वेषण की स्वचालित, विकसित एवं प्रवरणशील जैवमापन तकनीकों में वृद्धि हुई। पादप रसायनों के विलगन हेतु विभिन्न प्रकार की क्रोमेटोग्राफी तकनीकों, अनुमापन तकनीकों जैसे उच्च निश्पाटन प्रवाह क्रोमेटोग्राफी, प्रतिकूल प्रवाह विभाजन क्रोमेटोग्राफी, आदि तथा संरचना निर्धारण तकनीक जैसे अल्ट्रावायोलेट, इन्फ्रारेड, न्यूक्लियर मैगनेटिक रेजोनेंस एवं मास स्पेक्ट्रोस्कोपी, आदि विकसित हुई। इन नवीन, उच्चस्तरीय एवं परिष्कृत तकनीकों ने पादप रसायनों पर अनुसंधान को गतिशीलता प्रदान की तथा इनसे त्वरित व स्पष्ट परिणाम प्राप्ति में काफी सहायता मिली। आनुवांशिक अभियांत्रिकी व जैव प्राद्यौगिकी के विकास एवं प्रगति के साथ प्राकृतिक उत्पाद् अन्वेषण को एक नयी दिशा मिली। जीव विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से जुड़ कर पादप रसायनों के जैवक्रियाशीलता के अध्ययन में महत्वपूर्ण सफलता हासिल हुई।

पादप प्रजातियों की विविधता, जैवतकनीकी एवं आनुवांशिक अभियांत्रिकी का महत्वपूर्ण आधार हैं। पादप उत्पादों के जीन्स का सुनियोजित प्रचालन द्वारा जैव संश्लेषण के कृत्रिम मार्गों को ज्ञात किया गया, जिसके माध्यम से वांछित प्राकृतिक उत्पादों जैसें अभिकल्पक रसायन, रोगन, स्नेहक, स्टार्च, बायो पॉलिमर के संश्लेषण में सफलता हासिल हुई। इतना ही नही, परम्परागत रसायनिक प्रक्रियाओं के घातक प्रभाव को देखते हुए पर्यावरणमैत्रीय तकनीकें विकसित हुईं। पारंपरिक बयोएसै विधियों द्वारा जैव विविधता के मूल्यांकन मे अधिक समय एवं सामग्री का लगना इस कार्य में एक बड़ी बाधा रही, जिसका निराकरण हाई थ्रोपुट टेस्ट के विकास के साथ दूर हुआ। यह तकनीक प्राकृतिक उत्पाद् के सार तत्वों व इनके अनुरुप तत्वों की जैविक क्रियाओं का त्वरित मूल्यांकन व बायोएसै निर्देशित फ्रेक्सनेशन की प्रक्रिया को त्वरित गति से संपादित करता है। इस तकनीक के द्वारा कम समय में व त्वरित गति से अधिकाधिक पादप नमूनों का विश्लेषण सम्भव हुआ।

भावी स्वरुप

बदलते समय के साथ–साथ पादप रसायन विज्ञान के कार्य क्षेत्र का विस्तार हुआ है, एवं विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में उसका समावेश हुआ है। सम्प्रति जीव विज्ञान, पर्यावरणीय विज्ञान, जैवरसायन तथा आणविक जीव विज्ञान ऐसे क्षेत्र हैं, जहॉ यह विज्ञान एक बड़े घटक के रुप में विद्यमान है। ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि पादप रसायन विज्ञान अध्ययन–अनुसंधान के क्षेत्र में एक अहम् विषय के रुप में दृढ़ता से स्थापित होगा। चिकित्सा के क्षेत्र में पादप रसायन विज्ञान वैकल्पिक औषधि के विकास की ओर तेजी से अग्रसर है। प्रकृति से प्राप्य औषधीय पौधों के विविध यौगिकों को आधुनिक एवं परिष्कृत निदान सूचक विधियों एवं विश्लेषक उपकरणों द्वारा विलगन एवं पहचान किया गया है। जीन चिकित्सा तथा प्रोटीन चिकित्सा के क्षेत्र में ऐसे लघु अणुओं की खोज की जा रही है, जिन्हें नियामकों के रुप में प्रयुक्त किया जा सके। आने वाले वर्षों में संश्लेषण के क्षेत्र में नई सम्भावनाएँ हैं। जटिल कार्बोहाइड्रेट्स जिनमें समस्त ऐंटीजेन शामिल हैं, के संश्लेषण और इनके औषधीय प्रयोग से दु:साध्य रोगों का इलाज हो सकेगा। इतना ही नही, जैविक प्रणालियों का उपयोग उन यौगिकों को उत्पन्न करने में किया जा सकेगा, जिनकी चिकित्सा जगत में भारी मांग है।

आनुवांशिक अभियांत्रिकी में भी रसायन विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है। रासायनिक सक्रियता की जानकारी के क्षेत्र में कम्प्यूटरों की सहायता से शीघ्र ही सम्पूर्ण अभिक्रिया का अध्ययन सम्भव हो सकेगा। इस तरह से किसी अभिक्रिया की निरंतरता को बनाये रखने के लिए किस प्रकार के उत्प्रेरक की आवश्यकता होगी, इसका भी पूर्ण ज्ञान हो सकेगा, जिससे नये उत्प्रेरकों के अभिकल्पन में सहायता मिलेगी। भविष्य में नूतन वैश्लेषिक प्राविधियों पर ध्यान दिया जा सकेगा। लघु से लघुत्तर मात्राओं को यहाँ तक कि आणविक मात्राओं को मापना तथा उनका स्पेक्ट्रोस्कोपिक अध्ययन करना सम्भव होगा। पेट्रोलियम के छीजते भंडार को देखते हुए वैकल्पिक ईंधन की खोज आज की सबसे बड़ी चुनौती है। इस सन्दर्भ में हाइड्रोजन एक अच्छा विकल्प हो सकता है, किन्तु हाइड्रोजन को संचित करना नितांत असुरक्षित है। हाइड्रोजन के बाद भी प्रचुर तरल ईंधन की आवश्यकता पड़ेगी। इस दिशा में अनुसंधानों द्वारा पौधों से प्राप्त अखाद्य तेलों एवं लिग्नोसेल्यूलोजिक पदार्थों के रासायनिक रुपान्तरण द्वारा बायोडीजल एवं बायोपेट्रोल के रुप में लागत एवं मूल्य की दृष्टि से व्यवहारिक तकनीकों के विकास हेतु प्रयास जारी हैं।

पादप रसायन विज्ञान के लिए नये अणु, नये उत्प्रेरक एवं नये यौगिकों की खोज तथा इन परमाणुओं को अत्याधुनिक तरीकों से व्यवस्थित करके नया सृजन करना एक बड़ी चुनौती है, जो विज्ञान की अन्य विधाओं में सम्भव नहीं। आने वाला समय निश्चय ही पादप रसायन विज्ञान के लिए चुनौतीपूर्ण होगा जो इस क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसंधान के महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करेगा।

तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार

यह असीम, निज सीमा जाने
सागर भी तो यह पहचाने
मिट्टी के पुतले मानव ने
कभी ना मानी हार

तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार

सागर की अपनी क्षमता है
पर माँझी भी कब थकता है
जब तक साँसों में स्पन्दन है
उसका हाथ नहीं रूकता है
इसके ही बल पर कर डाले
सातों सागर पार

तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार।।

–'शिवमंगल सिंह सुमन'

ई-बुक्सः नवीनतम प्रवृतियाँ व भविष्य में इनके लक्ष्य

श्रीमती अनुराधा भाटी,
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

आधुनिक युग में बहुत संख्या में वेबसाईटस, न्यूज ग्रुप डिस्कशन बोर्ड व ई–मेल, न्यूजलेटर उपलब्ध हैं जो पुस्तकों के प्रोत्साहन के लिए पूर्णतया समर्पित है। इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि कोई भी व्यक्ति ऐसी वेबसाइटस को प्राप्त कर सकता है जिसमें विशिष्ट एवं सूक्ष्म विषयों पर सूचनाऐं मिलती हैं। ये वेबसाईटस श्रोताओं को सूक्ष्म विषयों पर अधिक संख्या में सूचनाऐं प्रदान करते हैं। इलेक्ट्रोनिक बुक्स (ई–मेल) डिजिटल पुस्तकालय में एक दिन में 24 घंटे व एक सप्ताह में 7 दिन प्रमाणिक सूचना और उपभोक्ताओं को विशिष्ट शोध सामग्री तक शीघ्रता, सरलता और प्रभावशाली तरीके से प्राप्त करा सकती हैं। ई–बुक्स प्रदान करने वाली नेट पुस्तकालय ओसीएलसी (OCLC) का एक डिवीजन है और पुस्तक चयन, सूचीकरण व ई–बुक्स के वितरण में लिप्त है। उपभोक्ता पुस्तकालय के ऑन लाईन पब्लिक ऐसेस केटलॉगस् (OPAC) से दूरस्थ स्थानों से भी अपनी ई–बुक्स के अन्तर्गत सूचनाओं की सही स्थिति व पुनः निरीक्षण कर सकते हैं। डिजिटल पुस्तकालय में ई–बुक्स के समावेश ने पुस्ताकालयध्याओं, प्रकाशकों व ई–बुक्स प्रदान करने वालों के लिए नई चुनौतियों व अवसरों को प्रदान किया है।

ई–बुक्स परिभाषाऐंः– ई–बुक्स किसी पुस्तक की विषय सूची इलेक्ट्रोनिक फाईल के रूप में आवश्यकतानुसार वितरित होती है। कोई फाईल जो मूल ग्रन्थ रखती है वह सिद्धांत रूप से ई–बुक्स के रूप में उपयोग में लाई जाती है। कई विशेष प्रकार की पुस्तकों के फर्मे व पठन कार्यक्रम ई–बुक्स पढ़ने के लिए बनाऐ गए हैं। ई–बुक्स ठीक उसी प्रकार की होती है जैसे कि पेपर बुक्स अथवा प्रकाशित पुस्तक होती हैं। सिर्फ अन्तर यह है कि उनकी जिल्दसाजी इलेक्ट्रोनिक रूप से की जाती है। ई–बुक्स विभिन्न प्रकार के ढांचे में उपलब्ध होती है इनको डाउनलोड उदाहरण के रूप में पीडीएफ, एचटीएमएल, प्लेन टेक्स्ट व रीच टेक्स्ट (Plain Text and Rich Text) ढांचे में की जा सकती है और उन्हें सीडी रोम व लोपी डिस्क जैसे पुस्तक के फर्मो में खरीदी जा सकती है।

एक ई–बुक्स के संग्रह तक किसी भी समय में किसी भी स्थान से इन्टरनेट के द्वारा पहुँचा जा सकता है, जिसके लिए किसी विधि की आवश्यकता नहीं रहती है केवल पुस्तक के पाठ तक पहुँचने के लिए चाहिए, एक आदर्श, पर्सनल कम्प्यूटर अथवा ऑफलाईन से देखने की क्षमता होनी चाहिए और हाथ में रखने योग्य किसी विधि से देखने की क्षमता हो अथवा डिजिटल सहायक व्यक्ति हो। उपयोक्ताओं से यह गारंटी मिलनी चाहिए कि वे जो सूचनाओं तक पहुँचने के मार्ग को खोजते हैं उन सूचनाओं को प्रयोग में लाते हैं उनकी गुप्तता कायम रखेंगे। एक ई–बुक परम्परागत पुस्तक की आधारभूत विशेषताओं की समानता रखते हुए एक इलेक्ट्रोनिक फार्मेट में होती है। इसके साथ ही साथ इन्टरनेट तकनीक के द्वारा ई–बुक्स का उपयोग सरल और कुशलता पूर्वक किया जाता है।

एक ई–बुक एकमात्र मोनोग्राफ अथवा एक डिजिटल फोर्मेट में बहुखण्डीय पुस्तकों की हो सकती है और विविध प्रकार के मोनीटर्स, विधियों और पर्सनल कम्प्यूटर पर देखने की इजाजत देती है। यह विभिन्न प्रकार की पुस्तक संग्रह में से विशिष्ट सूचना को कम्प्यूटर द्वारा और एक पुस्तक के अन्दर निहित सूचना को खोजने में सहायक है। एक ई–बुक इन्टरनेट के लाभों का फायदा उठाते हुए मल्टीमीडिया डाटा को दूसरे इलेक्ट्रोनिक संसाधनों के साथ जोड़ने और बहुसंख्यक संसाधनों के मध्य अर्न्तसंदर्भ सूचना प्रदान करने में सहायक है।

विभिन्न सूचना के विशेषज्ञों ने ई–बुक्स की धारणा की विभिन्न परिभाषायें दी हैः– वेबोपीडिया (Webopedia) के अनुसार एक पुस्तक के इलेक्ट्रोनिक अनुवाद को ई–बुक्स कहा जाता है। जॉन ओ बोरचर्स ने ई–बुक्स को परिभाषित

करते हुए कहा है, "कि एक इलेक्ट्रोनिक बुक अथवा ई–बुक्स एक सहज में ले जाने योग्य हार्डवेयर व सॉटवेयर सिस्टम है जो बहुत मात्रा मे पाठ्यपुस्तक में वर्णित पठनीय सूचनाओं को पाठकों को देखने में सहायक होता है और उपभोक्ता को इन सूचनाओं के द्वारा अपनी वांछित सूचना को खोजने की इजाजत देता है।"

एना एरियास टेरी ने परिभाषित किया है कि इसके सबसे सरल स्तर पर ई–बुक इलेक्ट्रोनिक धारणा/विचारधारा है जो परम्परात पुस्तकों, संदर्भ पुस्तकों, मेटीरिल्स अथवा पत्रिकाओं से उत्पन्न हुई है तथा इन्टरनेट से डाउनलोड की जा सकती है और किसी भी संख्या में हार्डवेयर विधियों के द्वारा देखी जा सकती है। इन हार्डवेयर विधियों में पर्सनल कम्प्यूटर्स अथवा पॉमटाप्स अथवा ई–बुक्स रीडर्स मशीन आदि सम्मलित किए जा सकते हैं।

ई–बुक के प्रकारः– पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के विद्वानों ने ई–बुक्स को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है लेकिन उनमें से सर्व सामान्य वर्गीकरण में से एक डान हावकीन्स द्वारा किया गया है।

1. डाउनलोड की जा सकने वाली ई–बुक उदाहरण स्वरूप ग्लास बुक्स व गुटनबर्ग है।
2. समर्पित ई–बुक्स रीडस/उदाहरण स्वरूप जेमस्टार्स रेब्स (Gemstars REBs) व फ्रेकलीन्स ई–बुकमैन (Franklins E-Bookman) है।
3. मांग पर प्रकाशित की जाने वाली पुस्तके उदाहरण स्वरूप कोलम्बिया विश्वविद्यालय ऑनलाईन बुक प्रोजेक्ट है।
4. वी–ऐंसीबल ई–बुकः प्रदान करने वाले की वेबसाईट पर तथा एक फीस देने पर समीप पर पहुँचने का साधन मिलता है। इसका एक उदाहरण स्प्रिन्गर ई–बुक्स संग्रह है।

ई–बुक्स कैसे कार्य करती हैः– एक इलेक्ट्रोनिक बुक किसी पुस्तक की पठन सामग्री को डिजिटल स्वरूप में रखती है। इलेक्ट्रोनिक बुक्स कई प्रकार से डिजिटल स्वरूप पुस्तकों में हो सकती है पुस्तक के फर्मा पर निर्भर होने पर, उन्हें पढ़ने व देखने के लिए विभिन्न प्रकार के सॉफ्टवेयर और कम्प्यूटर हार्डवेयर की आवश्यकता पड़ती है।

ई–बुक्स के कार्य प्रणाली को समझने के लिए इलेक्ट्रोनिक बुक (अर्थात डिजिटल स्वरूप में पुस्तक के अन्दर की पठन सामग्री) व एक ई–बुक पढ़ने में आने वाले विभिन्न प्रकार के उपकरण (Tool for reading the book) को समझना लाभकरी होगा। ई–बुक को पढ़ने की विधि एक प्रकार की विशिष्ट विधि होती है। पर्सनल कम्प्यूटर के अतिरिक्त एक इलेक्ट्रोनिक बुक का निर्माण डिजिटल विधि के साथ इस प्रकार से उपयोग में लाने के लिए किया जाता है कि उन्हें विभिन्न उत्पादों विशिष्ट सॉफ्टवेयर व हार्डवेयर का उपयोग करते हुए दर्शाया जा सकता है।

ई–बुक–पुस्तकालयाध्यक्षों के लिए चुनौतियां :– पुस्तकालयाध्यक्षों को कार्य करने की रीतियों और तकनीकों में ई–बुक को पुस्तकालय में समावेश करने हेतु नई पद्धतियों की नीतियों व उन तक पहुँचने के विभिन्न तरीकों को विकसित करना पड़ता है। पुस्तकालयाध्यक्षों के लिए ई–बुक्स की चुनौतियों को तीन श्रेणी में बाँट सकते है।

1. **पुस्तकों का अधिग्रहण व संग्रह विकास :–** अधिग्रहण व संग्रह विकास की चुनौतियों में वितरण व क्रय के मॉडल्स व संग्रह विकास की व्यूह रचना सम्मिलित है।
2. **मानदण्ड व तकनीकी :–** मानदण्ड व तकनीकी चुनौतियों में न केवल सूचीकरण व मेटाडाटा के मानदण्ड व प्रणाली को सम्मिलित किया जाता है वरन् ई–बुक के हार्डवेयर व सॉफ्टवेयर, डिजिटल अधिकारों के प्रबंधन, सॉफ्टवेयर, उपभोक्ता और कर्मचारियों के प्रशिक्षण को भी सम्मिलित किया जाता है।
3. **ई–बुक्स में निहित सूचनाओं तक पहुँचने के साधन :–** ई–बुक्स में निहित सूचनाओं तक पहुँचने के मार्ग की चुनौतियों में ई–बुक्स का सूचीकरण व अनुक्रमणिकरण, इलेक्ट्रोनिक वातावरण में पुस्तक आदान– प्रदान मॉडल, ई–बुक्स के बचाव व ग्रन्थ रक्षण और ई–बुक्स से सम्बन्धित संसाधन भी सम्मिलित है। डिजिटल लाईब्रेरी में ई–बुक्स को जोड़ने के कार्य ने पुस्तकालयाध्यक्षों के लिये न केवल नए अवसर प्रदान किए हैं वरन् कई चुनौतियों को खड़ा कर दिया है। ई–बुक्स पूर्ण पाठ तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग और पुन प्राप्ति मिलकर वेब खोज व पुनः प्राप्ति तकनीकी के साथ पुस्तकालय आधारित सिद्धांतों व नियमों का निर्माण करती है।

ई–बुक्स के लाभ हानियाँ :–

ई–बुक्स प्रचलन की सफलता, अस्तित्व व सुविधा के पीछे कारण यह है कि प्रकाशित पुस्तकों से अधिक इसमें लाभ है। यह केवल उपभोक्ताओं के लिए ही लाभकारी नहीं है वरन् विभिन्न समूहों को जैसे कि पुस्तकालयाध्यक्षों, प्रकाशकों व लेखकों को भी अपनी विशिष्ट सुविधाऐं प्रदान करती है। निम्नलिखित प्रकाशित की तुलना में ई–बुक्स से निम्नलिखित लाभ है–

1. ई–बुक्स में कम स्थान की आवश्यकता रहती है और सैकड़ों अथवा हजारों पुस्तकों को उसी विधि से संग्रह किया जा सकता है। क्योंकि उन्हे थोड़ा स्थान चाहिए। ई–बुक्स अनिश्चित काल तक प्रदान की जा सकती है और लेखक लगातार अनिश्चित काल तक रॉयल्टी कमा सकते हैं।
2. पुस्तक में निहित पाठ्य सामग्री को स्वचालित तरीके से खोजा जा सकता है और बहुत तरीकों का प्रयोग करते हुए पुस्तकों में निहित पाठ्य सामग्री को खोजा जा सकता है। इस प्रकार से ई–बुक्स का फर्मा ऐसे कार्यो के लिए एक आदर्श प्रकार है तथा ऐसे कार्यो के लिए लाभदायक है।
3. उन पाठ्कों को जिन्हें प्रकाशित पुस्तकों को पढ़ने में कठिनाई अनुभव होती है उन्हें पाठ्य सामग्री का आकार व फोन्ट फेस के तालमेल से लाभ प्राप्त हो जाता है।
4. ई–बुक्स अधिक आरामदायक तरीके से पढ़ सकते हैं क्योंकि उन्हें भौतिक प्रकाशित पुस्तकों की तरह खुली रखकर पढ़ने की आवश्यकता नहीं है तथा नीचे बैठकर या लेटे–लेटे भी पढ़ सकते है।
5. ई–बुक्स का पुनः उत्पादन अथवा प्रतिलिपि अथवा प्रतिलिपि करने की कीमत बहुत थोड़ी लगती है जिससे वे पुरातत्व व पुराने रिकार्ड के उद्देश्य से आदर्श सिद्ध हुए हैं।
6. ई–बुक्स रीडर एक प्रकाशित पुस्तक की कीमत से अधिक महंगा पड़ता है लेकिन इलेक्ट्रोनिक पाठ्य सामान्यतया सस्ते पड़ते हैं।
7. लेखक को ई–बुक्स का स्वयं द्वारा प्रकाशित करना या करवाना आसान व सरल है।
8. यद्यपि ई–बुक्स को पढ़ने के लिए बिजली की आवश्यकता पड़ती है तथापि ई–बुक्स के उत्पादन के लिए कागज, स्याही व अन्य संसाधन जिनका प्रकाशन पुस्तकों के लिए प्रयोग में लाया जाता है आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

ई–बुक्स के निम्नलिखित दोष :–

1. अगर कम्प्यूटर न हो तो ई–बुक्स को इलेक्ट्रॉनिक विधि और/ अथवा सॉफ्टवेयर की आवश्यकता रहती है जिसकी सहायता से ई–बुक्स को दर्शाया जा सकता है। अगर ई–बुक्स को एक पर्सनल कम्प्यूटर की सहायता से देखा जाता है तब इसके लिए अतिरिक्त सॉफ्टवेयर की आवश्यकता पड़ती है।
2. सभी प्रकाशन ई–बुक्स को उनकी छपी हुई पुस्तकों के समान प्रकाशित नहीं करते हैं। दूसरे मामलो में, ई–बुक्स को कम वरीयता प्रकाशकों के संसाधनों के संबध में दी जाती है, जिसके फलस्वरूप उत्पाद की गुणवत्ता में पुस्तक के प्रकाशन के बाद निस्तारण की तिथि में और उसी प्रकार की अन्य असमानताऐं पाई जाती हैं। यह समस्या प्रत्येक प्रकाशन के साथ नही होती है लेकिन जो यान्त्रिकी प्रचलित है उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करती है।
3. सभी ई–बुक्स विधियों को इलैक्ट्रिकल पॉवर की आवश्यकता रहती है जिसके फलस्वरूप बिजली की बहुत खपत होती है।
4. स्क्रीन पर लम्बे समय तक देखने पर आंखों पर जोर पड़ता है तथा कभी सिर दर्द भी होता है।
5. कुछ ई–बुक्स फार्मेट भविष्य की विधियों के साथ अप्रचलित व बेमेल हो जाते हैं।
6. ई–बुक्स की चोरी जाने की संभावना प्रकाशित पुस्तकों की अपेक्षा अधिक रहती है।
7. ई–बुक्स रीडर पेपर बुक से अधिक भंगुरता वाला होता है और भौतिक क्षति से अधिक प्रभावित होता है।
8. ई–बुक्स पढ़ने के साज के सामान पर निर्भर रहती है। यह बाहरी हार्डवेयर अथवा सॉफ्टवेयर में कोई दोष रहने पर निर्भर रहती है।
9. ई–बुक्स पर प्रहार हार्डवेयर व सॉफ्टवेयर में सुधार अथवा बदलाव के द्वारा किया जा सकता है और बिना लेखक अथवा प्रकाशक की अनुमति के इन्टरनेट व अन्य

ई–बुक्स रीडर्स पर विस्तृत रूप में चारों ओर वितरित किया जा सकता है।

10. यदि ई–बुक्स को चुरा लिया जाए अथवा खोया अथवा टुकड़े हो जाए तब उसकी मरम्मत नहीं की जा सकती है।
11. बुक बाईडिंग की स्पर्शनीयता और सौन्दर्य का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता है।
12. पेपर पढ़ने की आदत स्क्रीन पर पढ़ने की आदत से कम है और ई–बुक्स पढ़ने में कठिनाई महसूस होती है।

कानूनी पेचीदीगियां व डिजिटल अधिकारों का प्रबंध :–

इलेक्ट्रोनिक प्रकाशन के विकास में बहुत से आलोचनात्मक तत्वों में एक महत्वपूर्ण तत्व यह है कि पुस्तकाल्यों को प्रभावित करने में डिजिटल अधिकारों के प्रबंध की पद्धति (Digital Right Management System) (DRMS) लिप्त है। यही पद्धति अभी भी विकसित हो रही है तथा बौद्धिक सम्पदा के ऊपर नियंत्रण पर दबाव डालते हुए उपभोक्ता की सीमाऐं, समय, फीस व किसी पुस्तक की विषय सूची की सीमाऐं निश्चित करती है। इसी प्रकार का नियत्रंण इलेक्ट्रोनिक पत्रिकाओं के लॉईसेंसिग में पुस्तक की विषय सूची की सीमा के लिए इस से सम्बन्धित प्रकाशकों से ई–बुक्स के लिए सॉटवेयर तैयार करने के लिए स्थापित किए गए है जिससे इस पद्धति पर अधिक विकास के लिए दबाव डाला जा रहा है।

प्रकाशकों से सम्बन्धित बौद्धिक सम्पदा पर अधिकार के कारण आज तक ई–बुक्स वैण्डर्स साधारणतया ई–बुक्स में से कुछ सूचनाऐं निकाल कर प्रकाशित करने के लिए डाउनलोडिंग व प्रतिलिपीकरण की बहुत सीमित मात्रा में स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। साधारणतया, अन्तर पुस्तकालय ऋण की स्वतन्त्रता नहीं है और कक्षाओ में इनका उपयोग करने की भी स्वतन्त्रता नहीं है।

प्रकाशक एक लेखक से अनुबंध करता है कि वह एक निश्चित तय समय के अन्दर पुस्तक का प्रकाशन संतोषपूर्वक कर देगा। लेखक अनुबन्ध में कृति की मौलिकता, बिक्री की रायल्टी आदि को प्रमाणित करता है।

मार्केटिंग व वितरण में बिक्री प्रोत्साहन, विज्ञापन, प्रकाशन व बिक्री आदि सम्मिलित है जिसे एक एकीकृत प्रक्रिया समझी जाती है। कानूनी मामले लगातार ई–बुक मार्केट को दुविधा में डालते है। प्रकाशक इलेक्ट्रोनिक स्वरूप में अपने प्रकाशनों के वितरण का अवरोध करते हैं क्योंकि ग्रन्थ के लेखक की आज्ञा के बिना उसके ग्रन्थ को प्रकाशित करके अन्य व्यक्ति लाभ बहुत उठाते हैं।

ई–बुक के उपभोक्ताओं तथा साथ ही साथ प्रकाशकों को कानूनी मामले चिन्ता में डालते हैं। उपभोक्ता यह महसूस करते है कि ई–बुक्स के उपयोग हेतु स्पष्टता होनी चाहिए जैसे कि प्रकाशित पुस्तकों के उपयोग में होती है। एक प्रकाशित पुस्तक का लेखक किसी भी व्यक्ति को पुस्तक स्वतन्त्र होकर दे सकता है, उधार दे सकता है और किसी भी समय बेच सकता है। बहुत से ई–बुक लाइसेन्स ऐसी गतिविधियों से वंचित रहते हैं।

ई–बुक का झुकाव व मार्ग निदेर्शिका बनने की प्रवृति :–

इसके अतिरिक्त यह ई–बुक पुस्तकों को प्रकाशित करने में आने वाले संकट को पर्याप्त रूप से कम करता है। ई–बुक्स, प्रकाशकों, विक्रेताओं और पुस्तकालयाध्यक्षों के मध्य पिछले कुछ वर्षो से सर्वप्रिय हो रही है। यह बहुसंख्या में ई–बुक्स के प्रकाशन के सूत्रपात से सिद्ध हो रहा है।

पुस्तकालयों को ई–बुक्स उद्योग के मानदण्डों, बौद्धिक सम्पदा व व्यक्तिगत गुप्तता पर हो रहे विकास को मार्ग निर्देशन देना चाहिए जिससे कि पुस्तकालयों के सिद्धान्तों व प्रक्रियाओं को सीमाबद्ध अथवा आपत्ति में नहीं डाला जा सके। पुस्तकालयों को ई–बुक के लिए आवश्यक सामग्री व सेवाओं की कीमतों पर भी निगाहें रखनी चाहिए। यद्यपि कुछ समय के बाद ई–बुक्स की कीमतें घटती हैं, ई–बुक्स और अधिक लोकप्रिय व प्राप्त करने योग्य हो जाऐगी। अधिक ध्यान देने के लिए निम्न बाते सम्मिलित की जा सकती है:–

1. सॉफ्टवेयर बुक रीडर्स व ई–बुक को प्रयोग में लाने हेतु सम्बन्धित सामग्री का मानदण्ड व अनुरूपता बनाए रखना;
2. मालिकाना हक वास्ते ई–बुक कन्टेंट की लाईसेसिंग पर ध्यान रखना;
3. कॉपीराईट नियन्त्रण व पुस्तकालय के संरक्षको को ई–बुक्स ऋण पर देने की योग्यता/क्षमता रखना;
4. प्रकाशकों व लेखकों के मध्य सम्बन्धों को बनाए रखना;
5. पुस्तकों के वितरण के लिए प्रयत्न करना; तथा
6. ई–बुक तकनीकी के साथ समाचार पत्रों, मैगजीन व

अन्य पठन सामग्री को एक ही स्थान पर जोड़ने का प्रयास करना आदि।

प्रकाशन की कीमत, गोदाम की आवश्यकता व कागज पर प्रकाशित पुस्तकों का भौतिक रूप से वितरण हटने से प्रकाशक ई–बुक द्वारा बिक्री पर हुए लाभ से आश्चर्यजनक सुधार का अनुभव करेंगे।

भविष्य में ई–बुक्स के लक्ष्यः– पुस्तकालय के उपभोक्ताओं की आंकाक्षाए बदल रही हैं।

हमें ई–बुक्स से सम्मिलित कड़ियों को शब्दकोशों, थेसारी, सम्बन्धित छायाओं, चित्रों, इलेक्ट्रोनिक पाठ्य व आडियो वीडियो सामग्री से जोड़ना चाहिए। अब समय आ गया है कि ग्रन्थसूचियों के रिकार्ड को प्रोत्साहित किया जाए। पुस्तकालयाध्यक्ष को ग्रन्थ सूचियों में से पुस्तकों की विषय सूचियों व पुस्तक की सूचियों को उपयोग में लाऐं क्योकि वे सूचियाँ ई–बुक फारमेट में डिजिटल स्वरूप में बदल दी गई है। हमें पुस्तक समीक्षाओं, इलेक्ट्रोनिक संसाधनो को जो पुस्तकों में सदर्भ के लिए रखी है व पुस्तकों के संक्षिप्त सार के साथ सम्बन्ध बनाऐ रखने चाहिए। ई–बुक्स की पूर्ण पठन सामग्री को खोजने की क्षमता को हमारे पुस्तकालय के ओपेक (OPAK) में सम्मिलित करके बढ़ावा देना चाहिए जिससे पाठ्य पुस्तकालय के अन्दर उपलब्ध इलेक्ट्रोनिक संग्रह से वांछित सूचनाओं तथा इसके ही साथ वेब पर उपलब्ध इलेक्ट्रोनिक पठन सामग्री को खोजने में सक्षम हो। पुस्तकालय व्यक्तियों को तकनीकी व इन्टरनेट के उपयोग को अधिक सुविधाजनक तरीके से प्रदान करके उनकी सूचना की आवश्यकता को संतुष्ट कर सकते है।

इलेक्ट्रोनिक पुस्तक का विकास अभी भी शैशव काल से गुजर रहा है। अभी भी इलेक्ट्रोनिक पुस्तक तकनीकी पुस्तकालयों, पुस्तक प्रकाशन, कॉपीराईट ने हमारे इस संसार में संचार के भविष्य पर प्रभाव डालना प्रारम्भ ही किया है। जहां तक ई–बुक का सम्बन्ध है भारत आज भी संसार के साथ तालमेल रख रहा है।

होंगे कामयाब

होंगे कामयाब
होंगे कामयाब
हम होंगे कामयाब एक दिन
मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास
हम होंगे कामयाब एक दिन

हम चलेंगे साथ–साथ
डाल हाथों में हाथ
हम चलेंगे साथ–साथ एक दिन
मन में है विश्वास पूरा है विश्वास
हम चलेंगे साथ–साथ एक दिन

होगी शांति चारों ओर
होगी शांति चारों ओर
होगी शांति चारों ओर एक दिन
मन में है विश्वास पूरा है विश्वास
होगी शांति चारों ओर एक दिन

– गिरिजा कुमार माथुर

वन अनुसन्धान संस्थान द्वारा नव-विकसित तार तकनीक

डॉ. लोकोपूनी एवं श्री एस. आर. बालोच
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान संस्थान के अकाष्ठ वन उपज प्रभाग द्वारा पौधों को Vegetative propagation द्वारा नव विकसित तार तकनीक को इजाद किया गया है।

इस तकनीक में बाकी सभी Vegetative propagation तकनीकों से सरल, सुलभ व कम समय में पौधा बनाया जा सकता है। विषेशकर उन पौधों के लिए जिनके बीजों से अंकुरण नहीं होता तथा बहुत या कम पाये जाते हैं। इस तकनीक के द्वारा जड़ों को लम्बा और अपेक्षाकृत बड़ा पौधा बनाया जा सकता है।

सहायक सामग्री :–

प्लास्टिक से आवृत कार्यालय पेपर क्लिप, पॉलीथीन के टुकड़े, मॉस, प्लायर, रूटिंग हारमोन।

उपकरण

शुरूआती महीना:–

अप्रैल माह से

प्रक्रिया:–

1. एक से दो और अधिक साल तक का स्वस्थ पौधा
2. टहनी को रूटिंग हारमोन से उपचार करने के पश्चात भीगी हुई मॉस लगाकर प्लास्टिक से लपेट कर उस पर पेपर क्लिप को प्लायर से कसकर बाँध दें ताकि नमी जड़ों को उगाने में सहायक हो।
3. एक से दो महीने के भीतर जड़े निकल आयेगी। जिन शाखाओं में जड़ें बनी है उन शाखाओं को 5 से.मी. नीचे से काट दें।
4. उलझी जड़ों को पहले ही काट दें तथा सीधी जड़ों वाली शाखाओं को पॉलिथीन बैग में सावधानीपूवर्क लगा दें।

रोडोडेंड्रान अरबोरियम (बुरांस)

रुद्राक्ष पर जड़न

रोडोडेंड्रान शाखा पर कार्य

तरीका और उसका प्रभाव:–

शाखाओं पर डाला गया दबाव, पत्तियों द्वारा बनाया गया भोजन, शाखाओं को नीचे जाने से रोक देता है और कुछ समय पश्चात रूट हार्मोन मॉस की नमी से शाखाएँ जड़ों को पैदा करती हैं।

विलगन करने की स्थिति का प्रदर्शन

महत्वपूर्ण बातें :–

जड़ें गलत दिशा की ओर न बढ़ें इसलिए लटकी हुई

शाखाओं को ठीक करते रहना चाहिए। औषधीय पौधों की छाल मुलायम होती है अतः इन पौधों में शाखाओं से जड़ें जल्दी बनती है।

इस तकनीक के लाभः–

यह साधारण व्यक्ति का तरीका है। यह तकनीक आसान है। समय की बचत होती है और बहुत कम सामान की जरूरत पड़ती है। इस तकनीक से बड़े पौधे को उगाया जा सकता है और इसे मौसम के अनुसार लगाया जा सकता है। इस तकनीक से पौधे की लम्बाई 6 फीट या इससे अधिक हो सकती है। जंगल में बडे पौधों से 3 साल में पौधा बना सकते हैं। इस तकनीक से हम विशेष औषधीय पौधों में लाभ पा सकते हैं। जो बीजों द्वारा संभव नहीं है। यह तकनीक प्रौद्योगिकी के लिए अधिक उपलब्ध है। यह पद्धति अधिक उपयोगी है। इसमें फूल जल्दी आते हैं।

दालचीनी

स्फैगनम मॉस पर जड़ों का विकास

छिप–छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ बहाने वालों
कुछ सपनों के मर जाने से, जीवन नहीं मरा करता है।

सपना क्या है, नयन सेज पर
सोया हुआ आँख का पानी
और टूटना है उसका ज्यों
जागे कच्ची नींद जवानी

गीली उमर बनाने वालों, डूबे बिना नहाने वालों
कुछ पानी के बह जाने से, सावन नहीं मरा करता है।

माला बिखर गयी तो क्या है
खुद ही हल हो गयी समस्या
आँसू गर नीलाम हुए तो
समझो पूरी हुई तपस्या

रूठे दिवस मनाने वालों, फटी कमीज़ सिलाने वालों
कुछ दीपों के बुझ जाने से , आँगन नहीं मरा करता है।

–गोपालदास "नीरज"

क्यों आवश्यक है मृदा परीक्षण

डॉ. ममता पुरोहित
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

अनाज, फल, साग–सब्जी आदि का उत्पादन व वृक्षों की उत्तम वृद्धि मूल रुप से भूमि में उपस्थित पोषक तत्वों, नमी एवं वायु के आवागमन पर निर्भर होती है। निरन्तर फसल लेते रहने से भूमि की उर्वरा शक्ति कम होती जाती है जिससे उत्पादन व गुणवत्ता में कमी आने के साथ–साथ पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी घट जाती है। मृदा में मौजूद पोषक तत्वों की जानकारी मिट्टी का रासायनिक परीक्षण करके ही पता लगाई जा सकती है।

मृदा परीक्षणः मिट्टी जांच के लिए खेत विशेष का नमूना लिया जाता है व प्रयोगशाला में परीक्षण के पश्चात गोबर खाद, कम्पोस्ट व किस रासायनिक उर्वरक की कितनी मात्रा की आवश्यकता है यह निश्चित किया जाता है।

मृदा परीक्षण से लाभः मृदा परीक्षण से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातों की जानकारी प्राप्त होती है।

1. मृदा की उर्वरा शक्ति का ज्ञान हो जाता है।
2. पोषक तत्वों की कमी या उपलब्धता मालूम हो जाने से खाद व उर्वरकों के प्रयोग में होने वाले अपव्यय से बचा जा सकता है।
3. आवश्यक खाद व उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाये रखा जा सकता है।
4. मृदा में पोषक तत्वों की कमी से होने वाली बीमारियों का पता चल जाता है।
5. उपलब्ध पोषक तत्वों के अनुसार कृषि–फसलों, साग–सब्जी व फलों का अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

मृदा परीक्षण कब करें : मृदा परीक्षण बीज बुआई या पौध रोपण के पहले खेत की जुताई करने से पहले ही करा लेना चाहिए। जिससे आने वाली फसल को आवश्यक खाद व उर्वरक का पूरा लाभ मिल सके।

मृदा परीक्षण हेतु नमूना लेने के लिये आवश्यक सामग्री : मृदा परीक्षण हेतु मृदा का नमूना लेने के लिये फावड़ा, खुरपी, तसला; तगाड़ीद्ध पॉलीथीन या कपड़े की थैली, सूचना पत्रक इत्यादि की आवश्यकता होती है।

मृदा परीक्षण के लिये नमूना कैसे लें : मिट्टी का नमूना लेने के लिए खेत या रोपण स्थल के चुने हुए 8–10 स्थानों की ऊपरी सतह अच्छी तरह साफ कर लेते हैं। अब खुरपी की मदद से प्रत्येक चुने हुए स्थान पर 6 इंच से 9 इंच गहरा अंग्रेजी के अक्षर वी के आकार का गड्ढा खोदते हैं। अब गड्ढे की दोनों भुजाओं की दीवार से ऊपर से नीचे पूरी गहराई तक एक इंच मोटी परत निकालते हैं। सभी चुने हुए स्थानों से खोदी गई मिट्टी को अच्छी तरह मिलाकर खड़ी व आड़ी रेखा से बराबर–बराबर चार भागों में बांटते हैं। आमने–सामने के दो भागों (ऊपर–नीचे के भाग नहीं) को लेकर बचे हुए दो भागों को हटा देते हैं। यह प्रक्रिया तब तक दोहराते हैं जब तक कि मिट्टी आधा कि.ग्रा. न रह जाये क्योंकि मृदा परीक्षण के लिए आधा किलो मिट्टी की आवश्यकता होती है तथा इस प्रक्रिया में मृदा नमूना एक सार हो जाता है। नमूने की मिट्टी को छाया में अच्छी तरह सुखाकर कपड़े या पोलीथीन की थैली में भरकर एक सूचना पत्रक लगाकर रख देते हैं जो नमूने की पहचान के लिए आवश्यक है। सूचना पत्रक में भूमि धारक का नाम, ग्राम, विकास खण्ड, डाक का पता, नमूना लेने की तारीख, खेत की पहचान, पूर्व में बोई गई फसल, आगे ली जाने वाली फसल, बोनी की संभावित तारीख, फसल सिंचित है या असिंचित, सिंचाई के साधन– नहर, नदी, कुंआ, तालाब, कोई अन्य सूचना आदि का विवरण होता है। अब यह नमूना परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेज सकते हैं।

मृदा परीक्षण के लिये नमूना लेते समय आवश्यक सावधानियाँ : खेत से मिट्टी के नमूने लेते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए

1. मिट्टी के नमूने खाद या उर्वरक डालने से पहले लें।
2. खेत के किनारे, खेत में या पास में बने मकान, सड़क अथवा असामान्य स्थानों से नमूना न लें।
3. अनाज व दलहन हेतु हर दो वर्ष के अंतराल पर व साग–सब्जी तथा फलों के लिये प्रति वर्ष मृदा परीक्षण करवायें।
4. जहाँ खाद व गोबर पड़ा हो वहाँ से नमूना न लें।
5. प्रत्येक खेत का नमूना अलग–अलग लेना चाहिए।
6. खेत में लगे वृक्षों के नीचे से व वृक्षों की छाया वाले स्थानों से नमूना नहीं लेना चाहिए।
7. नमूना कभी भी खाद व उर्वरकों की बोरी में न रखें।
8. अनाज की फसल में रोग होने पर वहाँ की मृदा का नमूना अलग थैली में रखें।
9. बीज बुआई के एक माह पूर्व नमूना परीक्षण हेतु भेजें।
10. नमूना से सम्बन्धित सूचना पत्रक प्रत्येक नमूने के साथ अवश्य भेजें।
11. सूचना पत्रक की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें। भूमि धारक अपने खेत की मिट्टी का नमूना स्वयं या अपने जिले के कृषि विभाग के अधिकारी या विकास खण्ड के कृषि अधिकारी द्वारा मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में भेज सकते हैं तथा परीक्षण उपरान्त परीक्षक द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार खाद व उर्वरकों का प्रयोग कर कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

मृदा परीक्षण केवल कृषि तथा साग–सब्जियों के उत्पादन में उपयोग में आने वाली कृषि भूमि के लिए ही नहीं बल्कि फल, फूल तथा वृक्षारोपण से सम्बन्धित भूमि के लिए भी आवश्यक एवं लाभकारी है। मृदा परीक्षण करके यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि कौनसा भूखण्ड किन फूलों, फलों के बगीचे लगाने, साग–सब्जियाँ या वृक्ष लगाने के लिये उपयुक्त एवं लाभकारी होगा। परती भूमि या उपयोग में ना आने वाले भूखण्डों अथवा वृक्षारोपण के लिए वर्तमान में अनुपयोगी भूखण्डों का भी मृदा परीक्षण कर यह पता लगाया जा सकता है कि उस भूखण्ड विशेष में कौन से आवश्यक तत्वों की कमी है। उपयुक्त उर्वरक, कम्पोस्ट या सूक्ष्मपोषक तत्व (माइक्रोन्यूट्रीएन्टस) आदि को उस भूखण्ड की मिट्टी में मिलाकर उक्त भूखण्ड को फूलों, फलों, साग–सब्जियों या वृक्षारोपण के लिये उपयुक्त बनाया जा सकता है। इस प्रकार मृदा परीक्षण द्वारा मृदा सम्बन्धी दोषों या कमियों को दूर कर वृक्षारोपण द्वारा वन भूमि का विस्तार कर पर्यावरण कल्याण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।

पेड़ अब भी आदिवासी हैं

हो गई सदियां मगर फिर भी
है अजूबा, पेड़ अब भी आदिवासी हैं!

पत्तियां अब तक पहनते हैं,
मूड हो, नंगे ही रहते हैं,

पेड़ खालिस पेड़ हैं अब भी,
पेड़ मुल्ला है, न पंडित है, न पासी है!
पेड़ अब भी आदिवासी हैं....

जंगलों में या नगर में हों,
दूर घर से या कि घर में हों,

हैं जड़ें हर वक्त धरती में,
इस सदी के होश आने की दवा–सी हैं!
पेड़ अब भी आदिवासी हैं....

साफ दिल यूं, सोचते हैं जो,
फूल–पत्ते बोलते हैं वो,

छोड़ते है ओढ़ कर ऋतुएं,
आत्मा के अमर रहने की कथा–सी हैं!
पेड़ अब भी आदिवासी हैं....

घुट रहा है जिंदगी का दम,
पेड़ इतने हो गए हैं कम,

खो चुकी अपना हरापन जो,
उन अभागी जर्द नस्लों की उदासी हैं!
पेड़ अब भी आदिवासी हैं....

सड़क दुर्घटना में वन्य जीवों की मौत- वन्य जीवों की जैवविविधता के लिए एक बड़ा खतरा

श्री संजय पौनीकर एवं श्री नितिन कुलकर्णी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

भारत को दुनिया में बारहवें जैवविविधता वाले देश के रूप में पहचाना जाता है। यहाँ पर वन्य जीवों की बहुत सी प्रजातियों की विविधता पायी जाती है, कुछ जीवों की ऐसी प्रजातियाँ है, जो दुनिया में कहीं पर भी नहीं पायी जाती हैं। हाल के वर्षो में वन्य जीवों की बहुत सी प्रजातियाँ लुप्त होने या उनकी संख्या कम होने के कगार पर है या संकटग्रस्त है। वन्य जीवों की बहुत सी प्रजातियों की संख्या कम होने के कई प्रमुख कारण है, जैसे उनके आवासों का नष्ट होना, खेती के लिए जंगल काटना, वन्य जीवों का अवैध व्यापार, शिकार होना, विभिन्न प्रकार से मानवीय दबाब और सड़क एंव रेल दुर्घटना में मौत होना भी इनकी संख्या कम होने का एक प्रमुख कारण है।

सड़क दुर्घटना में सियार की मौत

भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण ने देश के कई राज्यों और राष्ट्रीय राजमार्गों की सड़कों का तेजी से विकास एंव विस्तार किया है। ये विस्तार वाहनों को तीव्र गति से पहुँचने के लिए और यातायात सुगम करने के लिए एक दूसरे से जोड़े जा रहे हैं। भारत में पिछले 20–25 वर्षो में वाहनों की संख्या में बड़ी तेजी से बढ़ोतरी हुई है। इसकी वजह से राजमार्गों पर वाहनों के यातायात का काफी दबाव पड़ा है।

देश के कई राज्य और राष्ट्रीय राज मार्ग राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों, संरक्षित क्षेत्रों, टाइगर और बायोस्फियर रिजर्व, संरक्षित और असंरक्षित वनों से गुजरते है। जब भी हम इन मार्गों से गुजरते हैं, प्रायः सड़क पर कई प्रजातियों के वन्य

सड़क दुर्घटना में सरीसृप जीवों की मौत

प्राणी जैसे उभयचर, सरीसृप, पक्षी और स्तनपायी जीव मरे पड़े मिलते हैं। ये अनुमान लगाना कठिन नहीं होता कि, ये वन्य प्राणी यहां से गुजरने वाले अनियंत्रित भारी वाहनों के नीचे आकर मरे पड़े हैं। ये राष्ट्रीय राज मार्ग वन्य प्राणियों के लिए काल साबित हो रहे हैं। सड़क दुर्घटनाओं की वजह से वन्य प्राणियों की संख्या पर काफी बुरा असर पड़ रहा है और इसी वजह से हमारी वन्य जीवों की जैवविविधता को एक बहुत बड़ा खतरा पैदा हो रहा है। एक गैरसरकारी संगठन, भारतीय वन्यजीव संरक्षण संस्था (वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन सोसायटी ऑफ इंडिया) ने देश के विभिन्न वन क्षेत्र में 19 तेंदुये और अन्य वन्यजीवों की मौत सड़क दुर्घटना होने के कारण पर अध्ययन किया है। हाल ही में पश्चिम बंगाल राज्य के जलपाईगुड़ी जिले में 7 हाथियों की रेल की पटरियाँ पार करते हुए दुर्घटना में मरने की खबर कई प्रमुख राष्ट्रीय अखबारों तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सुर्खियों में थी। मध्यप्रदेश के बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान में बच्चे वाली एक बाघिन के सड़क पार करते हुये वाहन से टकराने से मौत की खबर कई प्रमुख राष्ट्रीय अखबारों की सुर्खियों में थी ।

जब भी हम देश के राज्य और राष्ट्रीय राज मार्ग जो वनक्षेत्रों, राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों, संरक्षित क्षेत्रों, टाइगर और बायोस्फियर रिजर्व, संरक्षित और असंरक्षित वनों से सड़क मार्ग से गुजरते है सड़क मार्ग से जाते हुये ये निरीक्षण किया गया कि बहुत से वन्य जीवों जैसे तेंदुआ, सियार, भारतीय लोमड़ी, जंगली बिल्ली, नेवला, जंगली सुअर, भारतीय पंगोलिन, हिरण की विभिन्न प्रजातियाँ जैसे चीतल, सांभर, चिंकारा, नीलगाय,बंदरों की विभिन्न प्रजातियाँ (हनुमान बंदर और लंगूर), और अन्य छोटे स्तनपायी जीव जैसे खरगोश, गिलहरियाँ सड़क पर भारी वाहनों के नीचे आकर मरे पड़े मिलते हैं। मैना, कबूतर की विभिन्न प्रजातियाँ और अन्य विभिन्न प्रजातियों के पक्षी भी सड़क पर मरे पाये जाते है। अन्य छोटे जीव जैसे उभयचर वर्ग के (विभिन्न प्रजातियों के मेंढक एवं टोड), सरीसृप वर्ग के (सांप, गोह, छिपकली और सिंक की विभिन्न प्रजातियाँ) भी सड़क पर भारी वाहनों के नीचे आकर मरे पड़े मिलते है। भारत में सड़क दुर्घटना की वजह से वन्य प्राणियों की मौत पर विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है या नहीं किया जाता है। कुछ वैज्ञानिकों ने इस विषय पर सीमित अध्ययन भारतीय राष्ट्रीय उद्यानों जैसे उत्तरप्रदेश के कार्बेट, आसाम के काजिरंगा, तामिलनाडु के मदुमलाई अभयारण्य, राजस्थान के सरिस्का और कुभंलगढ़ अभयारण्यों में तथा अन्य संरक्षित वन क्षेत्रों मे किया है। भारत जैसे विकासशील देश में वन्य जीवों की सड़क तथा रेल दुर्घटना में होने वाली मौत पर विशेष ध्यान या अध्ययन नहीं किया जाता है और ना ही कोई बचाव के उपाय किये जाते हैं। पर दुनिया के विकसित देशों जैसे अमेरिका, आस्ट्रेलिया और यूरोप के कई देशों मे वन्य जीवों की सड़क तथा रेल दुर्घटना में होने वाली मौत पर विशेष ध्यान और गहन अध्ययन किया जाता है और वन्य जीवों को सड़क तथा रेल दुर्घटना में होने वाली मौत से बचाने के लिए प्रभावी उपाय किये जाते हैं।

भारत में वन्य जीवों की भारी वाहनों की वजह से सड़क दुर्घटना में होने वाली मौतों पर नितांत ध्यान देने की जरूरत है और बचाव के प्रभावी उपायों पर अंतर्राष्ट्रीय एंव राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा करने की आवश्यकता है। इससे विभिन्न बचाव के प्रभावी उपाय निकल सकते हैं। जैसे वनों और अभयारण्यों से गुजरने वाली सड़कों पर स्पीड ब्रेकर लगाना, वाहनों को नियंत्रित गति से चलाना, रात को वाहनों को जंगलों से गुजरना प्रतिबंधित करना तथा जंगलों से गुजरने वाले राज्य और राष्ट्रीय राज मार्ग को वनों से बाहर की तरफ मोड़ना तथा ऊँचे पुलों का निर्माण करना जिसकी वजह से वन्यजीवों का आने जाने का मार्ग बाधित नहीं होगा। इस तरह हम अपने बहुमूल्य वन्य जीवों की जैवविविधता को सड़क दुर्घटना में होने वाली मौतों से बचा सकते है। जंगल और वन्य जीव अपनी पृथ्वी के सुंदर गहने की तरह हैं, और जंगल और वन्य जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ होना किसी भी देश के लिए गर्व की बात है। जंगल और वन्य जीवों को बचाने और उनका संरक्षण करने के लिए तथा लोगों में जागरूता लाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं (संयुक्त राष्ट्र संघ) ने वर्ष 2010 को अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष घोषित किया था, और वर्ष 2011 को अंतर्राष्ट्रीय वन वर्ष घोषित किया है।

वो जिसके हाथ में छाले हैं पैरों में बिवाई है
उसी के दम से रौनक आपके बंगले में आई है

इधर एक दिन की आमदनी का औसत है चवन्नी का
उधर लाखों में गांधी जी के चेलों की कमाई है

कोई भी सिरफिरा धमका के जब चाहे जिना कर ले
हमारा मुल्क इस माने में बुधुआ की लुगाई है

रोटी कितनी महँगी है ये वो औरत बताएगी
जिसने जिस्म गिरवी रख के ये कीमत चुकाई है

– अदम गोंडवी

झारखण्ड में समुदाय आधारित प्राकृतिक सम्पदा प्रबंधन द्वारा जैव विविधता संरक्षण : चुनौतियाँ एवं प्रयास

श्री संतोष कुमार सिंह, डॉ. संजय सिंह एवं श्री रामेश्वर दास

वन उत्पादकता संस्थान, राँची

भूमिका

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा से प्रेरित होकर हमने सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार माना है। ईशोपनिषद् के अनुसार

ईशा वास्य मिदं सर्व यांत्किन्च जगत्यां जगत्
तेन त्यकतेन भूंजीथा मां गृदा कस्यांस्वित धनम्।

अर्थात यदि हमने इस पृथ्वी की देखभाल ठीक तरह से की तथा इसके पोषक तत्व बढ़ते रहे तो यहाँ जो कुछ भी है वह हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त है परन्तु यदि हमने इसकी उपेक्षा एवं लालच किया तो इसका परिणाम घातक होगा। अतः भारतीय संस्कृति में सहअस्तित्व की भावनाओं पर बल देते हुए पृथ्वी के समस्त संसाधन, जीव–जंतुओ एवं वनस्पतियों के प्रति आदर व्यक्त किया जाता रहा है। आज अधिकांश जीव–जंतु, पवित्र वृक्ष एवं पवित्र वन इसी कारण मानव जीवन हेतु जगह–जगह संरक्षित है और आज भी इनके प्रति ममत्वभाव है। साथ ही जीवन के विविध रूपो से सजी प्रकृति ने इस पृथ्वी पर इतनी अनुकूल परिस्थितियाँ कायम की तदापि मानव समुदाय द्वारा इस नाजुक संतुलन से छेड़–छाड़ कर जैवविविधता के लिए खतरा उत्पन्न किया जा रहा है।

देश में पारिस्थितिक रूप से कई ऐसे संवेदनशील क्षेत्र है जहाँ जैवविविधता अपने चरम स्तर पर है। इन संवेदनशील क्षेत्रों में एक क्षेत्र झारखण्ड भी हैं – यानि जंगल–झाड़ से युक्त प्रदेश जो अपनी भू–संरचना, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, जीव–जंतु, खनिज सम्पदा, जनजातीय जनसंख्या एवं पारिस्थितिक दृष्टिकोण से देश में विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ की प्राकृतिक सम्पदा, जैविक एवं सांस्कृतिक विविधता अपने चरम स्तर पर है जो उच्च स्तर पर स्थानिक स्थितियों पर विशेष प्रकाश डालते है।

विगत कुछ दशकों से बढ़ती जनसंख्या, आवश्यकता, वैश्विक प्रभाव तथा प्रादर्श एवं निरंतर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर आधारित विकास कार्य के कारण हम जैवविविधता के मूल्यों का समग्र रूप से आंकलन करने में सर्वथा विफल रहे हैं। मूलतः प्राकृतिक एवं जैविक सम्पदाओं के प्रबंधन एवं संरक्षण में मानव मूल्यों का जो योगदान रहा है उसमें कमी आती जा रही है।

घटता वन क्षेत्र, वनों का अतिदोहन, अतिचराई एवं इससे जनित भू–क्षरण की वजह से भोजन एवं चारें की समस्या, पारिस्थतिक असंतुलन, जलवायु परिवर्तन, दिनों–दिन गहराता जल संकट इत्यादि तमाम ऐसे उदाहरण हैं जो जैवविविधता के अतिदोहन के कारण परिलक्षित हो रहे हैं। इसके साथ ही खनन एवं औद्योगिक इकाईयों से निकला गंदा एवं विषैला पानी जल स्रोतों को विषैला बना रहा है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव जलीय प्राणी, पेड़–पौधो एवं भूमि पर पड़ रहा है। इससे भूमि की उर्वरता समाप्त होती जा रही है एवं ग्रामीण समुदायों के मध्य आजीविका की समस्या बढ़ती जा रही है। फलतः अधिकांश ग्रामीण समुदाय अतिअल्प मूल्य वाले गैर कृषि एवं गैर पारितोषिक वानिकी क्रिया–कलाप पर निर्भर है जो जैव विविधता के ह्रास का कारण है।

एक ओर जैवविविधता का क्रमिक रूप में द्रुत गति से हो रहा ह्रास तो वही दूसरी ओर समुदायों का प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों के प्रबंधन एवं संरक्षण से विलग होना सबसे प्रमुख चिंता का विषय है।

एक नयी पहल

यह एक सुखद तथ्य है कि झारखण्ड राज्य में विकास के साथ–साथ प्राकृतिक एवं जैविक सम्पदाओं के प्रबंधन एवं संरक्षण की अनिवार्यता नीति निर्धारकों के चिंतन के केन्द्र में रही है परन्तु समुदायों की साझेदारी को नजरअंदाज कर सरकारी तंत्र की स्वंय की भागीदारी ही सुनिश्चित हो रही है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक एवं जैविक सम्पदाओं के प्रबंधन एवं

संरक्षण के प्रति समुदाय उदासीनता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इसी के अवलोकनार्थ विगत ढ़ाई वर्ष पूर्व वन उत्पादकता संस्थान राँची (भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्) की अभिनव पहल पर यू0एन0डी0पी0 एवं पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से 'समुदाय आधरित प्राकृतिक सम्पदा प्रबंधन द्वारा जैवविविधता संरक्षण' कार्यक्रम का सूत्रपात किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मुख्य रूप से जैवविविधता संरक्षण के लिए समुदायों को समाहित कर उनकी आजीविका को बढ़ावा देते हुए झारखण्ड राज्य को राष्ट्र एवं राज्य स्तर पर एक आर्दश मॉडल के रूप में विकसित करने का प्रयास है जिसका मुख्य उद्येश्य निम्न प्रकार से है–

1. झारखण्ड राज्य के परिपेक्ष्य में राष्ट्र एवं राज्य स्तर की नीति एवं कार्यक्रम की प्रक्रियाओं को सुगम बनाना जो जैवविविधता संरक्षण एवं ग्रामीणों की स्वपोषी आजीविका को परस्पर जोड़ने के लिए अधिक से अधिक उत्तरदायी है।
2. झारखण्ड राज्य का जैवविविधता की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में सामुदायिक साझेदारी उपगम्य द्वारा स्वपोषी जैवविविधता आधारित आजीविका के लिए स्थानिक प्रबंध हेतु प्राधिकृत संस्थाओं एवं समुदायों को पूर्ण रूप से बढ़ावा देना।

क्रियान्वयन क्षेत्र का चयन

क्रियान्वयन क्षेत्र का चयन राज्य के भौतिक दृष्टिकोण एवं कृषि जलवायु क्षेत्र के संदर्भ में जैवविविधता की दृष्टि से संवेदनशील तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण पारिस्थितिक, सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर किया गया। चयनित क्षेत्र का विवरण निम्न प्रकार से है–

तालिका संख्या–1

क्षेत्र	चयनित ग्राम	चुनौतियाँ	प्रयास
खुँटी क्षेत्र	ग्राम – बारी, लुमलुमा, गुटुहातु, जिउड़ी, जानुमपिरी, कोतना, रुताडीह, किताहातु, अनीरडीह एवं कुदापुर्ति प्रखंड–मुरहु, जिला–खुँटी	घटता वन क्षेत्र, वनों पर अत्यधिक निर्भरता, लघुवनोपज का अत्याधिक दोहन एवं भूमि एवं जल से संबधित समस्या।	समुदायों के पारम्परिक ज्ञान एवं रीतियों को मान्यता देते हुए समुदाय आधारित प्राकृतिक संपदा के प्रबंधन को प्रोत्साहित कर लघुवनोपज का स्वपोषी संग्रह एवं जैवविविधता के संदर्भ में गैर वन आधारित वैकल्पिक आजीविका के स्रोत को बढ़ावा देना।

खुँटी क्षेत्र : अतीत एवं वर्तमान परिदृश्य में

झारखण्ड राज्य का खुँटी क्षेत्र भौतिक एवं कृषि जलवायु क्षेत्र दोनों ही दृष्टिकोण से राँची पठार के अन्तर्गत समाहित है। पहाड़ों एवं वनों से आच्छादित यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही एक वृहत समुदाय के रूप में मुण्डा जनजति का निवास स्थान रहा है। कार्यक्रम के अन्तर्गत मुरहु प्रखण्ड के चयनित ग्रामो में जनसंख्या की दृष्टि से मूलतः इन जनजातीय समुदाय का ही संकेन्द्रण है। प्रकृति की गोद में रचे–बसे इनकी संस्कृति में प्रकृति की सरलता की स्पष्ट झलक प्रतीत होती है जो एक दिव्य विरासत के रूप में इन्हें अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है। यदि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो इन्हें निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है:–

समन्वयक दृष्टिकोण में इसके पीछे पूर्वजों की जो सोच थी वह प्रकृति के प्रति प्यार, त्याग एवं निष्ठा की भावना पैदा कर सामजिक नियमों एवं परम्परागत विश्वासों द्वारा सुगमता पूर्वक जैवविविधता एवं प्राकृतिक रहवासों को सुरक्षित करना था। यदि परम्परागत ज्ञान को महत्त्व देते हुए इसे पारिस्थितिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है तो प्राकृतिक एवं जैविक सम्पदाओं के प्रबंधन के साथ–साथ जैवविविधता एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणाओं की तरफ ध्यान आकृष्ट करता है। अतः यह न केवल एक ऐसा सांस्कृतिक पहलू है जो लोगों को सामूहिक एकता की ओर आकर्षित करता है, अपितु स्थानीय निवासियों के जीविकोपार्जन से संबंधित पर्यावरणीय नीतियों का निर्धारण भी करता है।

विगत कुछ दशकों में वाह्या लोगों, जंगल के ठेकेदारों, व्यापारी वर्ग, महाजन इत्यादि के साथ सम्पर्क से इनकी जीवन शैली अप्रत्याशित रूप से प्रभावित हुई एवं इनके पारम्परिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का व्यापक तौर पर ह्रास हुआ। इसी दौरान क्रमिक रूप से वृहत तौर पर काष्ठीय वनों की कटाई, लघुवनोपजों का अतिदोहन के साथ–साथ पहाड़ों से पत्थर उत्खनन के फलस्वरूप वनाच्छादित क्षेत्रों का वृहत् तौर पर नाश हुआ। इससे जनित पारिस्थितिक असंतुलन तथा जलवायु परिवर्तन से प्रभावित कृषि पद्धति एवं लघुवनोत्पादों की न्यूनता सें इन ग्रामीण समुदायों के आर्थिक जीवन एवं आजीविका पर व्यापक असर पडा जो जैवविविधता के अतिदोहन के कारण परिलक्षित हो रहे हैं। अतः एक ओर दयनीय आर्थिक स्थिति एवं गरीबी की वजह से प्राकृतिक एवं जैविक सम्पदाओ के अतिदोहन के फलस्वरूप इन संसाधनों का द्रुतगति से ह्रास होने का कारण है तो वहीं दूसरी ओर अनाधिकारिक वर्गों द्वारा इन संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की वजह से संसाधनों की मात्रा एवं ग्रामीण समुदायों के मध्य दूरियाँ बढ़ीं।

यद्यपि वर्तमान समय में भी इन ग्रामीण समुदायों द्वारा सामुदायिक स्तर पर इन संपदाओ के प्रबंधन एवं संरक्षण हेतु प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु पारम्परिक आजीविका के स्रोत– दुष्कर कृषि दशा एवं लघुवनोपजों की न्यूनता के फलस्वरूप जीविकोपार्जन हेतु रोजगार की तलाश में वृहत तौर पर ग्रामीण समुदाय पलायन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप सामाजिक – सामुदायिक बिखराव की वजह से यह प्रयास कारगर साबित नहीं हो पा रहे हैं जो जैवविविधता संरक्षण में बाधा के रुप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

कार्यक्रम के प्रयास के सोपान

प्रत्यक्ष तौर पर ग्रामीण समुदायों के परम्परागत रीतियों एवं ज्ञान को मान्यता प्रदान कर कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने हेतु कार्य की सम्पूर्ण प्रकिया में इनकी सहभागीदारिता एवं स्वामित्व को प्राथमिक तौर पर सुनिश्चित करते हुए वन उत्पादकता संस्थान एवं गैर सरकारी संगठन स्पार, राँची के परस्पर सहयोग से वर्ष 2008 में कार्यक्रम का सूत्रपात किया गया ।

1. परम्पराओं को प्रचलित कर ग्रामीण समुदायों का विश्वास हासिल करना

कार्यक्रम के आरम्भिक चरण में ग्रामीण समुदायों के बीच कार्यक्रम के विषय – वस्तु को प्रसारित करने तथा इनके साथ सम्बंध स्थापित कर विश्वास हासिल करने के लिए प्रवेश बिन्दु क्रिया–कलाप सुनियोजित किये गये। इस कार्य के अन्तर्गत ऐसे कार्य को प्राथमिकता दी गयी जिससे आधिकारिक तौर पर अधिंकांश ग्रामीण समुदाय लाभान्वित हो सके। इसी परिपेक्ष्य में ग्रामीणों के साथ सम्पर्क कायम एवं वार्तालाप के दौरान जल संकट के समाधान हेतु पहल करने का अनुरोध किया गया। इसके अवलोकन में कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण समुदायों की इच्छा अनुसार दोभा एवं दारी के साथ–साथ इसके पास चबूतरा का भी निर्माण किया गया। स्थानीय ग्रामीणों द्वारा घरेलू कार्य दोभा एंवं दारी के समीप हेतु किया जाता है। प्राकृतिक भू–जल रिसाव को संचित एवं प्रबंधित करने के वास्ते निर्मित दोभा एवं दारी एक साधारण संरचना है। इन संरचनाओं के निर्माण में ग्रामीण समुदायों द्वारा स्वयं अपने अनुभव एवं परम्परागत ज्ञान द्वारा कार्य स्थल का चयन कर कार्य का रुपांकन एवं निर्वाहन किया गया।

दोभा एवं दारी के निर्माण के फलस्वरूप इन ग्रामों के ग्रामीणों का कार्यक्रम के प्रति व्यापक तौर पर रुझान बढ़ा। तत्काल ही इसके इर्द–गिर्द की भूमि जिस पर यदा–कदा खेती की जाती थी उस भूमि पर ग्रामीणों द्वारा कार्य– निस्तारित अपशिष्ट जलों का उपयोग सब्जी की खेती में किया जाने लगा। यह लाभ ग्रामीण समुदायों के लिए आर्थिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण रहा एवं इस कार्य से ग्रामीणों का कार्यक्रम के प्रति व्यापक तौर पर झुकाव हुआ।

2. कार्यक्रम के प्रति मार्गदर्शन

क. सामुदायिक सचेतन एवं सर्वेक्षण

कार्यक्रम से सम्बन्धित विषयों एवं उद्देश्यों को प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक ग्रामीण जन तक पहुँचाने एवं जनचेतना तथा जनजागृति पैदा करने हेतु ग्रामसभा के माध्यम से ग्रामीणों एवं शेयरधारकों के साथ–साथ बारम्बार सभा आयोजित की गयी। कार्यक्रम के सुगमता पूर्वक निष्पादन हेतु प्रत्येक ग्राम में ग्राम स्तर पर स्वंय सहायता समूह एवं वन बचाओ समिति की पहचान की गयी। प्राथमिक तथ्य के तौर पर प्रत्येक ग्राम के संदर्भ में ग्रामीणो की सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं प्राकृतिक तथा जैव सम्पदाओं का सर्वेक्षण कर विश्लेषण किया गया। इसी दौरान प्रत्येक ग्रामो के अधीनस्थ उपलब्ध संसाधनों की मात्रा एवं इन पर ग्रामीणों की निर्भरता के अवलोकन में कार्यक्रम की प्राथमिकता के आधार पर क्रियाकलाप के क्रियान्वयन हेतु ग्रामों का विश्लेषण कर पहचान की गई।

ख. सामर्थ्य निर्माण

कार्यक्रम की सम्पूर्ण प्रक्रिया में स्थानीय ग्रामीण समुदायों की सहभागीदारिता सुनिश्चित कर सुगमता पूर्वक क्रियाकलाप के निर्वहन एवं प्रबंधन की नीतियों को विकसित करने हेतु कार्य योजना के अनुसार सामर्थ्य निर्माण एवं प्रशिक्षण कार्य को प्राथमिकता दी गयी।

- **ग्राम स्तर पर सामुदायिक वर्ग निर्माण पर प्रशिक्षण**

प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक घर से एक सदस्य को अनिवार्य तौर पर शामिल कर सामुदायिक वर्ग–शेयरधारक समिति का गठन किया गया एवं औपचारिक तथा वैधानिक स्तर पर ग्राम सभा की उपसमिति के रूप में मान्यता प्रदान करायी गयी। साथ ही प्रत्येक ग्राम में पूर्व से उपलब्ध वन सुरक्षा समितियों को कार्यक्रम के अनुकूल मजबूती प्रदान की गयी। इसी दौरान इस समिति के सदस्यों को कार्यक्रम के सापेक्ष प्रशिक्षण दिया गया। इन समिति के सदस्यों द्वारा आपसी ताल–मेल के साथ एकमत निर्धारण कर ग्रामीणों के बीच प्राथमिक तौर पर संसाधनों की उपलब्धता, महत्वता, उपयोगिता एवं स्थानीय आवश्यकताओं को प्रसारित करते हुए कार्यक्रम के सुगमता पूर्वक क्रियान्वयन में सहायता प्रदान की गयी ।

- **सूक्ष्मनियोजन प्रक्रिया पर प्रशिक्षण**

प्रत्येक ग्राम के सामुदायिक वर्ग–शेयरधारक समिति एवं वन बचाओ समिति के प्रतिनिधियों को सूक्ष्म नियोजन प्रक्रिया पर दो दिवसीय प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण के दौरान प्रायोगिक तौर पर ग्रामों के अधीनस्थ उपलब्ध संसाधनों का मापन एवं मानचित्रण, इनकी पूर्व एवं वर्तमान स्थिति, आजीविका की समस्या एवं स्रोतों का विश्लेषण, संसाधनों के प्रबंधन एवं जैवविविधता संरक्षण के कार्य में आ रही कठिनाईयों एवं इनके समाधान हेतु तकनीकी तत्वों पर बारीकी से प्रशिक्षण दिया गया। क्रियान्वयन संस्था के दिशानिर्देश में प्रशिक्षित सदस्यों के परस्पर सहयोग से प्रत्येक ग्राम में ग्राम स्तर पर ग्रामीणों के साथ केंद्रित समूह परिचर्चा के माध्यम से संसाधनों का मानचित्रण एवं मापन द्वारा विश्लेषण किया गया। कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु ग्रामीण समुदायों द्वारा कार्य स्थल का चयन, कार्य एवं प्रबंधन की नीति, तकनीकी संभावनाएँ, एवं लाभुक समिति का गठन कर सूक्ष्म नियोजन प्रतिवेदन तैयार किया गया। क्रियान्वयन संस्था द्वारा निर्मित कार्य योजना प्रारूप के माध्यम से ग्रामीण समुदाय ने स्वयं अपने अनुभव एवं विचार पर अपनी कार्य योजना सुनिश्चित की।

- **जैवविविधता मापन पर प्रशिक्षण**

प्रत्येक ग्राम की वन बचाओ समिति एवं सामुदायिक वर्ग–शेयधारक समिति के सदस्यों को जैवविविधता मापन पर दो दिवसीय प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण के दौरान कार्यक्रम के अन्तर्गत सामाजिक जैवविविधता पंजिका प्रारूप के अनुसार पारिस्थितिक, कृषि, वन्य जीव–जंतु एवं पेड़–पौधे एवं सांस्कृतिक विविधता के परिप्रेक्ष्य में पूर्व एवं वर्तमान स्थिति का आंकलन, उपयोग एवं प्रबंधन के तरीके एवं इससे संबंधित परम्परागत ज्ञान इत्यादि पर केन्द्रित समूह परिचर्चा कर प्रत्यक्ष रूप से प्रायोगिक प्रदर्शन के माध्यम से सामाजिक जैवविधिता पंजिका निर्माण एवं इसके महत्व पर बारीकी से प्रशिक्षण दिया गया। क्रियान्वयन संस्था के दिशा–निर्देश में प्रशिक्षित सदस्यों एवं ग्रामीण समुदायों के परस्पर सहयोग से

प्रत्येक ग्राम मे ग्राम स्तर पर सामाजिक जैवविविधता पंजिका का निर्माण किया गया।

- **आजीविका क्रिया–कलाप पर प्रशिक्षण**

ग्राम स्तर पर प्रत्येक ग्राम के ग्रामीण समुदायो के सामर्थ्य एवं आर्थिक क्रियाकलापों को बढ़ावा देने हेतु सम्मिलित रूप से महिला एवं पुरूष हेतु स्वयं सहायता समूहों का गठन किया गया।

कार्यक्रम के विभिन्न चरणों के दौरान आजीविका के उपाय से संबंधित कार्यशाला का आयोजन कर ग्रामीण समुदाय एवं स्वयं सहायता समूह के सदस्यों को उन्नत विधि से धान, सब्जी एवं लाह की खेती के साथ–साथ पशुपालन एवं मुर्गी पालन पर प्रशिक्षण दिया गया। उन्नत विधि से लाह की खेती के प्रशिक्षण के फलस्वरूप ग्राम कोटना, बारी एवं जीउरी के ग्रामीण एवं स्वंय सहायता समूह के सदस्यों द्वारा उत्सुकता पूर्वक स्वयं खर्च वहन कर प्रशिक्षण के दिशा–निर्देश के अवलोकन में बेर एवं कुसुम के पेड़ पर लाह की खेती की गयी।

3. प्राकृतिक भू–जल स्रोतों का प्रबंधन

क. चुआँ निर्माण को प्रोत्साहन

स्थानीय ग्रामीण समुदायों द्वारा जल संकट की समस्या के समाधान हेतु ग्रामो के अधीनस्थ उपलब्ध संसाधन एवं कम लागत पद्धति पर आधारित अपने परम्परागत ज्ञान एवं तरीके से चुआँ का निर्माण कर प्राकृतिक भू–जल स्रोतों के प्रबंधन एवं संरक्षण की परम्परा बहुत पुरानी है। विगत कुछ समय से पारिस्थितिक असंतुलन से प्रभावित आजीविका की समस्या के परिणामस्वरूप वृहत् तौर पर ग्रामीण समुदायों का जीवकोपार्जन हेतु रोजगार की तलाश में पलायन जारी हुआ। इस वजह से जहाँ पूर्व निर्मित चुआँ रख–रखाव की कमी की वजह से बेकार हो गये तो वहीं इन चुओं के जीर्णोद्धार अथवा नये चुआँ के निर्माण में ग्रामीण समुदायों को कोई खास दिलचस्पी नहीं रही। साथ ही ग्रामों मे उपलब्ध ग्रामीणों द्वारा जल संकट एवं सिंचाई की सुविधा के अभाव के फलस्वरुप आजीविका हेतु अति–अल्प मूल्य वाले कृषि/गैर कृषि कार्य एवं गैर पारितोषिक वानिकी क्रियाकलाप जैवविविधता के क्षति के कारण के रूप में परिलक्षित हुए।

इस बाबत कार्यक्रम के अन्तर्गत सूक्ष्म नियोजन प्रक्रिया के आधार पर चयनित ग्रामो में कुल 8 अद्द चुआँ का निर्माण कर एवं ग्रामीण समुदायों को उन्नत विधि से कृषि कार्य के लिए प्रशिक्षित कर जैवविविधता के परिपेक्ष्य में आजीविका कियाकलाप के प्रयास हेतु कदम उठाया गया।

- **चुआँ निर्माण में सामुदायिक योगदान–समुदाय के द्वारा समुदाय के लिए**

ग्राम सभा के माध्यम से प्रत्येक चयनित ग्राम में प्रत्येक घर के प्रतिनिधियों के साथ सभा आयोजित कर सामुदायिक सहभागीदारिता सुनिश्चित की गयी। इसी दौरान ग्राम सभा के माध्यम से सामुदायिक सहयोग द्वारा कार्य स्थल का चयन कर, चुआँ का आकार, उपयोग, प्रबंधन की नीति एवं समुदाय द्वारा स्वैचछिक श्रमदान पर विचार तय किया गया। चुआँ से सभी ग्रामीणों को ज्यादा से ज्यादा लाभ मिले एवं कम विवाद की स्थिति पैदा हो इस हेतु सभी निर्णय सामूहिक परिचर्या के दरम्यान ग्राम सभा में एक मत से लिया गया। कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्पूर्ण लागत वहन करने के बावजूद भी सभी ग्रामों के प्रत्येक घर से एक व्यक्ति द्वारा एक दिन का स्वैच्छिक श्रमदान दिया गया। इस कार्य में कार्यान्वयन संस्था की भूमिका सिर्फ प्रवर्तक एवं उत्प्रेरक के रूप में थी। अधिकांश ग्रामो में ऐसे ग्रामीण जिनकी अपनी जमीन चुआँ से सिंचित क्षेत्र के अधिग्रहण में नही थी, चुआँ के अन्तर्गत सिंचित भूमि के स्वामी एवं ग्रामीण समुदाय के पारस्परिक साझेदारी द्वारा सामूहिक रुप से कृषि कार्य आरम्भ किया गया।

वर्तमान समय में सभी निर्मित चुआँ का रख–रखाव एवं प्रबंधन स्थानीय ग्रामीण समुदाय द्वारा किया जा रहा है एवं इसे ग्रामीण समुदाय द्वारा ग्रामीण सम्पति के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

- **चुँआ निर्माण की तकनीकी पद्धति**

तकनीकी तौर पर चुआँ का निर्माण एक साधारण संरचना है। इन संरचनाओं के निर्माण में गहराई लगभग 15 फीट से 25 फीट तक एवं गोलाई (ब्यास) लगभग 16 फीट तक रखा गया तथा इन संरचनों को पत्थर से बाँध कर निर्मित किया गया। सबसे विलक्षण बात यह रही कि चुआँ का निर्माण सम्पूर्ण रूप से स्थानीय ग्रामीण समुदाय के अनुभव एवं इनके

परम्परागत ज्ञान के आधार पर हुआ एवं कोई विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं पड़ी। कार्य स्थल के चयन से लेकर, कार्य रूपांकन एवं निर्वाहन तक ग्रामों में उपलब्ध दः पांजी (भू–जल उपलब्धता के स्थान को खोजने वाले) की अहम भूमिका रही। परम्परागत स्थानीय ज्ञान में महारत एवं कार्य कुशलता में निपुण कोई मान्यता प्राप्त धारक नही है, परन्तु इनके ज्ञान एवं कार्य–कौशलता आधुनिक नयी तकनीकी के लिए एक मिसाल है।

- **चुआँ–आजीविका एवं जैवविधता संरक्षण**

चुआँ के निर्माण के फलस्वरूप ग्रामीण समुदायों के मनोवृति में व्यापक परिवर्तन कार्यक्रम के विषय एवं उद्देश्य के दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण रहा। एक ओर ग्रामीण समुदायों के लिए कृषि कार्य हेतु पानी की आवश्यकता सम्पूर्ण वर्ष के लिए सुरक्षित हुई तो वही चुआँ के अन्तर्गत अधिग्रहित भूमि में नमी की मात्रा बढ़ने के साथ–साथ बायोमास की उत्पादकता बढ़ी। साथ ही आस–पास की भूमि के मृदा संरक्षण में चुआँ का योगदान रहा। चुआँ के आस–पास भूमि जिस पर ग्रामीण समुदायों द्वारा यदा–कदा खेती की जाती थी अब अत्यधिक उत्सुकता के साथ सम्पूर्ण वर्ष के लिए कृषि कार्य किया जाने लगा। फलतः खाद्यान उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ आर्थिक आय में व्यापक तौर पर वृद्धि हुई।

यह लाभ आर्थिक दृष्टिकोण से काफी असरदायक हुआ जिसका व्यापक प्रभाव ग्रामीण समुदायों के आजीविका क्रिया कलाप पर दृष्टिगत हुआ। एक ओर जहाँ ग्रामीण समुदाय का जीविकोपार्जन हेतु पलायन का क्रम रूका तो वहीं दूसरी ओर पलायन करने वाले लोग ग्रामों की ओर वापस लौटने लगे। ग्रामीणों का ध्यान उन्नत विधि से कृषि कार्य करने की ओर आकृष्ट हुआ एवं वनों पर आजीविका हेतु निर्भरता कम होने के साथ–साथ लगभग समाप्त हो गयी एवं वनों की सुरक्षा की ओर समर्पित होते हुए जैवविविधता संरक्षण के प्रति अग्रेषित हुए।

क्र स	ग्राम	निर्मित चुओं की सं0	चुआँ के अन्तर्गत अधिग्रहित सिंचित भूमि (एकड़ मे)	चुआँ निर्माण से पूर्व स्थिति		चुआँ निर्माण के पश्चात् वर्तमान स्थिति	
				कृषि कार्य	प्राप्त आय (रु.मे)	कृषि कार्य	प्राप्त आय (रु.मे)
1	बारी	2	7.00	केवल धान की खेती	22,500	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	3,19,025
2	किताहातु	1	4.50	केवल धान की खेती	20,250	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	71,700
3	जिउरी	1	4.04	केवल धान की खेती	18,180	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	4,00,380
4	गुटुहातु	1	2.59	केवल धान की खेती, यदा–कदा सरगुजा की खेती	11,565	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	2,33,790
5	कोटना	1	3.65	केवल धान की खेती, यदा–कदा मक्का,तिल,	16,425	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	1,76,525
6	जानुमपिरी	1	3.00	केवल धान की खेती एवं यदा–कदा मक्का, तिल, सरगुजा की खेती	17,550	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	4,43900
7	लुमलुमा	1	5.30	केवल धान की खेती एवं यदा–कदा मक्का, तिल, सरगुजा की खेती	28,850	धान एवं मौसमी सब्जी की खेती	1,11350

1. आजीविका क्रियाकलाप हेतु सूक्ष्म स्तरीय वित्तीय सहायता– गरीबी उन्मूलन एवं जैवविविधता संरक्षण

कार्यक्रम के अन्तर्गत चयनित ग्रामों के ग्रामीणों के आजीविका का मुख्य स्रोत अनिश्चित वर्षा पर आधारित अल्प मूल्य वाले कृषि कार्य एवं वनों एवं लघुवनोपजों–महुआ, चिरौंजी, भेलवा, कटहल, इमली, केंद, जामुन, करंज, साल के पत्ते, फूल एवं बीज इत्यादि के साथ–साथ वनौषधियों के संग्रह है। अतः एक ओर वनों पर अत्यधिक निर्भरता तो वही पर्याप्त रूप से आजीविका के साधन की कमी की वजह से ग्रामीणों का रोजगार हेतु पलायन जैवविविधता की क्षति का कारण है।

क. कृषि कार्य, पशुपालन एवं रोजगार के उपायों को बढ़ावा

इस बावत सभी ग्रामों में स्वंय सहायता समूहों को सूक्ष्म स्तर पर वित्तीय सहायता प्रदान की गयी। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से सदस्यों की सामूहिक अनुशंसा पर जरुरत मंद व्यक्तियों/सदस्यों को उन्नत विधि से सब्जी एवं धान की खेती, मुर्गीपालन, बकरी पालन, एवं सुअर पालन के साथ–साथ जैवविविधता संरक्षण के परिपेक्ष्य में व्यापार करने हेतु वित्तीय राशि प्रदान की गयी।

ख. लाह की खेती को बढ़ावा

कार्यक्रम के अन्तर्गत चयनित ग्रामों में बेर, कुसुम एवं पलास के वृक्ष प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यद्यपि वर्तमान समय में भी स्थानीय ग्रामीणों द्वारा इन वृक्षों पर लाह की खेती की जाती है परन्तु पर्यावरणीय दशा में बिगाड़ एवं पुरानी पद्धति की वजह से उत्पादन नगण्य है। साथ ही ग्रामीणों द्वारा लाह की बिक्री मध्यस्थ के माध्यम से ग्रामों में ही अथवा स्थानीय स्तर के हाट में की जाती है जिसका इन्हें उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। इसी के अवलोकन में बारी ग्राम में पलास वृक्ष की प्रचुरता को देखते हुए ग्रामीणों को प्रशिक्षित कर सामुदायिक स्तर पर वैज्ञानिक विधि से लाह की खेती को बढ़ावा दिया गया।

2. जैवविविधता संरक्षण के उपाय

क. पवित्र वन (सेक्रेड–ग्रोव) को बढ़ावा

परम्परागत तौर पर मुण्डा जनजाति के लोग प्रकृति के पूजक होते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक आपदा से बचने के लिए प्रकृति के विभिन्न घटकों को देवी–देवता के रूप में पूज्य मानकार खुश रखना है। इसी परिपेक्ष्य में इनके पूर्वजों द्वारा सामुदायिक वन भूमि को पवित्र वन घोषित किया गया एवं आज भी स्थानीय ग्रामीणों में इस वनों के प्रति श्रद्धा पूर्वक भक्ति भाव है एवं कोई वैमनस्य नहीं है। स्थानीय ग्रामों में पूर्वजों द्वारा घोषित अनेक प्रकार के पवित्र वन हैं जो स्थानिक पादप प्रजातियों की विविधता एवं जीन पूल के रूप में सामाजिक– धार्मिक आसक्तियों एवं औषधीय महत्व की दृष्टि सें महाविरासत के रूप में आरक्षित हैं। इन वनो से वृक्ष काटना, इसके किसी भी अवयव का उपयोग, महिलाओं का प्रवेश एवं लोहा निर्मित औजार से कार्य करना वर्जित है।

विगत कुछ दशकों से बाहरी प्रभाव के कारण सामाजिक परिवर्तन, ग्रामीण पुरूष वर्गो का पलायन, पारिस्थितिक असंतुलन एवं जलवायु परिवर्तन एवं वाहय आक्रमण करने वाले पौधे के प्रभाव से इन पवित्र वनो का क्रमिक रूप से ह्रास हुआ। इसी अवलोकन में इन ग्रामों कें ग्रामीण समुदायो के सहयोग से ग्रामों में पवित्र वनो की वैधानिक स्थिति का सर्वेक्षण कर सामुदायिक प्रयास द्वारा इन वनों मे आक्रमक पौधों की प्रजातियों का उन्मूलन एवं घेराबंदी कार्य कर स्थानिक विशिष्ट प्रजाति साल एवं भेलवा के पौधों के रोपण द्वारा यथा स्थल संरक्षण कार्य किया गया।

ख. अस्सिटेड नेचुरल रिजेनेरेशन (ए.एन.आर.) को बढ़ावा

कार्यक्रम के अन्तर्गत चयनित ग्रामों में मुख्य तौर पर साल, महुआ, चिरौंजी, भेलवा, केन्द, करंज, इमली इत्यादि वृक्षों से पूर्ण प्राकृतिक वनों की प्रधानता है। प्राचीन समय से ही स्थानीय ग्रामीण समुदायों का आजीविका का स्रोत इन्हीं वनोत्पाद पर निर्भर रहा है। ग्रामीणों द्वारा जीवकोपार्जन हेतु इन वनोत्पादों के संग्रह के दौरान वृक्षों की डाली काटने के साथ–साथ सम्पूर्ण वृक्षों को ही काटा जाता रहा। साथ ही वनोत्पादों की कमी के कारण अवैध रूप से इन वनों की कटाई व्यापक तौर पर की गयी। इसके फलस्वरूप जहाँ इन क्षेत्रो में वनाच्छादित क्षेत्रों के घटने के साथ वन–पारितंत्र का ह्रास हुआ तो वहीं इन वन्य प्रजातियों के प्राकृतिक रहवास एवं पुर्नजन्म पर व्यापक असर पड़ा जिससे प्रजातियों का अस्तित्व सकंट मे है। इसी के अवलोकन में इन प्राकृतिक

वनों के पुनर्जीवन हेतु रोग ग्रस्त वृक्षों का उन्मूलन, आक्रामक पौधों की प्रजातियों का उन्मूलन एवं इन वृक्ष प्रजातियों के वास्तविक रिक्त स्थानों पर साल, महुआ, चिरौंजी, भेलवा, एवं केन्दू के पौधों का रोपण कर यथा स्थल संरक्षण का कार्य किया गया।

ग. ग्रामीण वनों को बढ़ावा

प्राचीन काल से ही घरेलू एवं कृषि कार्य, जलावन एवं पशुओं हेतु चारा, वन्य संबंधित खाद्य उत्पाद एवं औषधीय महत्व की दृष्टि से ग्रामीण सामुदायिक वनों का स्थानीय ग्रामीण समुदायों के लिए विशेष महत्व हैं। परन्तु अनाधिकारिक वर्गो के साथ स्थानीय ग्रामीणों के सांठ–गांठ से पत्थर उत्खनन एवं वृहत् तौर पर काष्ठीय वनों की कटाई के फलस्वरुप इन ग्रामीण सामुदायिक वनों का व्यापक तौर पर ह्रास हुआ। इसी के अवलोकन में ग्रामीण वनों को बढ़ावा देने हेतु ग्रामीण सामुदायिक वनों पर गम्हार, चिरौंजी, केन्दू, महोगनी, कुसुम, सुबबूल, टीक, शीशम, बेर, साल, नीम, करंज एवं काजू के पौधों का रोपण कर वनीकरण कार्य किया गया।

घ. नर्सरी विकास को बढ़ावा

कार्यक्रम के अन्तगर्त यथा स्थल एवं बहिःस्थल संरक्षण के साथ–साथ स्थानीय क्षेत्रों के विशिष्ट महत्व वाले पादप प्रजातियों को बढ़ावा देने हेतु ग्रामीण समुदायों को प्रोत्साहित कर जीउरी एवं कोटना ग्राम में नर्सरी का निर्माण किया गया। वर्तमान समय में नर्सरी का रख–रखाव एवं प्रबंधन स्थानीय ग्रामीणों के परस्पर सहयोग द्वारा करते हुए महुआ, चिरौंजी, भेलवा, केन्द, करंज, इमली, बेर, कटहल, आम, कुसुम, पपीता, जामुन, अमरुद आदि के पौधे विकसित कर स्थानीय ग्रामीण समुदायों में वितरित की जा रही हैं।

उपसंहार

स्थानीय समुदायों के पारम्परिक ज्ञान एवं प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रबंधन एवं संरक्षण की अमूल्य विचारधाराओं को नजर अंदाज कर जैवविविधता संरक्षण तथा इसके अवयवो के स्वपोषी उपयोग एवं इससे जनित लाभों का साम्यपूर्ण बंटवारे की परिकल्पना संभव नहीं है। वर्तमान समय में किसी भी स्थान विशेष की विचारधाराएँ उस स्थान के मानव–प्रकृति अर्न्तसम्बंध अर्थात जैवविविधता संरक्षण की दिशा में वाह्य कारकों द्वारा थोपी गयी नीतियों की तुलना में अत्याधिक प्रभावकारी है। यदि स्थानीय स्तर पर मानव मूल्यों का उत्कृष्ट ढंग से मूल्यांकन किया जाये और उन्हीं को स्थान विशेष के हित में रखकर क्रियान्वयन हेतु बढ़ावा दिया जाये तो जैवविविधता संरक्षण में इनका योगदान ज्यादा फलदायक साबित हो सकता है।

यही समय है जब सरकारी तंत्र को 'समुदाय आधारित प्राकृतिक सम्पदा प्रबंधन द्वारा जैवविविधता संरक्षण' के तारतम्य में स्थानीय समुदाय के बीच इनके साझेदारी एवं सहभागीदारी के योगदान को स्पष्ट एवं सारगर्भिक रूप से परिभाषित करने के बारे में गम्भीरता पूर्वक सोचना है तथा अनावश्यक भागीदारी से स्वयं को किनारा करते हुए इन्हें जैवविविधता संरक्षण हेतु सम्पूर्ण नियंत्रण का अधिकार दे देने की आवश्यकता है।

अतः जैवविविधता के आर्थिक, सामाजिक–सांकृतिक एवं पर्यावरणीय महत्व को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय मे विशेषज्ञों, सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं, स्वयं सेवी संस्थाओं, विद्वानों, वैज्ञानिकों एवं स्थानीय निवासियों को प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रबंधन द्वारा जैवविविधता संरक्षण के लिए इस दिशा में अपने ज्ञान, अनुभव, सामर्थ्य एवं उत्तरदायित्व के साथ अपनी–अपनी भागीदारी एवं भूमिका सुनिश्चित करनी होगी जो यथार्थ एवं प्रायोगिक तौर पर सर्वमान्य हो।

लाख उत्पादन से सामाजिक उत्थान

श्री रामेश्वर दास एवं श्री एस.एन. वैद्य
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

प्रस्तावना :– लाह या लाख की पैदावार वैदिक काल से होती आ रही है और इसका उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता रहा है। महाभारत काल में कौरवों ने पाण्डवों को मारने के लिए लाक्षा गृह का निर्माण कराया था, कितनी लाख लगी होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अनादि काल से लाख उपजायी जाती रही है और वर्तमान में इसकी खेती करके इसे व्यवसाय के रूप में विकसित किया गया है। इसकी खेती करने वाले किसान आदिवासी तथा आर्थिक रूप से पिछड़े ही होते हैं। नयी तकनीक के अभाव में ये लोग लाह खेती को पौराणिक विधि से अपनाते हैं। अतः वैज्ञानिक पद्धति से लाह उत्पादन के प्रचार प्रसार की महत्ती आवश्यकता है जिससे कृषक अधिकाधिक लाभान्वित हो सकें।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् देहरादून के तहत वन उत्पादकता संस्थान, राँची ने सितम्बर 2008 में झारखण्ड राज्य के (पलामू, खुंटी, बोकारो, देवघर–I, देवघर–II,) पाँच केन्द्रों को चयनित कर यू0 एन0 डी0 पी0 परियोजनायें परिचालित की गई। परियोजना का मुख्य उद्देश्य जैवविविधता कायम रखते हुए गरीबी उन्नमूलन करना है।

यू. एन. डी. पी. परियोजना के तहत विभिन्न क्षेत्रो में गरीबी उन्नमूलन एवं जैवविविधता अबाधगति से कायम रखने के वास्ते केन्द्रों के वस्तुस्थिति वातावरण एवं सामुदायिक समिति के विचारानुसार अनेक योजनाएँ बनायी गई।

1. विलुप्त प्रजाति पौध की पौधशाला एवं रोपण।
2. विलुप्त औषधीय पौध की खोज एवं बचाव।
3. जल एवं भूमि संरक्षण।
4. वन संरक्षण।
5. पशुपालन।
6. लाह उत्पादन।

यू0 एन0 डी0 पी0 परियोजना के तहत खुंटी जिले के दस ग्रामों को चयनित किया गया तथा वर्ष 2008 से परियोजनायें परिचालित की गई।

प्रकृति ने प्रचुर संख्या में खूंटी जिले के क्षेत्र को लाह पोषक वृक्षों से आच्छादित किया है। मुख्य लाह या लाह पोषक वृक्षों से (पलास, बेर, कुसुम) खुंटी क्षेत्र आच्छादित है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रजातियाँ भी उपलब्ध हैं।

बेर पेड़ पर परिपक्व लाख

खूंटी जिला लाह उत्पादक क्षेत्र रहा है जिसके कारण इस जिले में विश्वस्तरीय लाह उद्योग लगाये गये हैं। विगत कई वर्षों से लाह की खेती में भारी गिरावट आयी। अन्ततः उत्पादन नगण्य हो गया जिसके कारण ग्रामीणों/कृषकों ने लाह या लाख उत्पादन के क्षेत्र से ध्यान हटा दिया, क्योंकि बार–बार आर्थिक हानि का सामना करना पड़ा।

खूंटी जिले को यू0 एन0 डी0 पी0 परियोजना के तहत अन्य योजनाओं के साथ लाह या लाख उत्पादन बढ़ाने के लिए चयनित किया गया।

कार्य पद्धति

खूंटी जिले में यू0 एन0 डी0 पी0 परियोजना के तहत चयनित ग्रामों के ग्रामीणों को संस्थान द्वारा दो दिवसीय दिनांक 18–19 मई 2009 को प्रशिक्षण सह प्रदर्शन, बारी ग्राम में दिया गया। दो दिवसीय प्रशिक्षण में 48 प्रशिक्षणार्थियों ने

भाग लिया। प्रशिक्षण के दौरान ग्रामीणों/कृषकों ने अपने विचार प्रकट किये। जिनका सार निम्नवत है :

1. पौराणिक विधि द्वारा लाह की खेती।
2. लाह खेती संबंधी प्रशिक्षण कभी भी नही पाया।
3. लाह की खेती गत पाँच–छह वर्षो से नही की गई।
4. लाह बीज एवं तकनीक का अभाव।

इस जानकारी के उपरान्त संस्थान ने दिनांक 18–19 मई 2009 को उन्नत विधि द्वारा लाह की खेती पर प्रशिक्षण दिये तथा तकनीक से अवगत कराया।

उन्नत विधि या वैज्ञानिक विधि द्वारा लाह की खेती

तालिका – 1

क्रम0 स0	लाह आधारित खेती करने के प्रकार	उन्नत तकनीकी	पौराणिक /परंमपारिक विधि
1	लाह पोषक वृक्षों का कलम करना	पलाश : मार्च–अप्रैल में, बेर : फरवरी में, कुसुमः जनवरी–फरवरी या जून–जुलाई में, 1" मोटी डाली को एक हाथ के बाद काटें और न फटे, 1" से पतली डालियों को सटाकर काटें, तिरछे काटें।	1. कलम करने की कोई अवधि नहीं फसल लेने के वक्त ही कलम कर दिया जाना। कलम करने का कोई पैमाना नहीं।
2.	संचारण या लाह बीज बांधना	प्रत्येक कलम बिन्दुओं पर लाह उचित मात्रा में 60 मेस. की जाली में रखकर बांधा जाए।	लाख पोषक वृक्षों की दो डालियों के बीच अनुचित मात्रा में दो या चार स्थानों पर रख दिया जाना।
3.	फूंकी उतारना	संचारण या लाह बीज बांधने के तीन सप्ताह बाद बांधे गये लाह को उतार लेना।	फूंकी उतारने की सीमा अवधि नहीं या तो नये फसल आने तक ज्यों का त्यों पड़ा रहना।
4.	कीटनाशक या फफूंदनाशक दवा का छिड़काव	प्रत्येक फसल की अवधि में दो या तीन बार आवश्यकतानुसार दवा का छिड़काव किया जाना उचित है।	लाह की खेती में कमी भी किसी प्रकार दवा उपयोग की जानकारी से वंचित।
5.	फसल कटाई	परिपक्व लाह फसल की पहचान की जानकारी किस अवधि में फसल को काटकर स्थानांतरित करने की जानकारी उपलब्ध कराना	परिपक्व लाह फसल पहचान की जानकारी का अभाव। जीवित एंव मृत फसल की पहचान की अक्षमता।
6.	खण्ड प्रणाली	खण्ड प्रणाली माध्यम से खेती क्यों और कैसे की जाए।	खण्ड प्रणाली के संबंध में जानकारी से अनजान।

साथ ही संस्थान द्वारा लाह उत्पादन बढ़ाने के लिए ग्रामीणों/कृषकों को मास्टर ट्रेनिंग प्रदान की गयी जिसमे निम्न बिन्दुओ पर विशेष ध्यान दिया गया।

1. लाह पोषक वृक्षों का चयन।
2. लाह पोषक वृक्षों का समय पर कलम किया जाना।
3. लाह पोषक वृक्षों को संख्यावार अंकित करना।
4. जीवित एवं निरोग लाह बीज का चयन करना।
5. संचारण या लाह बीज को 60 पैसे नायलान की जाली में भरकर प्रत्येक कलम किये बिन्दुओं पर सही अवस्था में बांधना।
6. लाह कीट वहिर्गमन या तीन सप्ताह बाद पेड़ों पर बांधे गये लाख को उतारना।
7. कीटनाशक/फफूंदनाशक दवा का छिड़काव क्रमशः मात्रा में एंव समयानुसार अवश्य करें। प्रथम कीटनाशक

पलास पेड़ पर लाख एवं लाख कीट व्यवस्थित

दवा का छिड़काव संचारण के एक माह बाद किया जाना उचित होगा। कीटनाशक दवा इन्डोसल्फान (थायोडान 35 ई० सी०), नूभान 76 ई०सी० एवं वेंगार्ड/ वभेस्टीन w.p. 50%

8. लाख उत्पादन बढ़ावे के लिए खण्ड प्रणाली की जानकारी।
9. परिपक्व लाह या लाख की पहचान की विधियाँ। परिपक्वता के पश्चात या कीट वहिर्गमन आरंभ होने के बाद ही प्रसार (संचारण) समयानुकूल किया जाना उचित है।
10. लाह या लाख बीहन कब और कैसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करें।

संस्थान द्वारा यू0 एन0 डी0 पी0 परियोजना के तहत सामुदायिक आधारित लाह बीज भंडारण स्थापना के लिए खूंटी जिले के दो क्षेत्रों को बारी ग्राम एंव जिवरी क्षेत्र को चयनित किया गया। वर्ष 2009 के जुलाई में पाँच कुसुम पेड़ों का कलम (काट–छाट) किया गया जिस पर 18 माह बाद लाह बीज बांधा जाएगा।

बारी एवं जिवरी ग्राम के किसानों को लाह उत्पादन प्रोत्साहन के लिए बेर एंव कुसुम पेड़ों पर कुसुमी लाह बीज का प्रदर्शन किया गया।

प्रशिक्षण सह प्रदर्शन के पश्चात जिवरी एंव बारी के दो. कृषको ने तत्काल अनुसरण किया तथा लाह फसल के माध्यम से क्रमशः दो कुसुम तथा पांच बेर पेड़ से लगभग ₹ 80000/– की फसल की बिक्री की। लगभग 35 बेर पेड़ों से खेती के साथ लगभग ₹ 18000/– की फसल से आमदनी पाई।

अगले वर्ष 2010 में बारी ग्राम के सरना के निकट 7–8 अप्रैल 2010 को लगभग 410 पलाश पेड़ों का उन्नत विधि द्वारा कलम (काट–छांट) किया गया । सभी पलाश पेड़ों को दीमक प्रकोप से बचाव के लिए लगभग 3'' ऊँचाई तक चूने की पुताई करायी गयी तथा सबों पर संख्या अंकित की गई। कलम के छः माह बाद लाह बीज प्रसारण के लिए निरोग एंव स्वस्थ लाह बीज का चयन झारखंड राज्य के सिल्ली से किया गया। लगभग 200 कि0 ग्रा0 लाह बीज को 60 मेस. के नायलोन की जाली में 50–70 ग्राम मात्रा की दर से सभी 410 पेड़ों को कलम बिन्दुओं पर सही तरीके से बांधा गया। लाह बीज प्रसार की अवधि 20–22 अक्टूबर 2010 तक रही। 11 नवम्बर 2010 को लाह कीट निर्गत के पश्चात फूंकी लाख या फूंकी लाह उतार कर तत्काल छीलकर 18 कि0 ग्रि0 लाख पाया गया। जिससे सामुदायिक समिति ने 3600/– रूपयें की प्रथम आमदनी प्राप्त की।

फूंकी उतारने के बाद माह–नवम्बर 2010 से लेकर जनवरी 2011 तक तीन बार कीटनाशक दवा का छिड़काव किया गया।

क्र. सं.	अवधि	कीटनाशक/ फुफंदीनाशक	मात्रा
1.	एक माह बाद (22.11.10)	इन्डोसल्फान (थायोडान) 35 ई . सी. 0.05 %	20 मि.ली. + 14 ली० पानी
2.	28.12.10	वभेस्टीन, कारवेन्डाजिम 50 W.P. 0.01% घोल	3 ग्राम + 14 ली. पानी
3.	30.01.11	इन्डोसल्फान व कारवेन्डाजिम 0.05% 0.01 %	20 मि०ली० + 3 ग्राम + 14 ली० पानी

बारी एंव जिवरी सामुदायिक समिति को संस्थान के द्वारा निर्वाध रूप से स्थल सर्वेक्षण कर मार्ग दर्शन दिया जाता रहा है। लाख बीज निर्वाध भण्डारण के वास्ते माह जनवरी 2011 में वारी ग्राम के पास जिवरी में स्थल चयन किया गया।

पलास पेड़ों पर कांट–छांट

21 अप्रैल 2011 को सामुदायिक समिति ने परियोजना के तहत लगभग 550 पलास पेड़ों का कलम (काट–छांट) किया। वर्तमान में खूंटी जिले के आस–पास ग्रामों के लिए समुदाय आधारित लाह बीज फार्म या लाह बीज भण्डार की स्थापना करना परियोजना के तहत रखा गया है जिसके लिए दो स्थलों का चयन कर समुचित उन्नत विधि द्वारा लाह उत्पादन के वास्ते कार्रवाई जारी है।

उन्नत विधि या वैज्ञानिक विधि द्वारा लाह की खेती

वैज्ञानिक पद्धति अपनाकर लाह की खेती द्वारा अधिक लाभ अर्जित करने हेतु विभिन्न पहलुओं को विचार में रखना चाहिए इनका विवरण तालिका संख्या –II में दिया गया है ।

तालिका संख्या – II

क्र. सं.	लाह आधारित खेती करने का प्रकार	कब करें	कैसे करें	क्यों करें
1	काट–छांट या कलम करना	पलाश:– मार्च के मध्य से अप्रैल के मध्य तक। बेर :– फरवरी कुसुम :– जनवरी–फरवरी या जून–जुलाई	तेजधार वाली दाउली जैसे औजार से। 1" मोटी डाली को एक हाथ के बाद तिरछे काटें, डाली फटे नही। 1" से पतली डाली को उदगम स्थल से काट दें। फटी–टूटी तथा रोगग्रस्त डालियों को पूर्ण रूप से हटा दे।	अत्याधिक कोमल डालियाँ मिलेगी। लाख कीट के लिए उपयुक्त स्थान एवं भोजन प्राप्त होगा। अत्याधिक कीट–बैठेंगे, उत्पादन अधिक होगा।
2	संचारण या लाह बीज बांधना	पलास या बेर में कलम करने के छः माह बाद। कुसुम :– कलम करने के 18 माह बाद।	स्वस्थ लाह बीज को 6" के दुकड़े में काट कर 60 मेस की नायलोन की जाली मे भरकर कलम किये गये बिन्दुओं के निर्गम डालियों के उपर कसकर बांधें। बीहन लाख के बंडलों पर पूरे वृक्षों पर कई स्थानों पर बाँधें। ठंडे मौसम मे कीट वहिर्गमन के बाद डालियों पर बीहन बाँधें।	अत्याधिक उत्पादन के लिए उचित मात्रा में लाह बीहन के प्रसार। नायलोन जाली का उपयोग से दुश्मन कीटों का रूकावट। लाख या लाख–कीटों का बचाव।
3	फूंकी उतारना	लाह पोषक वृक्षों पर लाह बीज संचारण के तीन सप्ताह बाद या पूर्ण कीट वहिर्गमन के बाद ।	लंबी बांस में तेजधार वाली हुक लगाकर बांधे गये दोनों स्थानों को काटकर उतारें।	लह या लाख तथा लाख कीट को दुश्मन से बचाने के लिए । दुश्मन क्री नयी पीढ़ी की रोकथाम के लिए।
4	कीटनाशक / फफूंदनाशक दवा का छिड़काव	संचारण के एक माह बाद या फूंकी उतारने के एक सप्ताह बाद कीटनाशक दवा का छिड़काव करें। एक माह पश्चात पुनः करें । यदि आवश्यक हो तो फफूंदनाशक का छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो तीसरी बार भी छिड़काव कर सकते है।	उचित मात्रा मे दवा को 14 लीटर पानी मे घोल बनाकर छिड़काव वाली मशीन से लाह लगी डालियों पर छिड़काव करे। थायोडान की मात्रा 20 मी०ली०, वरटीन 3 ग्राम, नुभान 6 मी०ली०।	लाह एंव लाख के दुश्मन कीटों को नष्ट करने के लिए तथा अत्याधिक लाख उत्पादन के लिए।
5	लाह बीहन की कटाई	जब लाह लगी डंडियों पर लाख कोष का 3 हिस्सा से ज्यादा सुनहला हो जाए। ठंडे मौसम में 5–10 % कीट वहिर्गमन के बाद। लाह बीज का परत फटना	पूर्ण रूपेण लाख लगी डालियों को ही काटें। मोटी डालियों को न काटें। लाख वाली डालियों से पूरी पत्ती हटा लें। कटी डाली को छाया में रखें।	एक स्थान से दूसरे स्थान लाख बीज संचारण या स्थानांतरण के लिए।
6	खण्ड प्रणाली	लाह बीज फार्म / भंडार चयन के पश्चात रंगीनी फसल के लिए (पलाश व वेर) को तीन भागों मे बराबर संख्या में बांटे।	श्रंगीनी लाह फसल के लिए पलाश, बेर पेड़ों को बराबर–बराबर तीन भागों मे विभक्त करे एवं संख्या अंकित करें। कुसमी फसल के लिए चार या पाँच समान भागों में पेड़ों को बांटें।	स्वस्थ, रोगमुक्त एंव निर्बाध लाह बीज की उपल्ब्धता के वास्ते।

लाख उत्पादन के लाभ का आकलन

लाह उत्पादन या लाह की खेती लाभदायक है। यह कम लागत, कम मेहनत, उन्नत तकनीक से एक अच्छी आमदनी का अतिरिक्त स्रोत है। सामान्यतः लाख या लाह उत्पादन क्षेत्र में पलाश पेड़ से तीनागुणा, बेर पेड़ से छः गुणा तथा कुसुम पेड़ से आठ गुणा उत्पादन पाया जाता है। यह पेड़ों की डालियों पर भी निर्भर करता है।

1. पलाश पेड़ो पर लाह या लाख की खेती :

पेड़ों की संख्या – 200 एक साथ खेती के लिए उपयोग पेड़ों की सं0 – 100

(1) कुल लागत पर सकल लाभ – 199 % / 320 %

(2) कुल लागत पर शुद्ध लाभ – 99 % / 220 %

नोटः– मजदूरी छोड़कर ।

2. वेर पेड़ों पर लाह या लाख की खेती :

पेड़ों की संख्या – 100 एक साथ खेती के लिए उपयोग पेड़ों की संख्या – 100

(1) कुल लागत पर सकल लाभ – 234% / 415 %

(2) कुल लागत पर शुद्ध लाभ – 134% / 315 %

नोटः– मजदूरी छोड़कर ।

3. कुसुम पेड़ों पर लाह या लाख की खेतीः

पेड़ों की संख्या – 100 एक साथ खेती के लिए उपयोग पेड़ों की सं0 – 40

(1) कुल लागत पर शुद्ध लाभ – 305 %

नोटः– मजदूरी छोड़कर ।

निष्कर्ष :–

यू0 एन0 डी0 पी0 परियोजना के तहत जैव विविधता को कायम रखने के साथ–साथ जीविका उपार्जन के वास्ते संस्थान द्वारा झारखंड राज्य के पाँच केन्द्रों में वस्तुस्थिति के अनुकूल अलग–अलग योजनायें कार्यान्वित की गयी जिसमें लाह की खेती भी जैव विविधता तथा जीविका उपार्जन परियोजना के तहत एक हिस्सा है। जैव विविधता तथा जीविका उपार्जन के लिए परियोजना के तहत लाह की खेती की योजना को क्रियान्वित करने के वास्ते ग्राम सभा के माध्यम से सामुदायिक समिति का चयन किया गया एंव जीविका उपार्जन के लिए ग्राम सभा की बैठक में विभिन्न कार्य–कलापों के बारे में चर्चा की गयी। चर्चा में खासकर लाह की खेती को बढ़ाने के लिए कैसा स्वरूप दिया जाए इसकी चर्चा की गयी। चर्चा में तकनीकी परामर्श, स्थल प्रदर्शन के अभाव मे लगातार छः सात वर्षों से लाह की खेती पर लाह उत्पादन प्रभावित होने से ग्रामीण/कृषक असहाय महसूस करने लगे थे। परन्तु परियोजना के तहत खासकर लाह बीज/लाह उत्पादन बढ़ाने के लिए खूंटी जिले के वारी ग्राम में सरना के निकट लाह फसल की खेती अच्छी देखकर सामुदायिक समिति, ग्रामीणों/किसानों तथा दूसरे ग्रामों के ग्रामीणों/ कृषकों का मनोबल बढ़ा है और वे खुद को इस ओर अग्रसर कर रहे हैं, जबकि दो वर्ष पूर्व में लाह की खेती के नाम से उनमें भय व्याप्त रहा करता था।

परियोजना के तहत किये गए कार्य के प्रति खूंटी जिले, बारी, जिवरी, कोटमा में अलावा अनेक ग्रामों के ग्रामीणों का लाह की खेती, लाह उत्पादन के प्रति रूझान बढ़ा है। वे तकनीक तथा परामर्श के अभाव में वंचित रह जाते थे। खासकर बारी ग्राम में लाह बीज फार्म (भण्डार) को देखकर ग्रामीणों की उत्सुक्ता बढ़ी है। इस वर्ष निरीक्षण के अनुसार रंगीनी लाह फसल का उत्पादन अच्छे होने के आसार है। प्रतीत होता है कि लाह उत्पादन द्वारा सामाजिक उत्थान का यह प्रयास भविष्य में रंग लायेगा।

भारतीय परम्परा में बिल्व

श्री रामेश्वर दास एवं श्री जितेन्द्र नाथ मिश्र
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

भारतीय परम्परा में वनस्पतियों का महत्त्व सर्वातिशायी है। इस महत्त्व को वनस्पतियों ने अतिप्राचीन काल से प्राप्त किया है। चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो या सांस्कृतिक पहचान की बात हो धार्मिक क्षेत्र हो या काव्यसौन्दर्य का प्रश्न, सर्वत्र वनस्पतियों की उपस्थिति चक्षुगोचर होती है। वनस्पतियों की परम्परा में बिल्व का स्थान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रूटेसी (Rutaceae) कुल की इस वनस्पति का वैज्ञानिक नाम ईगल मार्मेलोस (*Aegle marmelos Corr.*) है। बिल्व का वृक्ष मध्यमाकार, 50 फीट से भी ऊँचा होता है। इसकी शाखाओं पर सीधे, मोटे, तीक्ष्ण एक इंच तक लम्बे कांटे होते हैं एवं टहनियों पर पत्ते विषमवर्ती रहते हैं। इसकी प्रत्येक सोंक पर तीन–तीन पत्रकों से युक्त पत्ते रहते हैं। पत्रक– कसोंदी के पत्तों के आकार वाले एवं अंडाकार–भालाकार होते हैं। बीचवाला पत्ता अन्य दो से कुछ बड़ा होता है। फाल्गुन–चैत्र माह में इनके पुराने पत्ते गिर जाते हैं और चैत्र–वैशाख में क्रम से नवीन पत्ते निकल आते हैं। इसी समय हरियाली लिये सफेद रंग के 4,5 पंखडियों वाले करीब 1 इंच चौड़े फूल लगते हैं और उनमें मधु

के समान मन्द गन्ध निकलती है। इनके फल गोलाकर 3–8 इंच व्यास के, हरिताभ रंग के होते हैं जो पकने पर पीताभ भूरे रंग के एवं चिकने होते हैं। इसकी वहिर्भित्ति से बाह्य कठोर काष्ठमय छिलका बनता है जो करीब 3 मि. मि. मोटा, रक्ताभ रंग का एवं अन्दर से रेशेदार होता है। मध्यमित्ति एवं अन्तर्भित्ति से गूदा बनता है जो आवरण से चिपका हुआ तथा हलके रक्ताभ नारंगी रंग का होता है। इनके बीज बहुत, 10–15 समूहों में, बिनौले के सदृश सफेद रोमों से युक्त एवं चिकने तथा रंगहीन गोंद से लिपटे रहते हैं। फलों में मन्द सुगंध आती है तथा इनका स्वाद गोंद की तरह होता है। बेल के दो तरह के फल होते हैं। लगाये हुये फल बड़े, सुस्वादु एवं कम बीज वाले होते हैं। जंगली फल छोटे, कुछ मादक एवं इसके बीज अधिक गोंद से लिपटे होते हैं।

बिल्व के फलमज्जा में म्यूसिलेज, पेक्टिन, शर्करा, टैनिन, उड़नशील तेल, तिक्त सत्त्व तथा भस्म होते हैं। इसमें मार्मेलोसिन (Marmelosin) नामक एक द्रव्य होता है। ताजे पत्र से एक विशिष्ट गन्धयुक्त हरा–पीला तेल प्राप्त होता है। पत्र में ईगेलिन (Aegelin), ईगेलिनिन (Aegelinin) आदि अनेक क्षाराभ और कुमारिन पाये गये हैं। बीजों में भी एक हल्के पीले रंग का तिक्त तेल निकलता है जिसमें रेचक गुण होता है। काण्ड की भस्म में सोडियम और पोटासियम के लवण, कैल्सियम और लौह के फास्फेट, कैल्सियम कार्बोनेट, मैगनीशियम कार्बोनेट, सिलिका आदि होते हैं।

भौगोलिक वितरण : बेल पहाड़ियों पर शुष्क, पर्णपाती वन क्षेत्र, मध्य और दक्षिण भारत के मैदानों पर, दक्षिण नेपाल, म्यांनमार, पाकिस्तान, बांग्लादेश, वियतनाम, लॉस, कोलम्बिया और थाईलैण्ड की स्वदेशी प्रजाति है।

पारिस्थितिक आवश्यकताएं : यह प्रजाति दीर्घकालीन सूखे की स्थिति को सहन करनें योग्य है, जो बेहतर फलों की उपज के लिए आवश्यक है। यह नमीयुक्त मिट्टी एवं वातावरण में पनपता है और पूर्ण विकसित होने तक, इसकी अपेक्षाकृत कम देखभाल की जरूरत है। यह शुष्क, कड़े, बलुआही, दोमट मिट्टी में अपेक्षाकृत ज्यादा उपजाऊ है। पौधे का संचरण बीजों एवं मूल –शाखाओं के द्वारा होता है।

इसके बीज सड़ने योग्य हैं जिनका संग्रहण लम्बे समय तक नही किया जा सकता। अतः इन्हें निकालने के तुरंत बाद बोना चाहिए।

बिल्व का प्राचीन ग्रंथो में उल्लेखः इसके लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। राजनिघण्टु में इसके 23 नामों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :–

'बिल्वः शल्यो ह्यद्यगन्ध शलाटुः शाण्डिल्यः
स्याच्छ्रीफलः कर्कटाह्वः।
शैलूषः स्याच्छैवपत्रः शिवेष्टः पत्रश्रेठो गन्धपत्रस्त्रिपत्रः ।।
लक्ष्मीफलो गन्धफलो दुरारुहस्त्रिशाकपत्रस्त्रिशिखः शिवद्रुमः।
सदाफलः सत्फलदः सुभूतिकः समीरसारः शिखिनेत्रसंज्ञितः।।

निघण्टु ग्रन्थों में बिल्व के औषधीय गुणों की चर्चा प्राप्त होती है। कैयदेव निघण्टु के अनुसार बेल कषाय एवं तिक्त, ग्राही, रूक्ष, अग्निवर्धक, पित्तकारक तथा वातकफनाशक है। बिल्वपत्र संग्राहि एवं वातहर होता है। बिल्वमूल मधुर, लघु, त्रिदोषहर है तथा वमन, मूत्रकृच्छ्र एवं शूल को नष्ट करता है। बिल्वपेशिका बालबिल्व की फलमज्जा कफवात शामक, आमपाचन, शूलहर तथा ग्राही है। बिल्वकाण्ड कासहर,

आमवातनाशक, हृद्य, रूचिवर्धक तथा दीपन है। बिल्व बालफल कटु, कशाय एवं तिक्तरस, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, स्निग्ध, तीक्ष्ण, लघु, ग्राही, हृद्य एवं कफवातनाशक है। पक्वफल मधुरानुरसयुक्त, गुह, विदाही, विष्टम्भी, दुर्जर, दोषकर, ग्राही, अग्नि को मन्द करने वाला तथा दुर्गन्धयुक्त अधोवायु को उत्पन्न करने वाला है। बिल्वपुष्प अतिसार, तृषा एवं वमन में लाभदायक होते हैं। बिल्वमज्जा का तैल उष्ण एवं उत्तम वातहर होता है। कॉजी में रखा हुआ बेल अग्निवर्धक, हृद्य, रूचिकारक एवं आमवात को दूर करने वाला होता है। ज्वर में बिल्व शलाट के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार बेल का मूल त्रिदोष नाशक तथा वमनशामक है तथा मधुरस एवं लघु है। बेल का फल अम्ल रस, स्निग्ध, संग्राही तथा जठराग्नि दीपक है। यह कटु रस, तिक्त रस, कषाय रस, उष्ण तथा तीक्ष्ण है और वात–कफ नाशक है। पक्व बेल फल मधुरानुरस तथा गुरु जाना जाता है। यह विदाही है, विष्टम्भकारक है, दोषों को दूर करने वाला है।

गरुड पुराण के अनुसार बिल्व, श्योनाक, श्रीपर्णी, पाटला और अग्निमान्द्य – इन पाँच वृक्षों के मूल संग्रह को आयुर्वेद में पंचमूल कहा गया है। ये पंचमूल मन्दाग्नि को तीव्र करने वाले, कफ और वात के दोष का विनाश करने वाले हैं। इसी पुराण के अनुसार बिल्व कफ–पित्त तथा कृमिनाशक, लघु और जठराग्नि को उद्दीप्त करता है–

सबिल्वाः कफपित्तघ्नाः कृमिघ्ना लघुदीपिकाः।

बिल्व, पृश्निपर्णी, बला, सोंठ, कमल, धान्यक, पाठा, इन्द्रयव, भूनिम्ब, मुस्त तथा पर्पटक से बना हुआ क्वाथ आमातिसर तथा ज्वर को विनष्ट करता है। बिल्व और नील वृक्ष की जड़ पीसकर बनाए गए अंजन को नेत्रों में लगाने मात्र से तिमिरादिक रोग निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं–

बिल्वकं नीलिकामूलं पिष्टमभ्यंजनेन च।
अनेनाजितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि।।

अग्निपुराण में बिल्व महत्त्वपूर्ण औषधि के रूप में चित्रित है।

उपचारीय उपयोगः इसके फल की औषधीय उपयोगिता सबसे अधिक तब रहती है जबकि इसका फल पकने वाला होता है। यह रक्त स्राव एवं अन्य स्रावों को रोकता है। यह स्कर्वी की रोकथाम में उपयोगी है। पीलिया, मधुमेह, पेचिस, दमा, आंखो के रोग, बहरापन, सूजन, मोतियाविन्द आदि रोगों में भी इसकी उपयोगिता प्रमाणित है। इसके जड़ का उपयोग अवसाद (मिलैनकोलिया) धड़कन की बीमारी, कर्टिलेज संबंधी विकार को दूर करने में भी

प्रचलित है। इसकी गणना उन 36 औषधियों में की गई है जो समस्त रोगों को दूर करने वाला हैं। ये शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़ने देते और बालों को पकने से रोकते हैं। इनका चूर्ण या इनके रस से भावित बटि, अवलेह, काढ़ा, गुडखण्ड यदि घी या मधु के साथ खाया जाए अथवा इनके रस से भावित घी या तेल का जिस किसी तरह से उपयोग किया जाए, वह सर्वथा मृतसंजीवन होता है–

क्रमादेकादिसंज्ञानि ह्यौषधानि महान्ति हि।
सर्वरोगहराणि स्युरमरीकरणानि च।।
बलीपलितभेतृणि सर्वकोष्ठगतानि तु।
एषां चूर्णच वटिका रसेन परिभाविता।।
मधुतो घृततो वापि घृतन्तैलमथापि वा।
सर्व्वात्मनोष्युक्तं हि मृतसंजीवनम्भवेत्।।

वैदिक साहित्य में बिल्व का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण, महाभारत, पाणिनि, प्राचीन बौद्ध एवं जैन धार्मिक साहित्य तथा परवर्ती साहित्य में सर्वत्र बिल्व दिखाई देता है। भारतीयसंस्कृति में यज्ञ का महत्त्व सर्वविदित है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार यज्ञ स्तम्भ बिल्व की लकड़ी से बनाने का विधान है।

इसके फूलों और पके फलों में मीठी सुगन्ध आती है, जो हृदय को भाती है। इसलिए संस्कृत में बिल्व को हृद्यगन्ध भी कहते हैं। श्रीहर्ष ने इस सुगन्ध की तुलना चन्दन की सुरभि से की है। भवभूति ने बिल्व की सुरभि से परिपूर्ण वन पर्वतों के खण्डों का वर्णन किया है–

परणितमालूरसुरभ्यः अरण्यगिरिभूयः

इस वृक्ष को लक्ष्मी और शिव का प्रिय पवित्र वृक्ष माना जाता है। इसके नीचे पूजा–पाठ करना पुण्यदायक है। शिवजी की अर्चना में बिल्वपत्र चढ़ाने का महत्वपूर्ण स्थान है। वराहपुराण का कथन है कि जो व्यक्ति अष्टमी तिथि को बिल्व खाकर मातृकाओं की भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उसके ऊपर प्रसन्न होकर वे उसे कल्याण और आरोग्य प्रदान करती हैं। अग्निपुराण में बताया गया है कि स्नपतोत्सव में बिल्व का महत्वपूर्ण योगदान है। राज्यलाभ के लिए बिल्वफल के होम की बात कही गई है– बिल्वं राज्याय। मन्दिर में लिंग के रूप में परिगणित की गई है– 'बिल्वानां चूर्णानि चा विचक्षणः।
श्रीशिवपुराण के अन्तर्गत बिल्व माहात्म्य का वर्णन इस प्रकार से किया गया है –

बिल्वमूले महादेवं लिंगरूपिणमव्ययम्।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्।।
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिंचति।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः।।

अर्थात बिल्व के मूल में लिंगरूपी अविनाशी महादेव का पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है, उसे निश्चय ही कल्याण की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य शिवजी के उपर बिल्वमूल में जल चढ़ाता है, उसे सब तीर्थों में स्नान का फल मिलकर पवित्रता प्राप्त होती है।

बेल अपने यहां बहुत पवित्र माना गया है। सूतिकागार के निर्माण में एवं सूतिका के पलंग की लकड़ी बेल की लेने का चरकादि में विधान है। ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त के द्वारा बिल्व की आहुति करने से अलक्ष्मी का नाश एवं आयुवृद्धि होती है।

वैदिक साहित्य में बिल्व की गणना यूप वृक्षों में की गई है। शाड़्खायन आरण्यक में बिल्वमणि को धारण करने के लिए कहा गया है। इसे सपत्नक्षपण, विष्टम्भ जम्भन, दुःस्वप्न नाशन, रक्षोघ्न, रसायन, प्रजास्थापन विषघ्न और शामक बताया गया है। इसको धारण करने मात्र से कुलज व्याधियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं।

इसको मांगलिक फलों की श्रेणी में रखा जाता है। विवाह में इसके पानी से लड़की को नहलाया जाता है। स्नातककर्म में भी इसकी उपयोगिता वर्णित है। एक मास तक बेल खाकर रहने से श्रीकृच्छ्र नामक प्रायश्चित व्रत होता है। इस व्रत को करनें से मनुष्य धन, पुष्टि तथा स्वर्ग की प्राप्ति कर लेता है। अग्निपुराण का कथन है कि तृतीया व्रत के दिन आषाढ़ मास में बिल्वपत्र आहार के रूप में ग्रहण करना चाहिए। भाद्रपद की अष्टमी में त्रयम्बक का पूजन करके बिल्वपत्र का भक्षण करना चाहिए। पूजन के क्रम में बिल्वपत्रों के प्रयोग से परमगति सुलभ हो जाती है–

'मुक्तिभागी बिल्वपत्रैः शमीपत्रैः परा गतिः'।

वस्तुतः भारतीय परम्परा में बिल्व का वृक्ष औषधीय गुणों से सम्पृक्त उर्वरता का प्रतीक, अत्यन्त पवित्र तथा समृद्धि देनेवाला है। तीन पर्णकों में विभक्त हुए इसके पत्ते सत्त्व, रज और तम–इन तीन गुणों; जागृत, सुषुप्ति और स्वप्न– इन तीनों अवस्थाओं तथा भूत, वर्तमान और भविष्य– इन तीन कालों के प्रतीक माने जाते हैं।

राजाजी राष्ट्रीय उद्यान से गुज्जरों के पुनर्वास का प्रभाव

श्री वी.के धवन एवं श्रीमती स्नेहलता
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

समूचे संसार में पुनर्वास का कोई अच्छा इतिहास नहीं रहा है यह अत्यंत आवश्यक है कि अज्ञात क्षेत्रों के रक्षण, प परीक्षण तथा संरक्षण की आवश्यकता होती है जो कि संतुलित पारितंत्र के संतुलन के लिए मुख्य आधार प्रजातियाँ तथा सर्वोत्कृष्ट प्रजातियाँ बन जाती है। यह पारितंत्र जैव विविधता, वाटरशेड मूल्यों तथा कार्बन निम्नीकरण के रूप में अप्रत्यक्ष संपत्ति प्रदान करते है। रक्षित क्षेत्रों से लोगों का पुनर्वास, आवास, वन्य जीव तथा जैव विविधता के संरक्षण के लिए किया जाता है यह उन लोगों की भलाई के लिए भी किया जाता है जो अपनी मूल सुख सुविधाओं की आकांक्षा रखते है (शिक्षा, रोजगार तथा प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा) जो कि रक्षित क्षेत्रों के भीतर प्राप्त करना कठिन है। इसके अतिरिक्त मानव–पशु संघर्ष भी कम हो जाता है। अतः रक्षित क्षेत्र प्रबन्धन नीति के रूप में पुनर्वास लोगों तथा आवासों दोनों की भलाई के लिए सही है।

यह देखा गया है ऐच्छिक तथा अनैच्छिक दोनों पुनर्वास योजनाएँ जो भारत के विभिन्न रक्षित क्षेत्रों में लागू की गई है लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रही है इसके कारण ही यह परियोजनाएँ आलोचित हो रही है तथा संरक्षण, प्रबन्धन तथा विकास के हथियार के रूप में अप्रभावी हो रही है।

पुर्नवासित लोग अपनी आजीविका के लिए जोखिम उठा रहे हैं। वनों के भीतर प्राकृतिक संसाधनों के पास इन लोगों की आजीविका के लिए विभिन्न पारिस्थितक सेवाएँ है। पुनर्वास के बाद यह संपत्ति उनसे छिन जाती है। दूसरी तरफ यदि वह पुर्नवासित किये जाते हैं तो वह और अधिक लाभों की आकांक्षा रखते हैं तथा जो साधन उपलब्ध करवाए जाते हैं वह उनकी आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए अपर्याप्त होते हैं तथा इससे उन्हें धारणीय आजीविका मिलने में असफलता मिलती है। अभी तक कोई भी सामाजिक, आर्थिक–पारिस्थितक अध्ययन नहीं किया गया है जो कि पुर्नवासित लोगों की दी जाने वाली मूल सुख सुविधाओं की मात्रा तथा गुणवत्ता का निर्धारण कर सके ताकि उनके कल्याण और हित पुनर्वास के बाद की स्थिति को ना बिगाड़े।

राजाजी राष्ट्रीय उद्यान 29° 52'41'' तथा 30° 15'56'' उत्तरी रेखांश तथा 70° 57'7'' तथा 78° 23'3'' पूर्वी रेखांश में भारत के उत्तर दक्षिण में उत्तराखण्ड के हरिद्वार तथा ऋषिकेश के निकट स्थित है इस उद्यान का क्षेत्रफल लगभग 820.42 वर्ग किलोमीटर है। प्रशासनिक तौर पर इसकी आठ रेंजे है पर उद्यान मुख्य रूप से साल (सोरियारबस्ता), फिक्स प्रजाति, रमीनिलिया प्रजाति, बहुनिया प्रजाति, पटैरोस्पैरमम प्रजाति तथा बाँस प्रजाति की वनस्पति का प्रतिनिधित्व करता है यह उद्यान उच्च जैवविविधता मुख्यतः वन्य जीवन आच्छादित है। यह उत्तर दक्षिण एशियाई हाथियों की जनसंख्या तथा टाईगर (पैन्थर टिगरिस) जो दोनों एल्फास मैक्सीमस की प्रजातियाँ खतरे में है उनका घर है। अन्य जंगली जीव जैसे गोरल (नियोरदेस गोरल) चीता (बैन्थेरा पार्डस) धब्बेदार हिरन, साम्भर हिरन आदि इस जैवविविधता में सम्मलित हो गये हैं। पक्षियों की लगभग 300 प्रजातियाँ, 30 आर्द भूमि पक्षियों सहित यहाँ देखे जा सकते हैं। राजा जी राष्ट्रीय उद्यान में कई गलियारे मुख्यतयः मोतीचूर मुख्यमार्ग, हरिद्वार ऋषिकेश राजमार्ग पुल जो कि जिम कार्बाट राष्ट्रीय उद्यान तथा राजा जी राष्ट्रीय उद्यान के बीच हाथियों तथा अन्य जानवरों के प्रवास में सहायता करता है। लगभग 1390 गुज्जर परिवार (दिसम्बर 2009 में लगभग 1610 गुज्जर परिवारों की सूची बनाई गई थी) जो कि खानाबदोश है और वह इन उद्यानों के भीतर रह रहे है।

वह अपने अस्तित्व के लिए पूरी तरह से इस उद्यान पर निर्भर है। प्रवास के लिए यह मौसमी पैटर्न का अनुसरण करते हैं। यह गर्मियों में हिमालय के बुग्याल तथा घास की चरागाहों की ओर चले जाते हैं तथा सर्दियों में नीचे शिवालिक क्षेत्र में आ जाते हैं। इस प्रकार गुज्जरों के ना होने के समय वन पुर्नउत्पादन का अवसर प्राप्त कर लेता है। गुज्जरों की यह पारम्परिक प्रवास की क्रिया मानवोत्पन्न दबाव तथा अन्य सम्बंधित समस्याओं के कारण रूक गई है। दूसरी तरफ वन्य

था। यद्यपि कुछ ने दावा किया कि उनके पूर्वजों को औषधीय पादपों तथा मुख्यतः पशुओं के उपचार के लिए उनके उपयोग का ज्ञान था। गोहरी रेंज के गुज्जरों के लिए स्थिति अच्छी नहीं है।

वह कई प्रकार की बीमारियों से पीड़ित है। उनकी भैंसो को पूरा चारा नहीं मिलता। शिक्षा का उनमें नामों निशान नही है। गुज्जर स्वंय भी पौष्टिक भोजन नहीं खाते हाँलाकि पीने के पानी के स्रोत के रूप में उनके पास हैंड पम्प है। पशुओं के लिए वह पानी नजदीक बह रही पूर्वी गंगनहर से लेते है। वह महसूस करते हैं कि अब परिवर्तन का समय आ गया है। उन्हें भी मुख्य धारा में शामिल किया जाना चाहिए। सूचीबद्ध परिवारों ने कहा कि जब तक उनके बाहर गये लोगों को पट्टा नहीं मिलता वह पार्क से बाहर नहीं जायेंगे।

एक अन्य सर्वेक्षण में गुज्जरों ने बताया कि पूरे उद्यान में (8 रेंज) कुल 42 परिवार सम्मिलित किये गये जबकि 135 अभी बाहर हैं। बैठक के बाद नयी सूची में दिसम्बर 2009 के कुल लगभग 1610 परिवारों (पूर्व में 1390) पर विचार किया गया। गोहरी तथा अन्य रेंजो में गुज्जर मोतीचूर रेंज निकट टिहरी बाँध स्थल पर स्थानांतरित किये गये हैं उन्होंने वनों में अतिक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने अपने डेरे बना लिये हैं। एक यात्रा में ऐसे गुज्जर मिले जो कि अपने परिवारों को उस श्रेणी में नामित करवाने का प्रयास कर रहे हैं जिससे पुनर्वास तथा मुआवजा मिले। गोहरी रेंज के अधिकांश गुज्जरों ने कहा कि जो गुज्जर पहले ही गान्डीखाता में स्थानांतरित कर दिये गये है वे प्रसन्न नहीं है तथा अपने पुनर्वास के निर्णय पर खेद प्रकट कर रहे हैं।

उन्हें आबंटित प्लाटों तथा भूमि पर उनका कोई मालिकाना हक नहीं है सरकार तथा वन विभाग कहते हैं कि उन्हे परमिट, पटटा, रजिस्ट्री 30 वर्षों के पश्चात लगभग 2040 में मिलेगा। भविष्य अनिश्चित है। यह भय भी गोहरी रेंज के गुज्जरों को पुनर्वास से रोकता है।

गान्डीखाता ग्राम

गान्डीखाता ग्राम नजीबाबाद–हरिद्वार रोड पर जो कि हरिद्वार से 21 कि.मी दूर है, पर स्थित है। राजा जी राष्ट्रीय उद्यान से गुज्जरों की पुनर्वास की प्रक्रिया 2002 से प्रारम्भ हुई। वन विभाग की सूचना तथा व्यक्तिगत दौरे से ज्ञात हुआ कि लगभग 800 परिवार इस गाँव में रह रहे हैं। गान्डीखाता में पुनर्वास की प्रक्रिया अभी भी जारी है गुज्जर जो वहां रह रहे हैं उन्होंने दावा किया कि वह वनों से ईंधन की लकड़ी तथा चारा नहीं ला पा रहे हैं। चारे की कमी उन्हे मवेशियों को बेचने को बाध्य कर रही है। अब अधिकांश परिवारों के पास औसतन दो भैंस तथा एक गाय है। कृषि के बारे में जानकारी की कमी के कारण वह खेती से पैसा कमाने में असमर्थ है। पुनर्वास के समय उन्हें आशा थी कि उन्हें शिक्षा मिलेगी परन्तु गान्डीखाता में यह एक ग्राम जैसा क्योंकि एक प्राइमरी स्कूल जिसमें अध्यापको की अनुपस्थिति तथा अध्यापन के प्रति अध्यापकों की विमुखता एक बड़ी समस्या है।

उन्होंने बताया कि चौथी एवं पाँचवी कक्षा के छात्रों को भी नहीं मालूम कि पढ़ा और लिखा कैसे जाता है। वहाँ पर एक डिस्पेंसरी है पर कोई सुविधा नहीं है। बीमारी की स्थिति में वह गाँव के किसी नीम हकीम या हरिद्वार या नजीबाबाद के अस्पतालों में जाते है। गुज्जरों के वैद्य ने बताया कि लोगों का स्वास्थ्य दूषित पानी (हैंडपम्प से पानी) पीने, पोषण की कमी, शौचालयों की अनुपलब्धता के कारण बिगड़ा हुआ है जो कि वनों में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध थे। सर्वेक्षित परिवारों में प्रधान का परिवार भी सम्मिलित था। यह परिवार अपने जीवन में आये परिवर्तनों का स्वागत करता है। प्रधान ने कहा कि भूमि उपजाऊ है यदि खेतों को पानी उपलब्ध करवाया जाए। उसने आगे कहा कि राजनैतिक कार्यक्षेत्र में गुज्जरों का कोई सही प्रतिनिधित्व नहीं है। उच्च शिक्षा, रोजगार तथा अन्य सैक्टरों में आरक्षण की कमी ने समाज के लोगों से प्रतिस्पर्धा करने में बाधा उत्पन्न की है। सर्वेक्षण के दौरान गान्डीखाता ग्राम में वो गुज्जर जिनका राजा जी राष्ट्रीय उद्यान से पुनर्वास किया गया है के बारे में अवलोकन किया गया। अधिकांश लोगों को पूरी तरह से मुआवजा दिया गया। अधिकांश घरों में पक्का शौचालय था। मुस्लिम गुज्जरों की प्रार्थना (समाज) अदा करने के लिए एक मस्जिद निर्माणाधीन है। कृषि भूमि आबंटन की स्थिति में वहाँ कुछ परिवारों को 10 बीघा जमीन मिली तथा कुछ को 9,8, तथा 7 बीघ प्रति परिवार मिली। अधिकांश घर पशुओं के छप्पर सहित पक्के मकान थे। कुछ परिवार आबंटित भूमि में कच्चे मकान बना कर रह रहे थे। लोगों ने तेज हवा में छत उड़ जाने की स्थिति में वृक्षों से कोई भी सुरक्षा ना मिलने की शिकायत की। बिजली उपलब्ध थी परन्तु बिजली के कट भी लग रहे थे कुछ घरों में उनके अपने बोरिंग पम्प सैटस थे। कुछ व्यक्तियों के पास खेत जोतने के

लिए ट्रैक्टर तथा अन्य यातायात सम्बन्धी अन्य क्रियाकलाप थे। कुछ घरों के पास सौर ऊर्जा पैनल थे। पीने के पानी के लिए गाँव से एक अनुकूलतम दूरी पर हैंड पम्प था। गाँव में मुख्य सड़क पक्की थी तथा मोटर गाड़ी उपलब्ध थी। किनारे की सड़कें ईटों की बनी हुई थी। गाँव से पास पूर्वी गंग नहर बह रही थी। विभाग की अनुमति से इसके द्वारा कृषि खेतों की सिंचाई की जा सकती है। कुछ विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए नजदीकी डिग्री कालेजों से शिक्षा प्राप्त करने जा रहे थे।

अभी भी पंचायत महत्वपूर्ण फैसले लेती है तथा विवादों का समाधान करती है। यद्यपि नगरीय आवरण के कारण कुछ लोग पुलिस तक भी पहुँच जाते हैं। मानव–पशु विवादों को वहाँ प्रस्तुत किया जाता है। लोग फसलों के नष्ट होने तथा जीवन को खतरा विशेषकर हाथियों से, की शिकायत करते हैं पहले जब वे जंगल में निवास करते थे तो वह हाथियों के आक्रमण करने पर पेड़ों पर चढ़ जाते थे। कुछ गृहणियों ने सर्वेक्षण में कहा कि वह जंगल में ही खुश थे जिन अपेक्षाओ के साथ वह जंगल से गान्डीखाता में स्थानांतरित हुए थे वे अपेक्षाएँ पूरी नही हुई। उनके कुछ नाते रिश्तेदार अभी भी राजाजी में ही हैं उन्होंने उन्हें बाहर ना जाने की सलाह दी थी जबकि दूसरी तरफ कुछ परिवारों ने उद्यान से अपने पुनर्वास का स्वागत किया तथा अपनी प्रसन्नता प्रकट की। वह कहते है कि अब उन्होने शिक्षा के महत्व तथा अन्य बुनियादी सुविधाएँ, जो वह खानाबदोश जीवन शैली के कारण प्राप्त नहीं कर पाये थे, को समझा है। उनकी आय बढ़ रही है, बच्चे स्कूल जा रहे हैं। वे सभ्य समाज के विभिन्न नये पहलुओ से मिल रहे थे जो उन्होने नियत किये थे।

2. पथरी ग्रामः

पथरी ग्राम पहला तथा सबसे पुराना क्षेत्र है जहाँ राजा जी राष्ट्रीय उद्यान से गुज्जरों को पुनवार्सित किया गया है। पथरी ग्राम रूड़की से 11 किलोमीटर पूर्व में है यहाँ पुनर्वास के प्रथम चरण में राजाजी राष्ट्रीय उद्यान से 512 गुज्जरों परिवारों का पुनर्वास किया गया। पुनर्वास से पहले गुज्जर प्रतिनिधियों को सरकार के द्वारा बैठक के लिए आमंत्रित किया गया तथा उनके साथ एक वृहद विचार विमर्श के पश्चात प्रथम चरण के 512 परिवारों के पुनर्वास के लिए पत्थरी ग्राम स्थल को अन्तिम रूप दिया गया।

पुनर्वासः पैकेज के कुछ निश्चित प्रावधान थे।

1. इसमें 0.05 हैक्टर भूमि घर तथा पशुशाला तथा 0.01 हैक्टर भूमि चारे के लिए थी।
2. प्रत्येक घर को बिजली उपलब्ध करवाई जायेगी।
3. प्रत्येक घरों में हैंड पम्प होने चाहिए।
4. प्रत्येक गुज्जर परिवार को दो कमरे वाला पक्का मकान, अलग से रसोई घर, चारे को रखने के लिए गोदाम तथा शौचालय होगा। पुनर्वासित लोगों के लिए सार्वजनिक शौचालय का प्रावधान भी नहीं रखा गया।
5. अगले तीन सालों के लिए चारे की कीमत का 25% वहन करने की सरकार ने योजना बनाई तथा एक सरकारी डेयरी को दूध बेचने का प्रावधान भी बनाया।

हाँलाकि जमीनी हकीकत कुछ अलग है। जब इस ग्राम का दौरा किया गया तथा पुनर्वास पश्चात् समीक्षा के लिए सर्वेक्षण किया गया तो कुछ तथ्य ध्यान में आये। घरों की दीवारों में खराब निर्माण के कारण दरारें आ गई थी। कमरों में सही प्रकाश के लिए खिड़किया नही थी तथा इसमे रहना विशेषकर गर्मियों में मुश्किल था। गुज्जर परिवारों ने इन पक्के घरों के आगे गुज्जरों के बनावट वाले घरों का निर्माण कर लिया था ताकि वे इसका प्रयोग गर्मियों में कर सकें। मुश्किल से कुल निर्मित घरों में से 30% के साथ पशुओं के छप्पर थे। पथरी ग्राम का विकास वन क्षेत्र को हटा कर किया गया था जिसके कारण पेड़ों की जड़ों ने खेती करने में मुश्किल खड़ी की। यद्यपि भूमि उपजाऊ थी फिर भी जड़ों की समस्या के कारण इसने कृषि क्रियाकलापों के योग्य होने में कई वर्ष लिए। कुछ लोगों ने बताया कि प्रत्येक घर में हैंड पम्प उपलब्ध नहीं था या काम नहीं कर रहा था। उन्हें अपने खर्च पर हैंड पम्प का संस्थापन करवाना पड़ा। सर्वेक्षण के दौरान सभी घरों का दौरा करने के पश्चात किसी भी घर में गोदाम का निर्माण नहीं किया गया था। लोग एक कमरे को रहने तथा दूसरे कमरे को गोदाम के रूप में प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने अनियमित तथा परिवर्तनशील बिजली बिलों की शिकायत की। पानी का स्तर लगभग 80–100 फीट था जिसके कारण हैंड पम्पों में पानी दूषित हो रहा था। इस दूषित पानी से पथरी ग्राम में रहने वाले लोगों को पीलिया, टी.बी, तथा पेट से सम्बन्धित कई बीमारियाँ हो रही थीं। डिस्पैन्सरी काम नहीं कर रही थी जिसके कारण गुज्जरों को

जीव (सुरक्षा) अधिनियम 1972 तथा प्रोजेक्ट टाईगर 1973 के प्रारम्भ करने के साथ मुख्य क्षेत्र सभी प्रकार की मानवीय क्रियाओं रहित कर दिया गया है तथा मध्यवर्ती क्षेत्र को 'संरक्षण उन्मुख भूमि उपयोग' कहा गया है। (प्रत्येक आरक्षित बाघ के लिए प्रबन्धन योजना बनाई गई जो कि सभी प्रकार के मानव शोषण तथा जैविक व्यवधान को समाप्त करने तथा मध्यवर्ती क्षेत्र में क्रियाकलापों के परिमेयकरण के आधार पर था।)

राजाजी राष्ट्रीय उद्यान से गुज्जरों के पुनर्वास का उद्देश्य वनों से दबाव को कम करना तथा राजा जी राष्ट्रीय उद्यान योजनाओं की शर्तें, प्रोजेक्ट एलीफेंट तथा प्रोजेक्ट टाईगर के अधीन और अधिक उत्तम सुविधाओं के द्वारा गुज्जरों के जीवन स्तर में सुधार करना है।

प्रेक्षण – जिन का पुनर्वास करना है, किया जा रहा है तथा किया जा चुका है उनकी समीक्षा करते हुए निम्नलिखित प्रेक्षण रिकार्ड किये गये।

1. राजाजी राष्ट्रीय उद्यान की गोहरी रेंज:

यह रेंज राजा जी राष्ट्रीय उद्यान के उत्तर दक्षिणी भाग में स्थित है। गुज्जर यहां कई पुश्तों से रह रहे है। वह वनों, इसके जीव विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान तथा उद्यान में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातियों के उपयोग को भली प्रकार से समझते हैं।

प्रत्येक परिवार औसत 15–20 भैंसे रखता है। ज्यादातर परिवारों में तीन पीढ़ियाँ है। अधिकांश व्यस्कों को पशुओं को चराने ले जाने का दायित्व दिया गया है। वह दूध बेचते है तथा प्रति माह 3,500 से 4,000 कमाते हैं। दूध गुज्जरों के आहार तथा स्थाई कमाई का मुख्य स्रोत है। वह हमेशा पैसे उधार देने वालों के कर्जे के नीचे दबे रहते हैं जो अक्सर दूध इक्ट्ठा करते है तथा शहरों में दूध बेचते हैं। चिकित्सा, विवाह, अतिरिक्त भैंसे खरीदने के लिए तथा आवश्यकता पड़ने पर वह पैसा उधार देने वाले से पैसा लेते है तथा कृतज्ञता में अपना दूध उन्हें कम दामों पर बेचते हैं। इस कारण वह हमेशा इस बुरे ऋण चक्र में फंसे रहते हैं। गर्मियों में बहुत सारी घास होती है परन्तु सर्दियों में गुज्जर पत्तों के लिए पेड़ों को छांटते है तथा उन्हे पशु आहार के लिए जमा कर लेते हैं।

जब उन गुज्जरों से बातचीत की गई तो उन्होंने बताया कि वन विभाग अब राजाजी राष्ट्रीय उद्यान के जंगल में पशु चराने की अनुमति नहीं दे रहा है जबकि जिम कार्बेट टाईगर रिजर्व में रहने वाले अभी भी अनुमति प्राप्त कर रहे हैं। कभी भी किसी ने उन्हें पट्टा या अनुमति के लिए नहीं कहा। उन्होंने कहा कि वह पीढ़ियों से इस उद्यान में रह रहे हैं यहाँ तक कि उनके दादा दादी ने भी इसके बारे में कभी नहीं कहा ना सोचा। परन्तु 1976 में राजा जी राष्ट्रीय उद्यान बनाने का निर्णय लिया गया तब वास्तविक समस्या प्रारम्भ हुई। उन्होंने आगे बताया कि उन्हें मारा गया तथा उनके पशु जब्त कर लिये गये। अपने पशु को छुड़ाने के लिए उन्हे 25 से 40 रूपये दिये। उन्हे बाजार से लकड़ी लाने की अनुमति नहीं दी गई। यह लकड़ी के टुकड़े चैक नाके पर ही रोक लिये जाते है। गोहरी रेंज में किसी भी प्रकार की काँट–छाँट लकड़ी इक्ट्ठा करना तथा पशु–चराना पूरी तरह से प्रतिबंधित है यहाँ तक कि उनकी मकानों की छत बनाने के लिए भी लकड़ी नहीं ले जाने देते। इसलिए वह पालीथीन का प्रयोग कर रहे है वह इसे बाजार से खरीदते है। जब भारी वर्षा होती है या हवा चलती है तो यह पालीथीन की छतें बर्बाद हो जाती हैं और कभी–कभी तेज हवाओं में उड़ जाती हैं। गोहरी रेंज के गुज्जरों ने बताया कि वह अपनी चारपाई के पाए बनाने के लिए भी लकड़ी के लट्ठों का प्रयोग नहीं कर सकते। वह बाजार से (लोहे) धातु का बना हुआ ढांचा खरीद कर लाते हैं।

जब गोहरी रेंज के गुज्जरों की मासिक आय में खर्च पर सर्वेक्षण किया गया तो उन्होंने बताया कि अधिकांश धन पशुओं के लिए चारा खरीदने में तथा भोजन, स्वास्थ्य दवाईयाँ तथा अन्य खर्चों तथा समतल से पहाड़ों तथा पहाड़ों से समतल प्रवास पर खर्च हो जाते हैं। उन्होंने बताया कि पुनर्वास के लिए गुज्जरों की सूची बनाते समय उन पर से अधिकांश ऊँचे हिमालय पर चले गये। उन्हें सूची में सम्मिलित नहीं किया गया उनके नाम पर कोई पट्टा जारी नहीं किया गया। जब वह वापिस राजा जी तथा गोहरी रेंज में आये तो उन्हे वहाँ से जाने के लिए कहा गया क्योंकि उनका ठहरना गैर कानूनी था। 2006 तक, सूची के अनुसार 1390 परिवारों को मुआवजे तथा पुनर्वास के लिए सम्मिलित किया गया। इनमें से गोहरी रेंज में से 13 परिवार चले गये थे। दिसम्बर 2009 में एक अन्य बैठक बुलाई गई तथा कुल 20 परिवारों को पुनर्वास तथा मुआवजे के लिए योग्य घोषित किया गया हाँलाकि लगभग 42 परिवार अभी भी सूची से बाहर है जिन्हें पट्टा दिया जायेगा। गुज्जरों को उनके ईद–गिर्द पौधों के बारें में कोई इथनों–वनस्पतिक ज्ञान नहीं

नजदीकी नीम हकीमों तथा रजिस्टर्ड चिकित्सा प्रशिक्षकों के पास लंडौर, जवालापुर ग्राम तथा रूड़की शहर में जा रहे थे। वहां कोई मध्यवर्गीय स्कूल नहीं था। पथरी में प्राइमरी स्कूल से अध्यापकों की अनुपस्थिति नहीं पाई गई। हाँलाकि मध्य दिवस भोजन तीन चार दिनों में केवल एक बार दिया गया था।

पुनर्वास निचले स्थानों पर किया गया है जिसके कारण बरसात के मौसम में अधिकांश क्षेत्रों में जल भराव हो जाता है। साक्षात्कार के दौरान लोगों के बताया कि मानव पशु संघर्ष का कोई केस पथरी बाग में पुनर्वास के पश्चात् नहीं देखा गया है। यद्यपि प्रति परिवार के हिसाब से समय के साथ लोगों के पास पशुओं की संख्या कम हो गई है। स्थिति अब गान्डीखाता की तरह नहीं है। गुज्जरों द्वारा गोहरी तथा गान्डीखाता रेंज में उपलब्ध कार्रवाई सूचना द्वारा तथा पथरी रेंज में पहला सर्वेक्षण किया गया। लगभग 50 से 70 विवादास्पद परिवार पत्थरी ग्राम में रह रहे थे।

गान्डीखाता के गुज्जरों को सरकार के वादों पर भरोसा है कि उन्हें उस जमीन, जिस पर उन्हे स्थानांतरित किया गया है, का कानूनी पट्टा दिया जायेगा। गान्डीखाता के गुज्जर पथरी ग्राम के गुज्जरों से अधिक अच्छे कृषि तरीकों को अपना रहे हैं। कुछ किसान अपने खेतों को जोतने तथा यातायात के लिए ट्रैक्टरों का उपयोग कर रहे हैं। उनके बच्चे स्कूल जा रहे हैं। उनके बच्चे कालेज भी जा रहे हैं। उन्हें आशा है कि उनके बच्चे किसी दिन सरकारी नौकरी प्राप्त करेंगे। गान्डीखाता के गुज्जरों के घर पक्के है तथा उनके पास मूल सुख–सुविधाएँ भी हैं। कुछ घरों में रेडियो टेलीविजन, मोबाइल फोन इत्यादि भी देखे गये। गान्डीखाता गाँव के व्यस्क, बूढ़े तथा युवतियाँ देश तथा संसार में क्या हो रहा है के प्रति पत्थरी गाम के गुज्जरों से अपेक्षाकृत अधिक जागरूक है।

देश के अन्य भागों में पुनर्वास के विषय में अनुशंसाएँ:

रक्षित क्षेत्रों से लोगों के पुनर्वास के समय कुछ बातों पर विचार होना चाहिए जो कि निम्नलिखित हैं–

1. परिवारों, जिनका पुनर्वास करना हो या जिन्हें मुआवजा दिया जाना हो सम्पूर्ण परिवारों की गिनती के पश्चात् दिया जाना चाहिए क्योंकि यदि गिनती के समय कोई परिवार बाहर हो तो वह परिवार लौट कर अपने मूल स्थान पर आयेंगे तब वह पुनर्वास योजना में अव्यवस्था फैला सकते हैं।
2. एक बार यदि परिवारों की गिनती कर मुआवजा दिया जा चुका हो, तो उन्हें उस स्थान से पुर्नवासित कर देना चाहिए नहीं तो अधिक समय होने पर अधिक परिवार हो जायेंगे क्योंकि उनके भी विवाह पश्चात् अलग परिवार होंगे। (इस स्थिति में वह भी मुआवजे का दावा करेंगे।)
3. मुआवजे के रूप में दी जाने वाली अधिकांश राशि 'फिक्स डिपाजिट' के रूप में देनी चाहिए। यदि सारा धन या धन का अधिकांश भाग नकद रूप में उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसका पुनर्वास किया गया है तो वह धन को गलत आदतों या बेकार जगहों पर व्यय कर सकता है।
4. पुनर्वास की शर्तें तथा नियम प्रारम्भ से ही स्पष्ट होने चाहिए। कुछ समझौते समय की मांग को देखते हुए किये जा सकते हैं परन्तु उनके प्रतिनिधियों से पूरा विचार विमर्श करने के पश्चात् जिनका पुनर्वास किया जा रहा है।
5. पुनर्वास के पश्चात् पुनर्वासित क्षेत्र के लोगों में परिवर्तन तथा अन्य विकास को देखने के लिए समय–समय पर समीक्षा की जानी चाहिए।
6. पैकेज तथा सुविधाओं की सहायता जो वह सरकार से माँगते है उसका आकलन सहभागिता पूर्ण–ग्रामीण मूल्यांकन तकनीक द्वारा किया जाना चाहिए। मैटरिक्स स्कोरिंग पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। जब उनका पुनर्वास या पुनर्स्थापन होगा तथा जिस सुविधा को सबसे अधिक प्राथमिकता प्राप्त हो उसे सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाए।
7. सबसे अधिक प्राथमिकता कंकरीट के घरों को दी गई थी। खेती के लिए जमीन तीसरी सबसे बड़ी प्राथमिकता थी जबकि अच्छे दूध के लिए उन्नत पशु धन तथा प्रबन्धन चौथी प्राथमिकता थी।
8. गुज्जरों को दैनिक वेतन कर्मियों या वन रक्षकों के रूप में कार्य करने में बिल्कुल रूचि नहीं थी परन्तु उनके मन में अपने लिए या अगली पीढ़ी के लिए सरकारी नौकरी की दृढ़ इच्छा थी। दूसरी बड़ी संख्या अधिक दूध देने वाली गायों तथा भैंसो के दूध का काम करने वालों की थी। अपनी भैंसों के दूध से अपनी जीविका चलाने वालों की संख्या चौथे पायदान पर थी जिसमें लघु उद्योग (सिलाई, मूल्य वृद्धि, दुग्ध उत्पाद, दुकाने, कढ़ाई इत्यादि) थे। कृषि तथा बकरी पालन करने में उन्हें रूचि नहीं थी क्योंकि उन्होंने शताब्दियों से पारम्परिक रूप से कभी खेती नहीं की तथा उन्हें फसल रोपाई की कला का ज्ञान नहीं है।

हाइमेनोप्टेरा (मधुमक्खियां, बर्र तथा चीटियाँ) के कुछ रोचक तथ्य

डॉ. सुधीर सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

विश्व में कीटों की 140 करोड़ से अधिक प्रजातियाँ मिलती हैं जो कि इस धरा पर उपस्थित जीवन का 80 प्रतिशत हैं। इनके हाईमेनोप्टेरा जो कि कोलियोप्टेरा के बाद दूसरा वृहत कीटगण की 1,30,000 प्रजातियां पाई जाती हैं।

हाइमेनोप्टेरा मनुष्य के लिए तीन कारणों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। पहला इसके अंतर्गत आने वाली मधुमक्खियां है जो मधु और मोम बनाती हैं, दूसरा इसके अंतर्गत आने वाले परजीवाभ्य तथा चीटियां जो कि फसलों को क्षति पहुंचाने वाले नाशीकीटों को नष्ट करते हैं (चीन में 4000 साल पहले ओइकोफाइला नामक चीटियों को फलों के उत्पादन में वृद्धिकारक माना जाता था और इसलिए इनको फलोद्यानों में पाला जाता था)। तीसरे और संभवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण इसके अंतर्गत परागण करने वाले कीटों का पाया जाना है। परागण करने वाले कीटों द्वारा दी गई सेवाओं की कीमत प्रतिवर्ष खरबों रुपये में हो सकती है। इनके द्वारा किया जाने वाला यह कार्य इतना महत्वपूर्ण है यदि हाइमेनोप्टेरा अचानक भूपटल से लुप्त हो जाएं तो मानव जाति भीषण संकट में पड़ सकती है।

भौंरे अच्छे परागणकर्ता होते है अधिकांश पौधों तथा पशुओं का अस्तित्व कीटों द्वारा किये गये परागण पर निर्भर करता है।

जैविक विशेषताएं

अंडक्षेपण तंत्रः

हाइमेनोप्टेरा में अंडक्षेपक अंडे देने तथा पोषक के शरीर में डिम्भकों के विकास के लिए उचित शारीरिक दशाएं निर्मित करने के लिए पदार्थों को भीतर डालने के लिए रूपांतरित

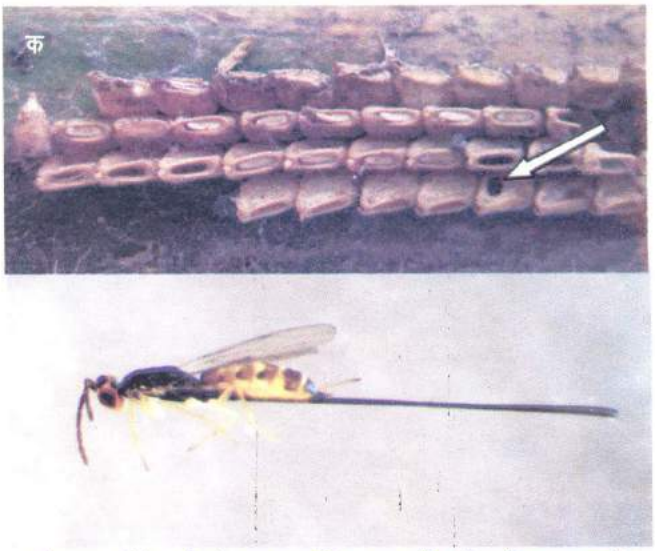

क) एक छोटे बर्र के द्वारा ग्रासित एक टिड्डे की अण्डफली। जो कि मुश्किल से 4 मि.मी. लम्बी है। वह उदगम छिद्र देखिए जहाँ से परजीवी ख) अण्डे को मार कर बाहर निकला।

होते हैं। इस प्रकार हाइमेनोप्टेरा में अंडक्षेपण तंत्र न केवल अंडे देने के काम आता है बल्कि वह बच्चों की देखभाल तथा सुरक्षा के लिए भी प्रयोग होता है।

लिंग निर्धारण तंत्रः

हाइमेनोप्टेरा में मादाएं डिप्लोइड होती हैं तथा नर हैप्लोइड होते हैं।

कौमार्यजननः

हाइमेनोप्टेरा में कौमार्यजनन निम्नलिखित प्रकार का पाया जाता है :

1. **अरहिनोटोकी** : इसके अंतर्गत निषेचित अंडे मादा में जबकि अनिषेचित नर में विकसित होते हैं। इस प्रक्रिया में मादा अपने संतति का लिंग निर्धारण करती है।
2. **थैलीटोकी** : इसमें मादा विभिन्न अलैंगिक तरीकों को प्रयोग में लाते हुए डिप्लोइड मादा संतति उत्पन्न करती है। इस प्रक्रिया में नरों का उत्पादन या तो होता ही नहीं अथवा कई पीढ़ियों में कभीकभार होता है।
3. **डयूटैरोटोकी** : प्रजनन की इस प्रक्रिया में दोनों नर और मादा निषेचित अंडों से ही पैदा होते हैं।

परजीवी जीवन शैली

हाइमेनोप्टेरा की लगभग 80 प्रतिशत प्रजातियां परजीवाभ्य हैं। ये एक विशाल समूह को अपना शिकार बनाते हैं और इस प्रकार पारितंत्र के एक महत्वपूर्ण घटक हैं। कुछ तो सफलतापूर्वक जैवकीय नियंत्रण कार्यक्रमों में आर्थिक महत्व के नाशी जीवों के नियंत्रण में प्रयोग हो रहे हैं। परजीवाभ्य कई प्रकार की परजीवी रणनीति अपनाते हैं यथा :

1. स्थिर जीव (इडियोबायोन्ट) रणनीति

यह वे परजीवाभ्य होते हैं जो अपने आश्रय के विकास को रोक देते हैं। अधिकांश इडियोबायोन्टस छुपे हुए आश्रयों पर

एक तितली का कोशित एक चैलसिड परजीवी द्वारा मारा गया। छिद्र को देखें जहाँ परजीवी कोशित शरीर का उपयोग करके बाहर निकल रहा है।

आक्रमण करते हैं। इसके लिए इनके अंडक्षेपक विशेष तरह से विकसित होते हैं जो कि आवरण सतह को भेदते हुए आश्रय तक पहुँच जाते हैं। अधिकांश इडियोबायोन्टस बाह्यजीवाभ्य होते हैं। ये किसी अंडक्षेपण के दौरान किसी भी प्रकार की क्षति से बचने के लिए एक विष आश्रय के शरीर में प्रविष्ट करा देते हैं जिससे आश्रय या तो मर जाता है अथवा लकवाग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार परजीवाभ्य के विकास के मार्ग से खतरा समाप्त हो जाता है। यह विष आश्रय के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाता है जो उसे किसी सुरक्षित जगह पर जाने के लिए विवश करता है जिससे कि परजीवाभ्य को और भी सुरक्षा प्राप्त हो जाती है।

2. गतिशील जीव (कायनोबायोन्ट) रणनीति

अधिकांश परजीवाभ्य खुले में विचरण करने वाले अथवा स्वल्प छिपे आश्रयों के अवयस्क अवस्थाओं को अपना शिकार

बुसैन्स पर एफिड बर्रो द्वारा ग्रसित किये जाते हैं। उनके शरीरों में छिद्र देखिए जहां से वयस्क परजीवी और अधिक एफिड का परभक्षण करने के लिए निकल रहे हैं।

बनाते हैं। ये अंडक्षेपण के पश्चात उनके विकास को पर्याप्त समय तक होने देते हैं। अधिकांश गतिशील जीव परजीवाभ्य अंतः परजीवी होते हैं।

3. यूथी परजीवी

ये वे परजीवी होते हैं जो एक आश्रय के अंदर बहुत से परजीवाभ्य विकसित होते और निकलते हैं। यह दो कारणों से होता है प्रथम एकाधिक अंडक्षेपण से दूसरा बहुभ्रूणिक विकास से। बहुभ्रूणिक विकास की पराकाष्ठा एनसिरटिड एक वंश कोपीसोडोमा में मिलती है जिसमें एक अंडे से कई हजार परजीवाभ्य उत्पन्न होते हैं।

4. बहुपरजीविता

इस प्रकार की परजीविता में एक आश्रय के अंदर अनेक प्रजातियों के परजीवाभ्य विकसित होते हैं।

5. सुपरपरजीविता

इस प्रकार की परजीविता में एक आश्रय के अंदर एक परजीवाभ्य कई बार आक्रमण करता है अथवा एक ही प्रजाति के अनेक परजीवाभ्य आश्रय पर आक्रमण करता है।

एक अंजीर बर्र. प्रत्येक अंजीर वृक्ष प्रजातियों के अपने विशिष्ट बर्र होते है केवल वे ही उनके फूलों का परागण कर सकते हैं। यदि ये कीट खत्म हो जायेगे तो ये वृक्ष भी खत्म हो जायेंगे।

6. हाइपरपरजीविता

इस प्रकार की परजीविता में परजीवाभ्यों के ऊपर अन्य परजीवाभ्य भक्षण करते हैं। इन्हें द्वितीयक परजीवी कहा जाता है। इसी प्रकार क्रमशः तृतीयक और चतुर्थक परजीवाभ्य भी पाए जाते हैं।

7. आश्रय भक्षण

बहुत से वयस्क हाइमेनोप्टेरा अपने जीवनयापन के लिए काबोहाइड्रेट पर निर्भर करते हैं और इसके लिए वे मधुस्रावों (हनीडयू) पराग और अन्य पादक स्रावों पर आश्रित होते हैं किंतु स्थिर जीव परजीवाभ्य की मादा जो कि अपने अपेक्षाकृत बड़े अंडों के लिए अधिक प्रोटीन चाहती है आश्रय के शरीर पर अंडक्षेपण के दौरान हुए घाव से रिसते स्राव (हीमोलिम्फ) पर भक्षण करती है।

बर्र का आवास–पेपर बर्र ने मानवों को कागज निर्माण तथा बहुमंजिला इमारतें बनाने का विचार दिया। वे सूंडियों का पहले ही भक्षण कर लेती हैं तथा हमारी फसलों को विभिन्न नाशी कीटों से बचाती है।

8. आश्रय की खोज और अंडक्षेपण

हाइमेनोप्टेरा अपने आश्रय को खोजने में अत्यंत दक्ष होते हैं। ये इसके लिए एकाधिक संकेतों का उपयोग करते हैं जिन्हें निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है।

क. आश्रय के आश्रय–स्थल की खोज

यह विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय घटकों यथा तापक्रम, छाया, आर्द्रता, वनस्पतिक संघटना इत्यादि तथा पादपों एवं अन्य संबंधित जीवों द्वारा स्रावित सेमियो रसायनों की गंध पर निर्भर करता है जहां पर आश्रय के होने की संभावना होती है।

ख. आश्रय की खोज

इसमें आश्रय की रसायनिक अथवा भौतिक स्पंदनों को

एक ब्राकोनिड बर्र एक लकड़ी के लट्ठे के भीतर रह रहे भौंरे के लार्वा का भक्षण करने के लिए लकड़ी के लट्ठे में छेद कर रही है। ब्राकोनिडस महत्वपूर्ण कीट जैव नियंत्रण एजेंट होते है।

ग्रहण कर परजीवाभ्य आश्रय अथवा उसके आवरण को स्पर्श करता है।

ग. आश्रय का स्वीकरण

इसमें परजीवाभ्य अपने स्पर्शकों तथा अंडक्षेपक के द्वारा आश्रय की पड़ताल करता है।

शल्यकी जीवन शैली

इसके अंतर्गत डंक मारने वाले वे हाइमेनोप्टेरा आते हैं जो कि चीटियों, मधुमक्खियों और बर्रों के नाम से जाने जाते हैं। इनमें अंडक्षेपकों के कायान्तरण के द्वारा विभिन्न प्रकार की

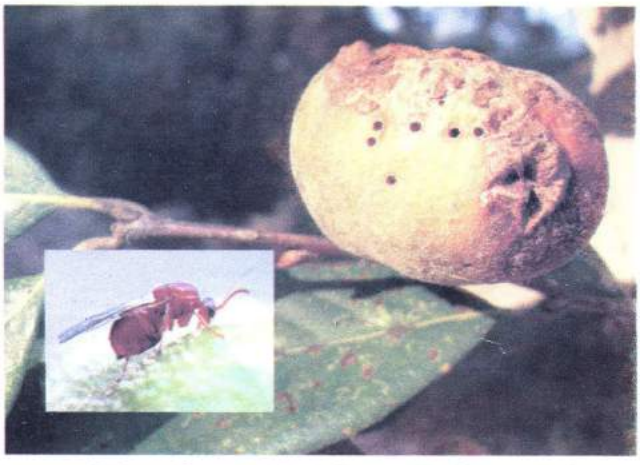

साइनिपिड बर्रे बांज (ओक) में गाल निर्माण करती है। ये गाल टैनिन तथा अन्य दुर्लभ रसायनों के भरपूर स्रोत होते है।

प्रजातियाँ विकसित हुईं। इनके अंतर्गत सामाजिक सहयोग एक प्रमुख उल्लेखनीय बिंदु है।

मधुमक्खियां और बर्र

मधुमक्खियां जहां अपने डिम्भकों को पालने के लिए पौधों से पराग एकत्रित कर मधु का निर्माण करती हैं वहीं बर्र अपने डिम्भकों के लिए अन्य लकवाग्रस्त किए गए संधिपादों (आर्थ्रोपोड) को उपलब्ध कराती हैं। सामाजिक मधुमक्खियों के अतिरिक्त एकाकी मधुमक्खियों की भी विश्व में लगभग 20000 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं। इन मधुमक्खियों में एक अकेली वयस्क मादा अपने नीड़ का निर्माण करती है और

एक छेदक बर्र मैदान में अपना घोसला बनाने के लिए छेद कर रही है जहाँ वह सूंडियों तथा मकडियों का अपने विकसित हो रहे बच्चों के लिए भोजन के रूप में प्रबन्ध करेगी।

उनमें अंडे देने के बाद उनका पालन पोषण करती है। मधुमक्खियों की तरह एकाकी बर्र भी पाएं जाते हैं। मधुमक्खियों, बर्रों तथा चीटियों की सामाजिक संरचना से सभी भली भाँति परिचित हैं।

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

दाने आये घर के अंदर बहुत दिनों के बाद,
धुंआं उठा आंगन से ऊपर बहुत दिनों के बाद,
चमक उठीं घर भर की आंखें बहुत दिनों के बाद,
कौए ने खुजलाई पांखें बहुत दिनों के बाद,

– 'नागार्जुन'

माटी से माटी मिले, खोके सभी निशान
किस में कितना कौन है, कैसे हो पहचान

लालित्य

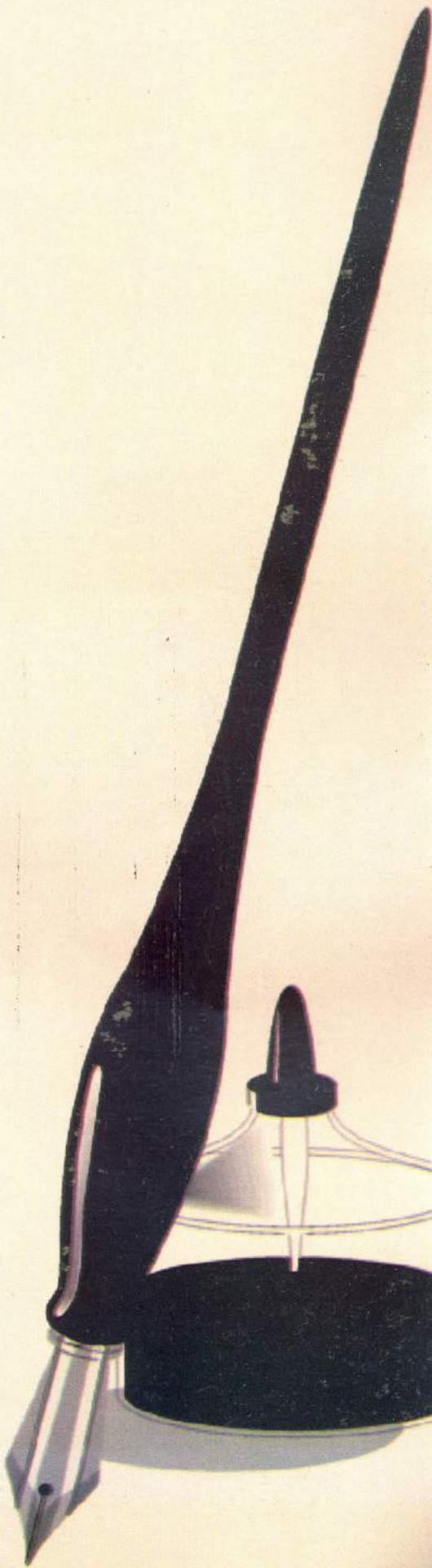

मेंहदी

डॉ रवीन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

परिवर्तन के विडंबना की बिसात भी क्या खूब है
समय की धुरी पर घूमते अर्न्तद्वन्दों का
अनोखा चक्कर है जिनका
सही निराकरण तो बहुत कम होता है पर
गलतफहमियाँ होती हैं अकसर
अर्न्तद्वन्दों का सही निराकरण न होने पर
मन खीझ उठता है
मुँह बन्द हो जाता है
और चारों ओर अभिव्यक्ति होती है
शून्य की
मन की बातें मन में रह जाती हैं
और गलत आधारहीन बातें
दूसरों के मन में
एक के लिये प्रभाव बन जाती हैं
जो जन्म देती हैं
उदासी को, सूनेपन को, निराशा को
क्षण–क्षण व्यक्तित्वों की परख होती है
ज्यों–ज्यों हमारे मस्तिष्क
विकसित होते जाते हैं
मानसिक तनाव बढ़ाते जाते हैं
और अनुभूति होती है
शिथिलता की, आलस्य की
हम देखते हैं सिर्फ वाह्यावरण को
और समझ लेते हैं कुछ
जो बहुधा बेमेल और
असत्य होता है
सभी नहीं जानते कि
कुछ जीवन मेंहदी तुल्य होता है
जो दृष्टिगोचर हरा भरा तो अवश्य
पर
आन्तरिक और वास्तविक रूप से
लहू–लुहान होता है

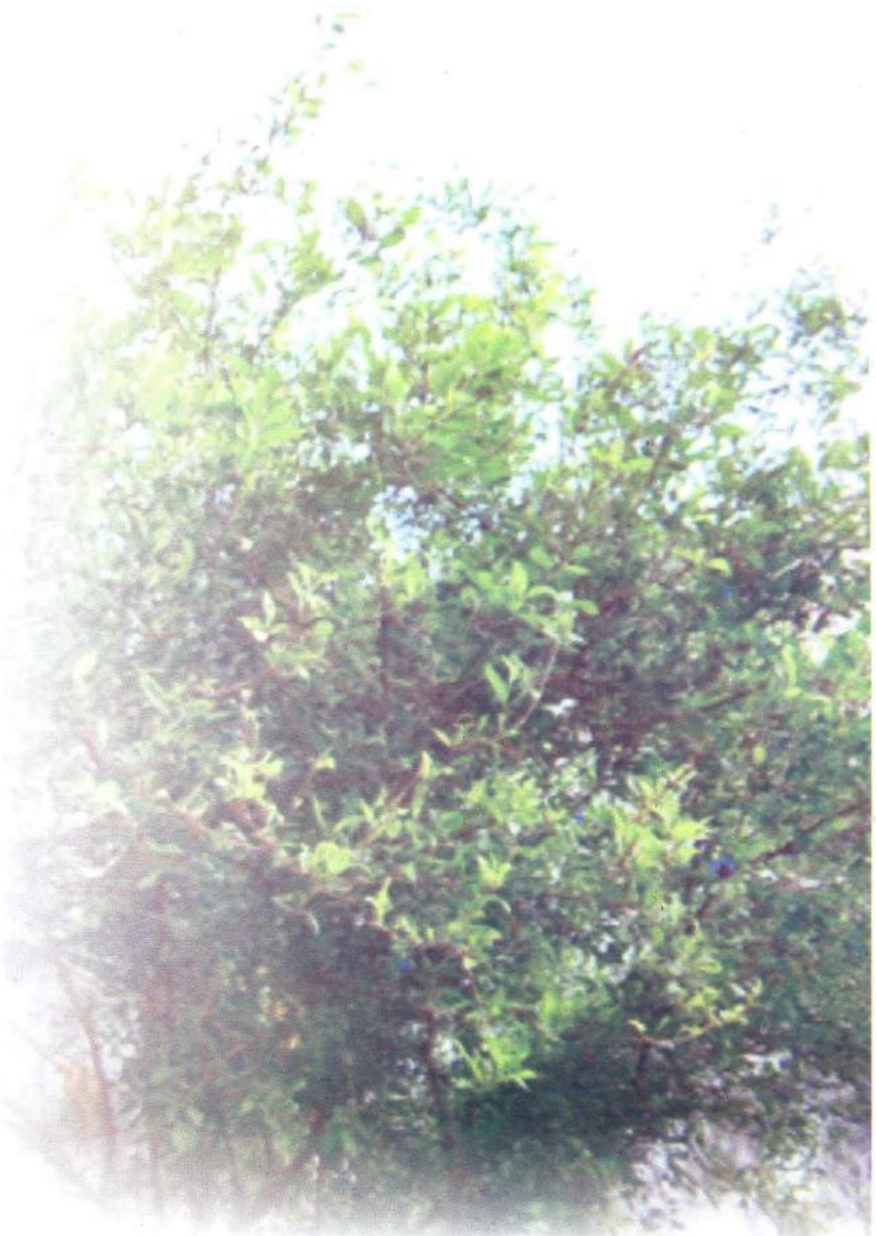

ठहरा हुआ इन्सान

डॉ. रवीन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

उन्नति व अवनति के मध्यमान
ठहरा हुआ इन्सान
सागर की तरह गम्भीर और
गहरा हुआ इन्सान
सेतु सा इस पार और उस पार
जुड़ता हुआ इन्सान
बुलबुले सा क्षितिज में
उड़ता हुआ इन्सान
भविष्य का सोचता और
अतीत को कोसता हुआ इन्सान
तमाम गलतियों पर आप को
रोसता हुआ इन्सान
कुघटनाओं को मन पर
बोझता हुआ इन्सान
पश्चाताप की आग में
तपता हुआ इन्सान
स्नेह व अनुराग को आप में
समाता हुआ इन्सान
साथियों की भीड़ में आप को
अकेले पाता हुआ इन्सान
आवेशों में बहता हुआ इन्सान
परिस्थितियों को सहता हुआ इन्सान
चर्चाओं की बयार में बहता
एक कहकहा सा इन्सान

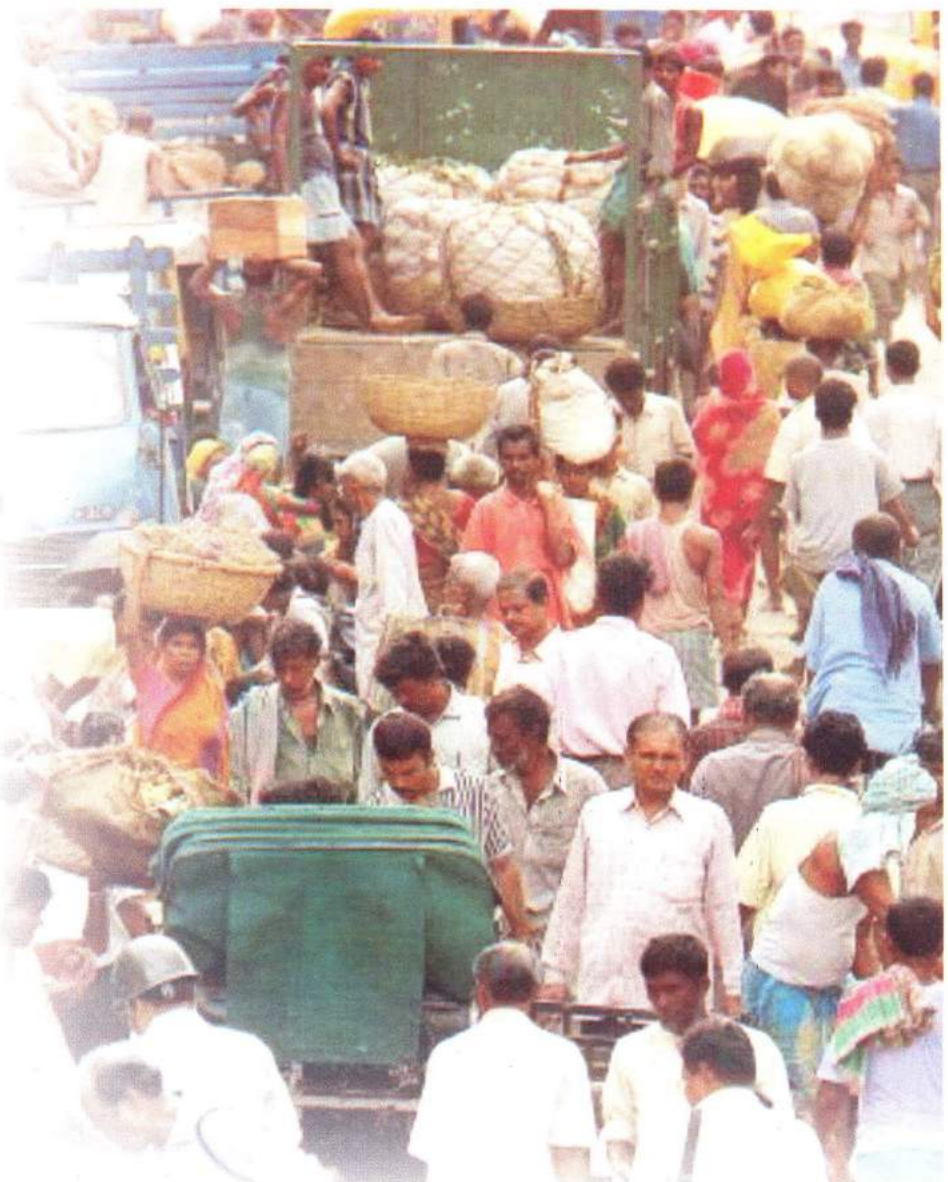

पर्यावरण और मानव-मन

श्री सुनील दत्त शर्मा
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

धरती से चाँद तक पौधों की कतार हो, दूषित गैसों की जहां न भरमार हो।
ऐसी धरती की कामना है, जहां प्रकृति के उपहार बे–शुमार हों।।

भुखमरी हो कोसों दूर, तितलियों की कतारें, भंवरों का गुंजन।
मुस्कुराती धरा वन्य जीवन, ये सब हों गाते, गीत मन ही मन।।

विकास के नाम पर, मानव ने विनाश की ठानी है और अब तक की भी तो मनमानी है,
और अंत समय निकट देख, अंतिम सांसे है गिन रहा।
जहर अपने बालकों को पीता देख, सांस में जहर, खाने में जहर,
बंदूकों के साए में मानव है जी रहा।।

होश तो है फिर भी है मदहोश, और चारों खाने चित।
विकास के मद में है, और होश है अपनी पीढ़ियों के अंत का
जो कि इस बार अनंतिम नहीं अंतिम है और है निश्चित ।।

अपने ही पांव पर कुल्हाड़ी न मार कर।
बल्कि कुल्हाड़ी पर अपना ही पैर मारकर।।

मानव ने ही मिलाया है, खाने में जहर, वायु में जहर, दवा और पानी में जहर।
फिर भी यदि बच पाया तो बंदूकों का कहर, इसीलिए जिन्दगी भी लगती है जैसे गई हो ठहर।।

ठहरी हुई जिन्दगी में जान फूंकने चला तो है मानव, लेकर पर्यावरण की तलवार।
यह जानकर कि कुछ तो अभी बाकी है, अमृत की धार, पेड़ों की कतार, शुद्ध, सुंगन्धित बयार।।

मानव तो फिर भी मानव है, भगवान को मानता है, मनाता है।
अपनी गलतियों की सज़ा पाता है, फिर भी भगवान को ही कुसूरवार भी ठहराता है।।

और इस बार देखिए, पर्यावरण बदलाव लाया भरपूर मानसून।
बरसा इतना जल, कि न पाया, चैन न चून।।

चाहे कितने ही क्योटो जाएं, या कितने ही कनकून आयें,
चाह चांद पर जाने की और, उस पर भी छा जाने की, होगी न कभी कम।
जब तक बची हुई सांसे भी न जांएगी थम।।

एक जीवन ऐसा भी

श्रीमती अर्चना जोशी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

खबर सुनकर थोड़ी देर मैं सुन्न बैठी रह गई। अभी अभी पापा से पता चला कि बूढ़ी नानी नहीं रही। मन बेहद दुःखी हो उठा। मेरे मुँह से एकदम निकला, "कब ?" पापा के मन में भी उनके प्रति अपार स्नेह व आदर था और उन्हें बहुत मानते थे। वे भी बहुत दुःखी थे, बोले, "बीमार तो कई दिनों से थीं, उस पर बुढ़ापा। फिर रात अचानक सीने में दर्द उठा जब तक उपचार की व्यवस्था हुई, प्राण जा चुके थे।"

मेरी और उनकी दोनों की आँखों से टप टप ऑसू निकल पड़े। जब दुःख मन के भीतर तक हिला जाता है तब आप मौन ही ऑसू भाते हैं। आखिर निरर्थक सा जीवन जीने वाली वह पवित्र आत्मा अब लंबी शांत यात्रा पर निकल गई थी। अपना कोई सुख नहीं, पर दूसरों की हर खुशी में साझी। अपने अपार दुःख, पर दूसरों के आँसू पोंछने वाली। अपने जीने का कोई उत्साहवर्धक कारण नहीं, पर दूसरों को मकसद समझाने तथा उत्साह बढ़ानेवाली वह प्यारी नानी अब फिर कभी उस मीठी मुस्कान से स्वागत नहीं करेगी, यह सोचकर मन भारी हो उठा और एकाएक उनके सम्पूर्ण जीवन के बारे में सोचने को बाध्य हो गया।

बूढ़ी नानी यानि मेरी अम्मा की बुआ। मेरे नानाजी की चार बहनों में बस यही एक बुआ जीवित रहीं बाकी सभी किसी न किसी कारण अल्पायु में ही भगवान को प्यारी हो गई। बुआ अच्छे खाते पीते परिवार में ब्याही थीं। मायके से भी संपन्न परिवार से थीं। घर में किसी चीज की कभी कमी नहीं रही– बिल्कुल राजरानी। नानाजी गुरुकुल के प्रधानाचार्य। असंख्य शिष्यों के प्रिय व परम आदरणीय। गुरुमाता के रुप में उनकी पत्नी भी खूब सम्मान पाती थीं पर गलतियों पर शिष्यों को फटकारती भी खूब थीं। पति का हर शिष्य पुत्र समान था उनके लिए।

कुछ समय बाद उनके स्वयं के घर में भी एक कन्या का जन्म हुआ। नाम दिया सीता। उसे भी अपार लाड़ प्यार और खुशहाल बचपन मिला। ज्यों ज्यों वह बढ़ी, नाना–नानी को और बच्चों की आकांक्षा हुई। किंतु वह सौभाग्य उन्हें हासिल नहीं हुआ। ऐसा नहीं कि बच्चे हुए ही न हों, हुए किंतु वे अल्पायु में ही काल का ग्रास बन गए। लोगों की सलाह स्वरुप विभिन्न उपाय किए गए। स्वयं नानाजी ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे। फिर भी कई अन्य ज्योतिषियों से भी परामर्ष किया गया। तब निष्कर्ष यह निकला कि चूँकि कन्या की पीठ खराब है इसीलिए भाई–बहन नहीं बचते हैं। काफी विचार विमर्श के बाद तय हुआ कि कन्या को दूसरे घर दे दिया जाए, यानि उसका ब्याह कर दिया जाए।

दस बरस की बेटी का ब्याह करने को यद्यपि नाना–नानी कदापि तैयार नहीं थे किंतु घर के बुजुर्गों के इस तर्क के आगे कि सिर्फ ब्याह कर देंगे ससुराल सयानी होने पर ही भेजेंगे, वे तैयार हो गए। वर की खोज हुई, अच्छे खानदान के पढ़े–लिखे उन्नीस वर्षीय युवक से कन्या के मात्र ग्यारहवें वर्ष उसका ब्याह कर दिया गया। जैसा कि तय हुआ था, विदा कर उन्हें वापस मायके ले आया गया। कन्या यानि सीता मौसी की वही खेल–कूद, मौज–मस्ती फिर चलने लगी। साथ ही साथ पढ़ाई भी। कुछ ही माह बीते कि नाना–नानी को समाचार मिला– दामाद, यानि मौसाजी का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं चल रहा है। जॉच करवाई तो सब पर मानो वज्रपात सा हुआ। तपेदिक निकला, जो उस जमाने में असाध्य और जानलेवा होने के साथ साथ छुआछूत का भी रोग माना जाता था। नाना नानी क्योंकि शहर में रहते थे, दामाद को अविलंब अपने आश्रय में ले आए। इलाज चलने लगा, कोई कसर बाकी न रखी गई। मौसी तो सब बातों से बेखबर उछल–कूद करती डोलती फिरती। माता पिता को चिंताग्रस्त देखती तो कभी–कभी कारण पूछ बैठती। वे तो बस आखों में आँसू भरकर उनकी ओर ताकते रह जाते। क्या बताते ? मौसी के लिए तो ब्याह का मतलब था अच्छे–अच्छे कपड़े और नए नए गहने, बस। पर मौसाजी तो समझदार थे, वे यहाँ वहाँ डोलती उस बालिका पत्नी को देखते तो उनका मन होता कि वह थोड़ी देर उनके पास बैठें, कुछ बातें करें, उसकी भोली बातें सुनें तो कुछ देर मन बहल जाए। पर मौसी तो जब–तब दरवाजे से झांकती पर उनके पास न फटकतीं। जब वे बुलाते तो वह एक धृष्ट बालिका की तरह उन्हें चिढ़ाकर हवा हो जातीं। मानो यह सब उनके खेल का ही एक हिस्सा था। दिन पर दिन बीमारी उनके पति को खाती जा

रही थी और दुर्भाग्य दबे पॉव दस्तक दे रहा था वे इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ थीं। सब डाक्टर नाकाम हो रहे थे दवाइयाँ बेअसर थीं। मौसाजी को भी सब कुछ छूटता सा लग रहा था। और फिर दबे पॉव आखिर वह दुर्भाग्यपूर्ण दिन भी आ गया जो उस मासूम अल्हड़ बालिका का सब कुछ बहाकर ले गया। घर में कोहराम मच गया। जिस सीता के भाग्य को लोग सराहते नहीं थकते थे वही अचानक सबसे अभागन और बेचारी हो गई।

धीरे धीरे समय खिसकने लगा। दिन कटने लगे क्योंकि आज तक किसी के पीछे कोई मरा नहीं है, जीवन जीना पड़ता है। कहते हैं कि वह ऊपर वाला भी उतना ही दुःख देता है जितनी झेलने वाले की क्षमता होती है। उसका माप तोल एकदम सही है। लेकिन नहीं, यह सब कहने की बातें हैं जिसका दुःख होता है, वही समझ सकता है। मात्र एक दुःख ताकत देने वाली हजारों खुराकों पर भारी पड़ जाता है और दुःख इंसान को घुन की तरह खा जाता है। माता–पिता दुःख से बेहाल थे। नाते रिशतेदारों, लोगों ने बहुत समझाया कि बच्ची की अभी उम्र ही क्या है, ब्याह तो बस नाम मात्र का था, दूसरा ब्याह सहज ही हो जाएगा। कई रिश्ते आए, नानाजी के कई शिष्य भी स्वयं प्रस्ताव लेकर आगे आए। माता–पिता का दिल तो चाहता था कि बेटी का घर फिर बसा दें, उसे सुखी देखें पर वे लोक–लाज व समाज के डर से इसके लिए तैयार नहीं हो पर रहे थे। बस दिन रात इसी चिंता में डूबे रहने से नानाजी का स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगड़ता चला गया और छह माह के भीतर ही वे भी दामाद के पीछे–पीछे चल दिए। हॅसता–खेलता परिवार दुःख के महासागर में डूब गया। जिस कारण बेटी का ब्याह किया वही उसके साथ–साथ हॅसते खेलते परिवार की भी खुशियॉ ले गया।

अब बस मॉ बेटी थीं। जीविका चलाने वाला कोई न था। लेकिन कहते हैं न कि बड़े पतीले की तो खुरचन से ही पेट भर जाता है। इसीलिए जीवनयापन हो रहा था। सब खर्च पूर्ववत चल रहे थे। बूढ़ी नानी का दान पुण्य भी यथावत् चलता रहा। सीता मौसी की पढ़ाई भी नहीं छुड़वाई गई क्योंकि अब तो पढ़ाई को जारी रखना और भी आवश्यक हो गया था। इस बीच फिर कई प्रस्ताव आए लेकिन मॉ बेटी इसके लिए तैयार न हुई। अब दोनों ही एक दूसरे का सहारा थीं और उन्होने इसी को नियति भी मान लिया था।

दोनों को एक सहारे की आवश्यकता थी। ऐसे में रिशतेदारों ने सुझाया और मॉ बेटी को भी यह विचार भा गया कि क्यों न परिवार के ही किसी बच्चे को गोद ले लिया जाए। भाग्यवश बच्चा मिल भी गया और नानी ने अपने परिवार का ही एक बच्चा गोद ले लिया। अब मॉ बेटी दोनों उसकी मॉ थीं और उस बच्चे के साथ बहुत खुश भी। उसे जी जान से पाल रहीं थीं। दुःख के बादल धीरे धीरे छट रहे थे। अब वह बालक चार–पॉच वर्ष का हो चुका था। खर्च बढ़ रहे थे। ऐसे में सिर्फ खुरचन कितने दिन चलेगी, सोचकर सीता मौसी ने भी अब एक विद्यालय में शिक्षिका की नौकरी कर ली। थोड़ा ही सही, पर आर्थिक लाभ के साथ–साथ मन भी लगने लगा।

तभी एक दिन सीता मौसी से नानाजी के एक शिष्य ने उनसे अपने नव–निर्मित निजी विद्यालय में पढ़ाने के साथ साथ उसे संभालने का भी आग्रह किया। इसके पीछे उनकी सद्भावना थी और वे परोक्ष रुप से उनकी आर्थिक सहायता भी करना चाहते थे। उन्होंने बूढ़ी नानी से भी इसकी अनुमति देने का आग्रह किया। इस प्रस्ताव में कुछ आर्थिक सहायता और कुछ बेटी की आगे की पहाड़ सी जिंदगी गुज़ारने में सहायक एक मार्ग दिखता देख, गुरुमाता को अपने शिष्य की बात जंच गई और नानी ने मौसी की यहाँ की नौकरी छुड़वा दी और राजस्थान चले गए।

कुछ समय वहाँ अच्छा बीता। पर भाग्य की विडंबना देखिए कि एक दिन अचानक वह बालक पतंग उड़ाते हुए पाँव फिसल जाने से तीसरी मंजिल से गिर गया। तीन दिन की बेहोशी के बाद जीवन तो बचा पर बुद्धि पर कुछ ऐसा असर हुआ कि वह अपनी बालसुलभ चपलता भूलकर सदा के लिए एक सीधा सादा सा व्यक्तित्व रह गया। बुद्धि की तीव्रता कहीं खो गई। मॉ बेटी ने वे तीन दिन किस तरह काटे ये उनका ईश्वर ही जानता होगा। उनके प्राण उस बालक में बसते थे अतः उन्हें यही संतोष था कि उसके प्राण बच गये। पर उनका मन वहॉ से अब उचाट हो गया और वे लौटकर वापस अपने लोगों के बीच अपने शहर देहरादून आ गए।

अति प्यार व दुलार तथा अतिरिक्त देखभाल व संभाल से उस बालक में अपेक्षित आत्मविश्वास की कमी रह गई जो कि किसी भी व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अति आवश्यक है। वैसे उसे अपनी दोनों माताओं (मौसी और नानी) से भरपूर संस्कार मिले और वह एक सीधे साधे आज्ञाकारी इंसान के रुप में बड़ा हुआ। बाद में अपने विवाह के बाद भी उसी तरह सेवाकारी और आज्ञाकारी बना रहा तथा सपत्नीक अपनी दोनों माताओं की खूब सेवा भी की।

बूढ़ी नानी के मायके व ससुराल दोनों ओर भरे पूरे परिवार थे। नानी यूँ तो सरल हृदया दयालु महिला थीं लेकिन दोनों परिवारों में उनका अच्छा दबदबा था। सब उनका खूब मान

करते थे। हर छोटी बड़ी बात में उनकी सलाह अवश्य ली जाती थी।

बूढ़ी नानी और मौसी के स्नेह भरे व्यवहार से घर में आने जाने वालों का सिलसिला यथावत् रहा। जो कोई भी उनके दरवाजे पर आता बिना खाए पिए जा ही नहीं सकता था। हर गॉव से आने वाले के लिए उनका घर एक आश्रय था। भाई, भतीजे–भतीजियों, रिश्तेदारों से घर भरा रहता। मॉ–बेटी मेहमानों को देखकर कभी न खीजतीं न परेशान होती बल्कि खुश ही होती और रिवाज़ के अनुसार अठन्नी रुपया भी आते जाते उनके हाथों में अवश्य ही थमा देतीं।

बूढ़ी नानी बहुत पढ़ी लिखी नहीं थी किंतु उनको व्यवहारिक ज्ञान ऐसा था कि आज के अच्छे से अच्छे मनोवैज्ञानिक भी उनके आगे टिक नहीं सकते थे। अम्मा के मुँह से सुना इस बात का एक उदाहरण कुछ यूँ है।

अम्मा जब मात्र ढाई वर्ष की थी तभी उनकी मॉ यानि मेरी नानी का स्वर्गवास हो गया था। मेरी अम्मा से बड़ी दो बहनें व एक भाई थे। विमाता बच्चों के साथ जाने कैसा व्यवहार करे इस आशंका से मेरे नानाजी ने दूसरा विवाह नहीं किया। संयुक्त परिवार था बच्चों की देखभाल की कोई समस्या नहीं थी। मेरे नानाजी चार भाई थे और सब साथ ही गॉव में रहते थे। सभी चचेरे भाई बहनों में परस्पर सगे भाई बहनों सरीखा प्रेम था। भाई बहनों में मेरी बड़ी मौसी ही सबसे बड़ी थी। जब वह विवाह योग्य हुई तो घर में उनके रिश्ते की चर्चाएं होने लगीं।

हर लड़की की तरह मौसी की भी भावी वर को लेकर मधुर कल्पनाऐं थीं। तभी मौसी के कानों में छोटे भाई बहनों के माध्यम से भनक पड़ी कि उनके लिए कोई रिश्ता आया है। भाई बहनों की लगभग पूरी फौज घर में विद्यमान थी इसलिए कोई भी खबर इधर से उधर करने वालों की कमी नहीं थी। वो भी घर में पहली शादी होने जा रही थी इसका सबमें उत्साह भी बहुत था। ऐसे में कोई खबर लाया – "दीदी तेरे लिए जो रिश्ता आया है न पता है लड़का बहुत काला है और कद भी बहुत छोटा है।" मौसी का दिल बैठ गया। कहॉ वह गोरी चिट्टी, अच्छे ऊँचे कद की सुदर्शना और कहॉ लड़के के रंग रुप का यह हाल। उन्होंने झपटकर अपने उस भाई को पकड़ा और पूछा, "सच बता, किसने कहा, तूने कहॉ सुना ? झूठ तो नहीं बोल रहा है न ? या फिर मुझे चिढ़ा रहा है। झूठ बोला तो तेरी टॉग तोड़ दूँगी। खा कसम"। जान आफत में फॅसी देख उसने झट कहा, "परमात्मा कसम, मैं अपने कानों से सुनकर आाय हूँ। बड़ी चाची छोटी चाची को बता रही थी"।

भावी वर की जिस मधुर कल्पना में मौसी डूबी रहती थी सहसा छितर बितर होती जान पड़ी। किससे पूछे सही बात ? घर में किसी बड़े से पूछने का साहस न था और छोटों पर पूरा भरोसा न था। मॉ का साया सर से उठ जाने की टीस महसूस हुई। बहुत सोचने पर सबसे अधिक भरोसा बुआ यानि बूढ़ी नानी पर ही हो सकता था। उसका कारण यह था कि अपनी भाभी के गुजर जाने के बाद बुआ का अपने इन बिन मॉ के बच्चों पर विशेष स्नेह हो गया था। इसका एहसास बच्चों को भी था। वे अक्सर अपनी कई फरिमाइशें बुआ से ही पूरी करवाते थे। मौसी ने भी सोचा कि एक बुआ ही है जो मेरी बात समझ सकती है। यह बात भी उन्हें अच्छी तरह मालूम थी कि यह रिश्ता बुआ जी की सहमति के बिना घर तक नहीं पहुँचा होगा और उन्होंने अवश्य ही लड़के को पहले ही देख लिया होगा।

इसी विश्वास के साथ झिझकते झिझकते पाँव से बुआ के पास जा पहुँची। दुआ सलाम के बाद हिम्मत जुटाई और प्रश्न कर दिया –

" बुआ जी, आपसे एक बात पूछनी थी "।

मौसी के मन में भयंकर द्वंद्व चल रहा था बुआजी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते ही बिना बात घुमाए फिराए सीधे प्रश्न कर दिया –

"आपने उस लड़के को देखा है"?

"किस लड़के को"

बुआ समझ तो तुरंत गई पर नासमझ सी बनी रही।

मौसी ने थोड़ा नाराज़, थोड़ा कातर होकर कहा,

"अब बनो मत बुआजी, आपको सब पता है" कैसा है, सही सही बताओ न बुआजी" वह खुशामद सी करती बोलीं – अब बुआ हॅसकर बोली, "अच्छा! वो?" हॉ, देखा तो है ठीक ठाक है, अच्छा है, पढ़ा लिखा, अच्छे घर बार का और सबसे बड़ी बात, बे–ऐब है"।

बुआजी ने एक साथ खूब सारी खूबियाँ गिना दीं क्योंकि उस जमाने में लड़कों में यही खूबियाँ देखी जाती थीं। घर के बड़े–बुढ़े शक्ल सूरत और रंग रुप को अधिक महत्व नहीं देते थे। बे–ऐब और अच्छे खानदान का होना ही लड़के या लड़की का सर्वोच्च गुण था। वर वधू की राय मांगी भी नहीं जाती थी। घर के बड़ों का निर्णय ही सर्वोपरि था।

मौसी ने दृष्टि बुआ के चेहरे पर गड़ा दी और कहा,

"पर मैंने तो सुना है, वह बहुत काला है और कद भी

छोटा है।''

''हॉ यह भी तूने ठीक ही सुना है''

अब मौसी ठुनक पड़ी और पूछने लगी, ''क्या बहुत काला है ? और आखिर कितना छोटा कद है ? कुछ तो बताओ''। उस जमाने में न तो फोटो होते थे, और न कोई कद की नाप जोख कर के रखता था। ज्यादा ही कोई उत्सुकता दिखाता तो परिवार या किसी जानकार से तुलना करके ही बताया जाता था। बुआजी बोलीं, ''देख बेटी, काला तो ऐसा है जैसा कि हमारे गॉव में नागेन्द्र है (नागेन्द्र का असली नाम कुछ और था यह उपनाम गॉव वालों ने बेचारे को उसके अति श्याम वर्ण के कारण ही दिया था) और छोटा इतना कि साइकिल पर चढ़ने के लिए दीवार का सहारा लेना पड़ता है बेचारे को''।

मौसी ने सर पकड़ लिया। हे भगवान! अब क्या होगा? मना करने का प्रश्न ही नहीं था क्योंकि सब उस वर को सर्वथा उपयुक्त पा रहे थे। बुआजी से अनुनय सी करती बोली, ''बुआजी'', मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ कुछ भी करके एक बार लड़का कहीं दूर से ही सही मुझे दिखा दो।''

पहले तो बुआजी ने साफ असमर्थता जता दी लेकिन तभी सीता मौसी साथ में वकील बनकर खड़ी हो गई, ''ये क्या है मॉ, ठीक ही तो कह रही हैं बेचारी। उसकी जिन्दगी का सवाल है आखिर।''

बुआजी ने गंभीरता से सोचा। अपनी बेटी का दुःख भी वो देख चुकी थीं एकाएक मन पसीज उठा। काफी सोच विचार के बाद बुआजी ने दूर से ही लड़का दिखाने की व्यवस्था करने का वादा किया। क्योंकि उस जमाने में यह बहुत बड़ी आलोचना का विषय बन सकता था कि कोई लड़की या लड़का एक दूसरे को विवाह पूर्व देखने की धृष्टता करे, वो भी खासकर लड़की।

खैर नियत स्थान पर मौसी सीता मौसी के साथ लड़के को देखने पहुॅच गई, लड़के को दूर से ही देखने की अनुमति मिली थी वो भी चुपके से बिना उसकी जानकारी के।

लेकिन यह क्या ! लड़के को देखकर मौसी हैरान भी हुई और खुश भी। क्योंकि वह तो सुंदर नयन नक्श वाला एक सुदर्शन युवक था और अब तक सुने वर्णन से लाख गुना बेहतर था। उन्हें बुआ जी पर बहुत गुस्सा आया। वो दनदनाती हुई सीधे बुआजी के पास पहुॅची और बोली, ''बुआजी, आप तो बड़ी खराब हो।''

''क्यों भई, मैंने क्या किया ? हॉ भई, ठीक ही कहते हैं कि आजकल भलाई का तो जमाना ही नहीं रहा। एक तो इतना खतरा उठाकर तुझे लड़का दिखाया उस पर ये बात भी सुनो। ठीक है, भई'' बुआ झूठमूठ का गुस्सा करने लगीं।

''लड़का इतना काला तो नहीं है जितना आप बता रही थीं और बहुत लंबा न सही पर इतना छोटा भी नहीं है। आपने तो मुझे डरा ही दिया था। अतिश्योक्ति की भी हद होती है।'' एक सॉस में मौसी ने अपना आक्रोश उगल दिया।

बुआ पहले तो खूब हॅसी फिर गंभीर होकर बोली, ''बेटी यही बात मैं तेरे मुॅह से सुनना चाहती थी क्योंकि यदि मैं तुझे कहती वह अधिक काला नहीं है और न ही इतना छोटा है, तो बेटा क्योंकि कल्पना हमेशा सुंदर होती है और हम उसमें डूबते हैं तो चरम तक पहुॅच जाते हैं। इसलिए मैंने उसकी कमियों का बढ़ चढ़ कर वर्णन किया ताकि तू उसके भी चरम की कल्पना करे और तूने यही किया भी इसीलिए तुझे वह बेहतर लगा। यदि मैं तुझे कहती कि वह ज्यादा काला नहीं है और न ज्यादा छोटा ही तो तेरी कल्पना में वह बेहतर होता और तुझे वह बदतर दिखाई देता – समझी।''

मौसी उनके इस मनोवैज्ञानिक प्रयोग से हक्की बक्की थी। बाद में मौसी की उसी लड़के से शादी हुई और कहने की बात नहीं कि चयन निस्सन्देह बाद में आए सब दामादों में श्रेष्ठ साबित हुआ। ऐसा था उनका व्यवहारिक मनोविज्ञान कि अच्छे से अच्छे पढ़े लिखे लोग भी उसकी कल्पना नहीं कर सकते।

खैर यह तो मात्र एक किस्सा है ऐसे अनेकों किस्से अम्मा सुनाया करती थीं और हम अक्सर उनका खूब आनन्द लेते।

जैसी मॉ वैसी बेटी। सीता मौसी भी कुछ कम न थीं इसलिए सब उन्हें भी बेहद सम्मान और प्यार देते – आखिर वह खानदान की सबसे बड़ी दीदी भी थीं। वे भी सभी को अच्छी से अच्छी सलाह व सहयोग देने को सदैव तत्पर रहती थीं। सीता मौसी स्वयं चाहे हर सुख से वंचित रही हों पर अपने सभी रिश्ते के भाई बहनों की ब्याह शादी में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेती थीं। कोई भी आयोजन उनके बिना पूरा न होता। किसी की दीदी, किसी की मौसी, किसी की बुआ – वे सब जगह छाई रहतीं। सबकी खुशी में ही उनकी खुशी थी, सबकी पेरशानी में चिंतित। सबका कष्ट उनका अपना कष्ट।

जब हम भी थोड़े बड़े हुए तो गर्मियों की छुट्टियों में सभी ममेरी, मौसेरी बहनें अधिकतर वहीं डेरा जमाए रहतीं क्योंकि खाने पीने की मौज के साथ–साथ घर की रोक टोक से भी बचते। खास तौर पर सीता मौसी तरह तरह की चीजें हमें बनाकर खिलातीं। वह कभी हमारे लिए

गुड़िया बनातीं तो कभी तरह तरह के खिलौने। वहाँ रहने पर उनके साथ बहुत आनन्द आता। श्राद्ध व खिचड़ी संक्रांति पर हम सब बच्चों को खिचड़ी खाने का खास न्यौता जरुर मिलता, जिसका हमें बड़ी बेसब्री से इंतजार भी रहता। जब हम रसोईघर में खाने को पहुँचते तो वे लाइन से हमें चूल्हे से दूर पटलों पर बिठातीं। क्या मजाल कि कोई उन्हें उनके चौके में छू दे। नहीं तो चौका झूठा हो जाता और फिर दोनों उस खाने को नहीं खातीं थीं। इसलिए हम सतर्क भी रहते कि गलती से भी उस ओर न जाएं। खैर! जब हम चौके में पहुँचते तो सब एक दूसरे की ओर देखते और एक दूसरे से आँखों ही आँखों में प्रश्न करते – नानी ने क्या भूखा मारने को बुलाया है। इतनी छोटी–छोटी पतीलियाँ और इतने सारे खाने वाले! पर जब खाना शुरु करते तो तब हमारी हैरानी की सीमा न रहती जब हम देखते कि पतीली ज्यों की त्यों भरी हैं। खाना भी इतना स्वादिष्ट कि पेट भर जोन पर भी नीयत न भरती। मानो कोई जादू था। लेकिन नहीं, वह ऐसी बरकत थी जो कि नीयत के साथ ही होती है। उनका आग्रह के साथ खाना खिलाना और उस पर उठते–उठते भी उनका यह मलाल कि अरे तुझे फलाँ चीज़ तो मैं देना भूल ही गई। पचासों तरह के अचार और मुरब्बे कि चखते चखते ही पेट भर जाए। आज भी सोचकर ही मुँह में पानी भर आता है।

आज मैं सोच रही हूँ क्या नाम से भी कुछ होता है? कितने प्यार से उनके माँ बाप ने भगवान श्री राम की पत्नी का नाम उन्हें दिया होगा। पर क्या माता सीता ने भी सुख पाया था! एक राजा की बेटी राजा की पत्नी लेकिन जीवन भर दुख ही दुख। मुझे याद है ऐसे ही सीता मौसी भी एक दिन अचानक ही हृदयगति रुकने से स्वर्ग सिधार गई थीं। बेटी को गए अभी अधिक समय नहीं हुआ था। नानी भी पीछे पीछे चली गई। दोनों को एक दूसरे के बिना रहने की आदत जो नहीं थी। बूढ़ी नानी को एक दुःख यह भी देखना था। माँ–बेटी दोनों की ही महिमा निराली थी। जैसे इस धरती पर दूसरों के काम आने के लिए ही ईश्वर ने उन्हें भेजा था और दूसरों को सुख देने में ही उनका सुख निहित था। आज ऐसे कितने लोग हैं इस दुनिया में जो केवल दूसरों के चेहरे की मुस्कान देखकर ही आनन्दित होते हों।

नये हाथ से वर्तमान का रुप संवारो
नई तूलिका से चित्रों का रंग उभारो
नये राग को नूतन स्वर दो
भाषा को नूतन अक्षर दो
युग की नई मूर्ति रचना में
इतने मौलिक बनो कि जितना स्वयं सृजन है।

–द्वारका प्रसाद महेशवरी

फौजी

श्री छत्रपाल सैनी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारत माँ के लाल फौजी,
सचमुच हैं बेमिसाल फौजी।

सरहद के बने सच्चे प्रहरी,
देश का ऊँचा करते भाल, फौजी।

सर्दी–गर्मी हो चाहे बरसात,
करते कभी ना सवाल फौजी।

कर्तव्य को अपना धर्म मानकर,
वतन में करते कमाल फौजी।

दुश्मन का लहु बहाकर हरदम,
जन्मभूमि का करते नमक हलाल फौजी।

फौलादी–सा तानकर नित सीना,
बढाते रहते कदम–ताल फौजी।

मरते दम तक फर्ज निभाते,
हौसलों को बनाते ढाल फौजी।

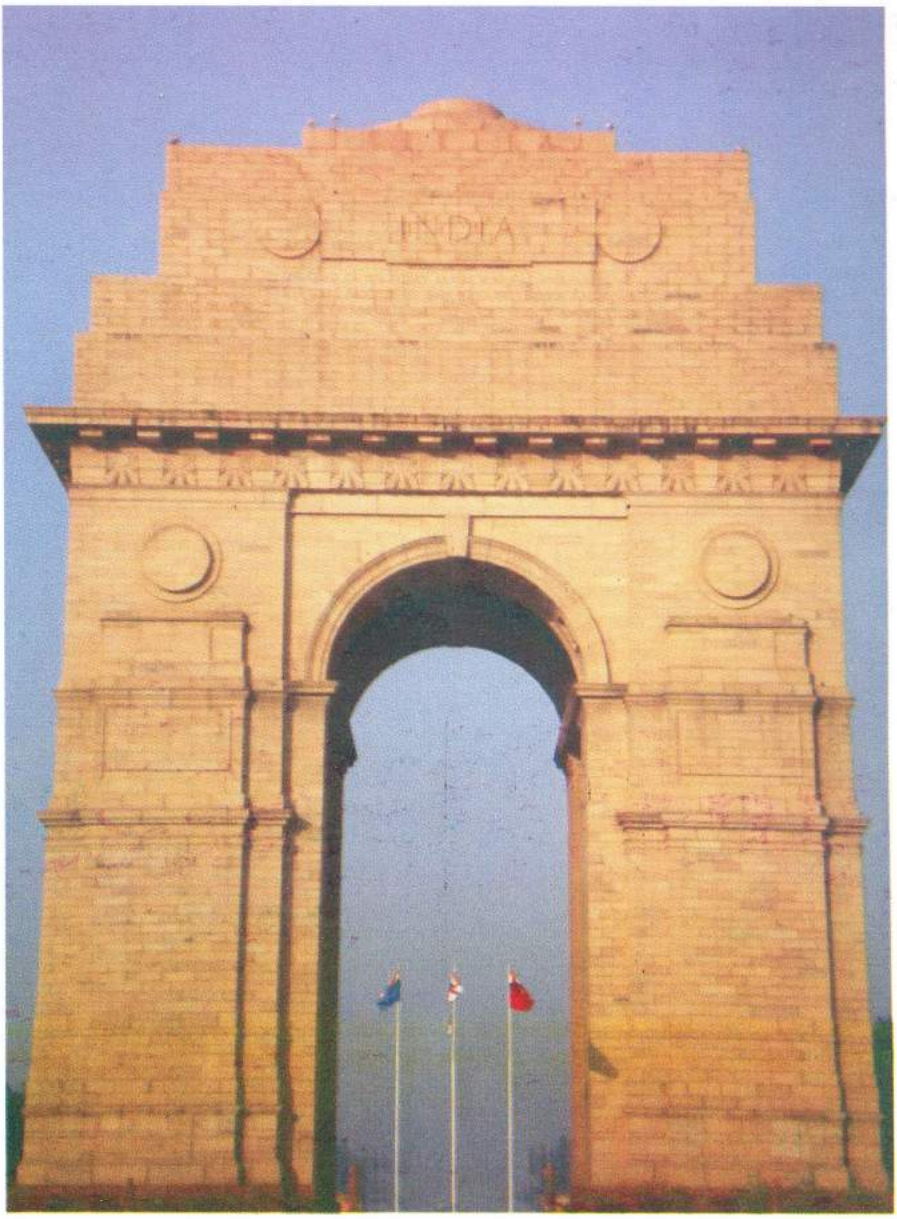

एक पेड़ की कहानी

श्रीमती आर.जी. अनिता
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

मुझे याद है उस दिन जब मैं एक अंकुर और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खड़ा था। पानी और उर्वरक की पर्याप्त राशि का प्रबन्ध कर दिया गया था। मै एक चंचल युवा लड़के द्वारा लगाया और ध्यान रखा गया था। मैं कैसे खुश हुआ था जब वह मेरे पास था। मेरे रिश्तेदारों ने कहा कि मनुष्य हमेशा पेड़ की ओर दयालु थे और वे एक अलग ढंग से हमारे बारे में अध्ययन करने में उत्सुक थे।

जब सही मौसम आता है तो मै कुछ चमत्कार फूलों और रसदार फलों को समर्पित करता हूँ। जिसे वह खुशी से स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि मैं खुश और स्वस्थ हूँ।

जैसे समय गुजरता गया वैसे वह लड़का बढ़ता गया। अब उसके वह दिन नहीं रह गये जो पहले थे। सोचा कि इससे सभी प्राणियों को लाभ होगा किन्तु अधिक रसायनिक उर्वरकों के कारण उपयोग से अधिक नुकसान होने लगा। मैने देखा कि मेरे परिवार और दोस्त हर रोज कमजोर होते जा रहे हैं। इसके अलावा मौसम अप्रत्याशित भी थे।

तो अचानक यह हुआ कि वर्दी में पुरूष हमारे चारों ओर मार्च करने लगे। मैं और अन्य पेड़ उन्हें देखते रहे कि वे हमारे लिए क्या कर रहे हैं। तब देखा कि वे हमारे सदस्यों को काट कर हत्या कर रहे हैं।

हमने उन्हें छाया, आवास और भोजन दिया उसके बदले में उन्होनें हमें क्या दिया? कुछ भी नहीं। वे दिन गये जब बच्चों ने हमारे चारों ओर खेला और अब हम उनके लिये कोई महत्व के नहीं रह गये।

हममम.....और अब एक आदमी मेरे प्रति अपनी कुल्हाड़ी के साथ आ रहा है, मै कुछ नही कर सकता लेकिन सोचता हूँ कि वह कैसा अज्ञानी है जो मुझे मार कर पूरे पर्यावरण को मार रहा है और पर्यावरण को मार के स्वयं को मार रहा है।

बाँस की हरियाली बस्ती

श्री पवन कौशिक
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहट

बाँस, बसाती हरियाली बस्ती,
निर्भर होता सारा संसार।
बहुउपयोगी हैसियत की हस्ती,
संवर्धन–संरक्षण पर हम निसार।।

भाँति–भाँति की प्रजाति लिये,
तरह–तरह के रंग–रूप लपेटे।
जाति–प्रजाति के अद्‌भुत महत्व,
भिन्न–विभिन्न हैं सद्‌गुण समेटे।।

बस्ती–बस्ती फूलती बाँस की,
मरते–मरते, विरले बीज भी देते।
स्वभाव–प्रभाव अजूबे हों पर,
गलीचे डाल, वन पुनर्नवा कर देते।।

जीते–जीते, बहुसंख्य पाँव,
अचार–सब्जी के करील देते।
पोषक–तत्वों से पूर्ण करील से,
शुद्ध नैसर्गिक खाद्य हैं बनते।।

तन–बदन और विभिन्न अंग से
कागज बनते, कलम भी बनते।
दवात से लेकर दवाई और,
धागे भी बनते, महल भी बनते।।

अब तो यही आरजू है मेरी,
आगे तुम्हीं सहारा बनो।
अंत समय पर " मेरी " यही कामना,
कफन भी बनो, कहार भी बनो।।

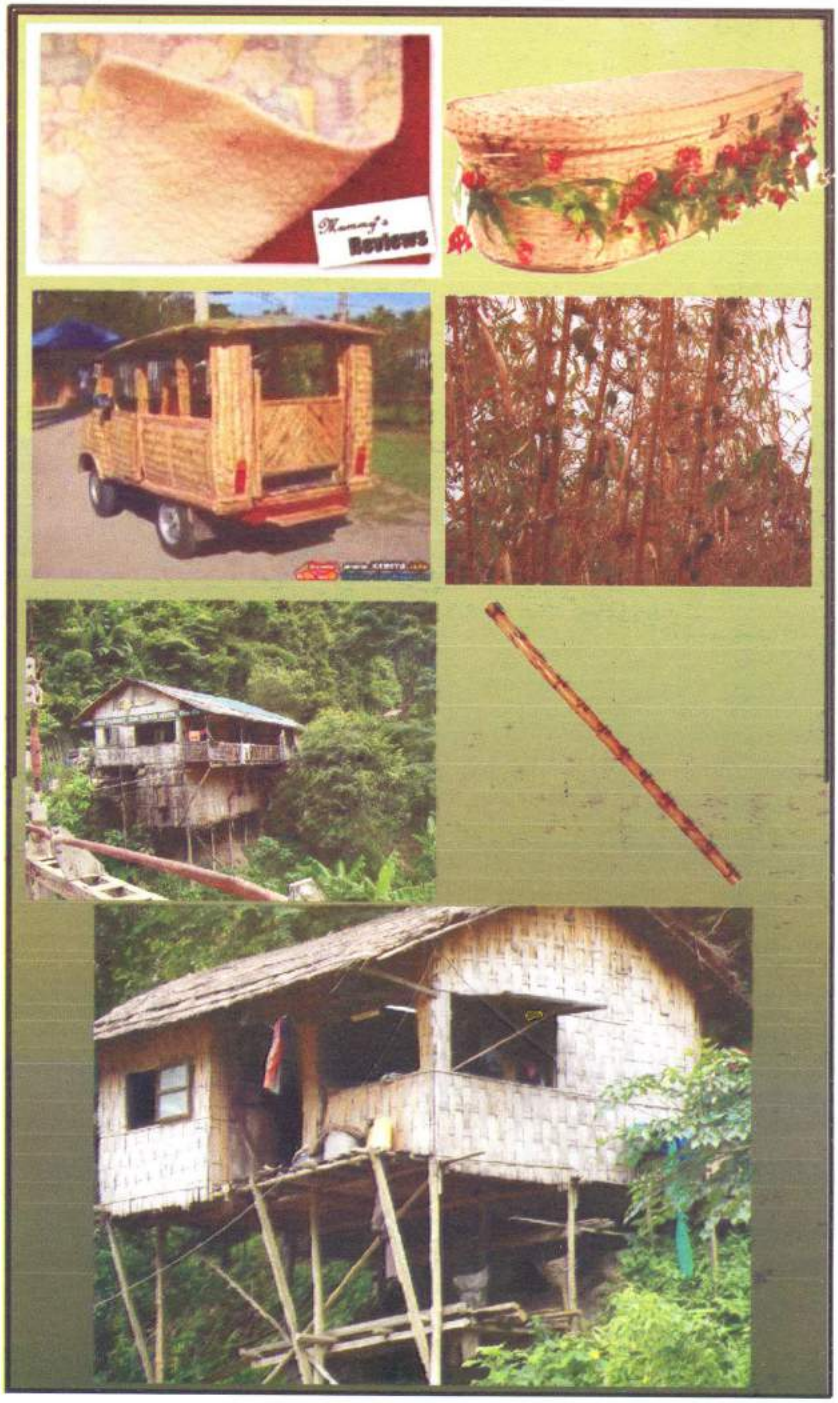

नारी का स्थान

कु0 मनिषा. वी. बाचपाय
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

इन्सान के जीवन में नारी का स्थान एक मुख्य भूमिका निभाता है। नारी की जिन्दगी की शुरूआत जब नन्हीं कोमल और सुन्दर बच्ची से होती है तो माता–पिता अति प्रसन्न होते हैं और यह मानते हैं कि उनके घर लक्ष्मी पैदा हुई है। लेकिन जब वह बच्ची युवती बन जाती है वह अपने माता–पिता पर एक बोझ बन जाती है। शिक्षा प्राप्त करने से उसे रोककर घरेलू काम–काज में लगा दिया जाता है।

नारी के जीवन में कई रूप होते हैं। पहला घर का चिराग, एक अच्छी दोस्त, एक अच्छी पत्नी, एक अच्छी माँ और बाद में परिवार की नियन्त्रक बन जाती है। इसके बावजूद क्या हमने नारी को उसका सही स्थान दिया है?

विख्यात लेखक मुंशी प्रेमचंद ने भारतीय नारी की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण अपने उपन्यास "निर्मला" और "कफन" में किया है लेकिन जितना नारी को अपने स्थान से वंचित किया गया है उतना ही पिछले शताब्दि में अनेक नारियों ने स्त्री का नाम गर्व से ऊँचा किया है। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, सरोजिनी नायडु, अरूणा आसिफ उली, विजय लक्ष्मी पंडित, इंदिरा गाँधी, गायत्री देवी, एम.एस.सुब्बुलक्ष्मी आदि सभी नारियों ने आजादी के आन्दोलन, राजनीति, संगीत, क्रीड़ा में अपना नाम उज्ज्वल किया किंतु आज भी स्त्री अपने सही स्थान के लिये संघर्ष कर रही है।

यहाँ कहा जाता है कि हर कामयाब इन्सान की सफलता के पीछे एक नारी का हाथ है। लेकिन हमें यह सोचना है कि क्या नारी ने इस समाज में उचित स्थान पाया है? इसीलिए हम सबको नारी पर होने वाले अत्याचार को रोककर उनकी प्रगति के लिये मन, वचन, कर्म से प्रयास करना है। हमें अपने घर से ही शुरूआत करनी होगी क्योंकि जब घर की प्रगति होती है तो मोहल्ले की प्रगति होती है जब मोहल्ले की प्रगति होती है तो गाँव की प्रगति होती है जब गाँव की प्रगति होती है तो प्रांत की प्रगति होती है और जब प्रांत की प्रगति होती है तब पूरे देश की प्रगति होती है। गाँधी जी ने कहा है कि जब एक स्त्री गहने, जेवर आदि पहनकर रात को बारह बजे अकेले घर सुरक्षित पहुँचेगी उस दिन वास्तव में हमारा देश भारत आजाद होगा ओर उन्नति की ओर बढ़ेगा।

आतंकवाद का प्रभाव

श्री निखिलेश. वी. बाचपाय
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

आधुनिक युग में आतंकवाद एक भयंकर चुनौती के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गया है। भारत में भी इसकी जड़ें निरन्तर गहरी होती जा रही हैं।

आतंकवाद वास्तव में अतिवाद का परिणाम है। भारत में प्रारंभ से ही यह माना जा रहा है कि अति सर्वत्र वर्जयेत। परन्तु इस आधुनिक सुविधावादी युग में मानव अतिवादी हो गया है, और सब कुछ प्राप्त करने के पश्चात् भी असन्तुष्ट बना रहता है। विश्व की युवा पीढ़ी ने पिछले पचास वर्षों में अपनी असन्तुष्टि की अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम अपनाये हैं जैसे– हिप्पीवाद, बोरल्स, वीहनेकस आदि। इस असन्तुष्ट जन विद्रोह में यदि राजनीति का रसायन मिला दिया जाये तो आतंकवाद अट्टहास करता हुआ दिखलाई देगा। राजनीतिक स्वार्थपरता के चलते आज आतंकवाद एक अमोघ अस्त्र बन गया है। अपनी बात मनवाने के लिये आतंक उत्पन्न करने की पद्धति एक सामान्य नियम बन चुका है।

राजनीतिक क्षेत्रों में प्रत्येक आन्दोलन का प्रारम्भ शांति और अहिंसा के साथ होता है, परन्तु जब उस पर कोई ध्यान नहीं जाता तो हिंसा, अराजकता और आतंकवाद उत्पन्न होता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्वार्थपरता और अर्थवाद के आधुनिक युग में संयम और संतुलन का मार्ग अपनाने हेतु गिने चुने व्यक्ति ही तत्पर दिखलाई देते हैं शेष सभी येन येन प्रकारेण तत्काल मंतव्य पूरा करना चाहते हैं और इसी का परिणाम है– आतंकवाद। धर्म के नाम पर राजनीतिक दलों द्वारा जनता की भावनाओं को उभारा जाता है और धार्मिक संवेदनशीलता का दुरूपयोग किया जाता है। पंजाब में व्याप्त आतंकवाद का मूल कारण राजनीति से प्रेरित धर्मान्धता ही थी।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद को प्रोत्साहित करने वाले अनेक कारण हैं। इनमें प्रमुख है भेद– भाव की नीति जो मानव और मानव के मध्य अन्तर व्यक्त करती है। यदि रंग भेद के विरूद्ध जब अहिंसात्मक आंदोलन निष्प्रभावी हो जाता है तो आतंकवाद पनपता है। अश्वेतों ने जिस अहिंसा के मार्ग को अपनाया उसकी परिणति इसी कारण हम आतंकवाद के रूप में देख सकते हैं।

आतंकवाद का सामना करने हेतु सरकारी और गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर सम्मेलन, गोष्ठियों आदि का आयोजन होना चाहिए जिससे कि आतंकवाद के विरूद्ध वातावरण तैयार किया जा सके। इस क्षेत्र में पत्रकारों, साहित्यकारों और अध्यापकों से सहयोग लेना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि आतंकवाद हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था और प्रगति के लिये घातक है। यदि आतंकवादी गतिविधियाँ बढ़ती गयीं तो समस्त लोकतान्त्रिक प्रक्रिया ही खतरे में पड़ जायेगी और देश के विभाजन का भय उत्पन्न हो जायेगा। हमारी समस्याओं और मतभेदों का निबटारा इस तरह किया जाना चाहिए कि आतंकवाद इस देश से पूरी तरह समाप्त हो जाये और भारत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद की समाप्ति हेतु सक्रिय भागीदारी निभा सके।

चाहते हो भविष्य की सुरक्षा, तो करो पर्यावरण की रक्षा

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

यह सर्वविदित है कि अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु, और आकाश से किसी न किसी रूप में मानव जीवन का निर्माण होता है। इन समस्त तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। यजुर्वेद का शान्ति पाठ यह संकेत करता है कि पर्यावरण के सभी तत्वों को शांत व संतुलित बनाये रखा जाये। पर्यावरण प्रदूषण के कारण मनुष्य दो प्रकार के रोगों का शिकार होते हैं। एक रोग शरीर से सम्भावित है और दूसरा मन से। आयुर्वेद के महान व्याख्याता महार्षि चरक के अनुसार– पर्यावरण असंतुलन के कारण शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदि अपने धर्म से पृथक होने लगेगी। पृथ्वी के रस सूखने लगेंगे और जीवन भिन्न – भिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रसित होता जायेगा। हानिकारक प्राणियों तथा विषाणुओं की अभिवृद्धि से प्राणी तथा वनस्पति जगत नई–नई प्रकार की बीमारियों से त्रस्त रहेंगे।

अतः पेड़ पौधों की अधिकता न केवल आरोग्य बल्कि शुद्ध वायु विपरीत करके स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक होती है तथा जलवृष्टि का संतुलन बनाये रखने में भी सहायक होती है तथा पृथ्वी का संतुलन बनाये रखती है।

अमरिका में कार्यरत प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर ओ.पी. द्विवेदी की रचना 'एनवायरमेंटल काइसिस एण्ड हिन्दु रिलीजन' में लिखा है कि वर्तमान काल में प्राकृतिक पदार्थ वनस्पति एवं जीव जगत के अंधाधुंध शोषण के कारण ही पर्यावरण का इस हद तक दुरूप्रयोग हो रहा है कि मानव अस्तित्व के लिए एक भयंकर संकट बन गया है। इसके लिए उन्होनें पर्यावरण नीति में लापरवाही और समाज को जिम्मेदार ठहराया है।

इतिहास साक्षी है कि हड़प्पा और मोहन जोदड़ों की खुदाई से प्राप्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वजों को जल एवं वातावरण प्रदूषण की पूरी जानकारी थी। नागरिक स्वास्थ्य रक्षा के लिये पूर्ण प्रबंध था। सम्राट अशोक के समय में पर्यावरण हेतु अपराध संहिता थी। आज के पर्यावरण प्रदूषण को बचाने का उपाय वास्तव में प्रत्येक नागरिक की भागीदारी सुनिश्चित करता है। यदि हम सोचे कि पर्यावरण का संरक्षण सरकार का कर्तव्य है, तो उचित नहीं होगा।

हमें पयार्वरण संरक्षण को एक आंदोलन का रूप देना चाहिए। महापुरूषों की स्मृति याजयंतियों पर अधिकाधिक वृक्षारोपण का कार्यक्रम किया जाना चाहिए। इसके साथ ही हमें हरे–भरे वृक्षों का काटना पूर्ण रूप से बंद करना एवं करवाना होगा, जो वृक्ष सूखकर गिर गये उनके स्थान पर नये वृक्ष लगाने होंगे। हमें प्राकृतिक संसाधनों का अपव्यय नहीं करना चाहिए, उनका उपयोग मित्व्ययता एवं विवेक से करना चाहिये। संरक्षण महायज्ञ में व्यक्तिगत रूप से अपनी भागीदारी दर्ज करवानी चाहिए तभी आप अपनी धरती माँ के ऋण से उऋण हो सकेंगे।

वृक्ष लगाकर ऋण उतारा

श्रीमती सन्तोष गैरोला
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्राचीन समय की बात है गुरूकुल में एक गुरू शिष्यों को शिक्षा दिया करते थे। एक बार दो शिष्यों ने शिक्षा ग्रहण कर घर जाने की अनुमति मांगी। गुरूजी ने उनकी अंतिम परीक्षा लेनी चाही। उन्होने अपने एक शिष्य से कहा, "हे वत्स, तुम मेरे गुरू भाई के पास मेरा एक संदेश देकर आ जाओ। मेरे गुरू भाई का गुरूकुल उत्तर दिशा में यहाँ से सात कोस की दूरी पर है। तुम शाम होने से पहले ही लौट आना।" गुरूजी ने उस शिष्य को रास्ते में खाने के लिए कुछ आम दिये। शिष्य सिर नवाकर संदेश लेकर चल दिया।

अब गुरूजी ने दूसरे शिष्य को भी कार्य बताकर दक्षिण दिशा में दूसरे गुरूकुल में भेज दिया और उसे भी थोड़े से आम रास्ते में खाने के लिए दिए।

जब सांयकाल दोनों लौट कर आए तो गुरूजी ने शिष्यों से दिन भर का वृतान्त पूछा, साथ ही यह पूछा, कि उन्होने आमों का क्या किया।

पहले शिष्य ने अपना अनुभव बताया कि, "मैने जहाँ विश्राम करके आम खाये वहाँ आम की गुठलियों को मिट्टी में दबा दिया ताकि वह उगकर आम के वृक्ष बन जायें, इसी तरह मैने सभी आम खाकर उनकी गुठलियां थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बो दी हैं। आपके गुरू भाई ने मुझे कुछ जामुन दिये थे। मैने उनकी गुठलियां भी राह के किनारे बो दी हैं।"

अब गुरूजी ने दूसरे शिष्य से उसकी यात्रा का विवरण पूछा तो उसने बताया कि मैने तो आम और जामुन खाकर गुठलियां फेंक दी। वे भला किस काम की थी। उन्हें बोने से क्या लाभ ? न जाने कब उगेंगी ? कब वृक्ष बनेगा? कब फल आयेंगे? न जाने कौन खायेगा उन्हे ? तब गुरूजी ने शिष्य को समझाया कि जो आम व जामुन के फल तुमने खाये हैं, उन्हे कभी तो किसी ने बोया होगा ? यदि वह इन फलों को न बोता तो तुम कैसे खाते ? तुमने रास्ते में जिन वृक्षों की छाया में विश्राम किया वे भी तो किसी ने लगाये होंगे, नहीं तो तुम्हे छाया कैसे मिलती ? पिछली पीढ़ी का बोया फल तुम अब भोग रहे हो, तो अब जो तुम बोओगे, वह आने वाली पीढ़ी भोगेगी। इसलिए हे वत्स। आज की न सोचो, आने वाले युग की सोचो, आने वाली पीढ़ी के हित की सोचो।

पेड़ लगाओगे, सुख पाओगे
नष्ट करोगे, बहुत पछताओगे

वृक्षों की मित्रता

श्रीमती सन्तोष गैरोला
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वृक्ष मनुष्यों के निरन्तर बने रहने वाले दोस्त हैं। वे कई तरीकों से मनुष्य की जरूरतें पूरी करते हैं। यह बात एक कवि की "वृक्ष की प्रार्थना" नामक कविता की इन पंक्तियों में झलकती हैं–

हे मनुष्य। ठिठुरती सर्दी की रात में मैं तुम्हारा घर गर्म रखता हूँ
चिलचिलाती गर्मी की धूप में मै तुम्हे शीतल छाया देता हूँ
मेरी आत्मा ही तो तुम्हारे मकान की छाया में समाई है.
और तुम्हारी मेज भी मेरी ही बदौलत बनी है,
जिस पलंग पर तुम रात में विश्राम करते हों,
और जिस नौका में तुम नदी पार करते हो
वह मेरी ही बदौलत बनते हैं
कुदाली के हत्थे में मै ही समाया हूँ, मकान का दरवाजा भी मुझसे ही बना है।
पालने की लकडी मुझ से ही मिली है और काठी निर्माण भी मुझसे ही होता है।
मै करूणा और दया का प्रतीक हूँ सुंदरता का एक पुष्प मनोहर।
सुनो। मेरी प्रार्थना सुनो, मुझे मत काटो।

वास्तव में यह सही है कि युगों पहले से मनुष्य और वृक्ष में परस्पर निकट सम्पर्क रहा है। कई बार अच्छाई और बुराई का ज्ञान रखने वाले वृक्षों की चर्चा आती है, जीवन का कायाकल्प कर देने वाले कल्पतरू के ज्ञान का भी कई जगह उल्लेख आता है। महान मृतात्माओं की स्मृति में भी अनेक सुन्दर वृक्ष लगाये जाते रहें हैं। दिल्ली के राजघाट में गांधी जी की स्मृति में, तथा पश्चिम बंगाल के शान्ति निकेतन में गुरू रवीन्द्र की स्मृति में कई वृक्ष लगाये गये हैं।

महापुरूष वन कुन्जों में विश्राम करके प्रेरणा व आनन्द प्राप्त करते रहे हैं। हमारे वेदों में भी पर्वतों, नदियों, शीतल, जलधाराओं, और सुन्दर वन पथों तथा मनोरम वृक्षों और सम्पन्न वनों का वर्णन है। गौतम बुद्ध को मृग–वन के एक बौद्ध वृक्ष के नीचे ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। महाकवि कालीदास का वृक्षों के प्रति जो अगाध प्रेम था, उसकी झलक 'शकुन्तला' में मिलती है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठतम उपलब्धियों से वनों की गोद में बसे ऋषि–मुनि सदैव ही वृक्षमय वातावरण से प्रेरणा व शक्ति ग्रहण करते रहे हैं।

प्राचीन भारत में पूजा अर्चना के स्थान के आस–पास वृक्ष लगाने का रिवाज था। ऐसे वृक्षों के कुंज आज तक भी बने हुए हैं। इनमें से कुछ देवदार के हैं, कुछ साल के और कुछ अन्य प्रकार के पेड़ हैं। इससे पता चलता है कि उन दिनों यह स्वीकार किया जाता था कि वृक्षों से मनुष्य के मन को शान्ति मिलती है और पवित्रता के भाव उपजते हैं।

पर क्या हम वृक्षों की मैत्री भावना का उचित सत्कार कर रहे हैं ? क्या हम उनकी 'मुझे मत काटों' प्रार्थना को भी सुनते हैं–? तब फिर क्यों उन पर कुल्हाडी चलाई जाती है ? क्यों उन्हें काटा जाता है ? क्यों उनका अंग भंग किया जाता है ? वही पेड़ जो हमारे घरों और मार्गों की शोभा बढ़ाते हैं, जो हमारे खेत, खलिहान की रक्षा करते हैं। जो शहर और गाँव के वातावरण को अधिक सौंदर्य प्रदान करते हैं। अतः पेड़ों को काटने, जलाने या उन्हें नष्ट भ्रष्ट करने का हमारा रूख बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है और यह सब कुछ कृषि और उद्योग के लिए भी जो मनुष्य की बुनियादी जरूरतें पूरी करते हैं,

हानिकारक हैं। क्या यह सब कुछ इस बात का प्रमाण नहीं है कि हम पेडों की मैत्री भावना का अनादर करते हैं और दुरूपयोग करते हैं

एक भी पेड़ कटे न हरगिज, करनी हमें रखवाली है।
हरियाली से अपना जीवन, और इससे ही खुशहाली है।
हमको पेड़ लगाना है, जनजीवन को बचाना है।
जीवन में खुशहाली का हमको दीप जलाना है।

वृक्षों का राष्ट्र की उन्नति और समृद्वि में क्या महत्व है, यह जानने के लिए उनकी मैत्री भावना को समझना जरूरी है। इस प्रकार की नासमझी के कारण ही बहुत सी सभ्यताएं इस धरातल पर से मिट गई हैं। बड़ी–बड़ी सल्तनतें और साम्राज्य बढती हुई सेना के भय से नहीं, परन्तु वृक्षों की अंधाधुध कटाई और उनके नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण समाप्त हो गये हैं, क्योंकि इससे भूमि और पानी का नाश होता है और ये दो तत्व ही मानवीय जीवन के लिए अनिवार्य है। उदाहरण के तौर पर मैसोपोटामिया पहले एक बहुत बड़ा उर्वर और समृद्ध देश था परन्तु अब वह निरा रेगिस्तान रह गया है।

इस प्रकार का खतरा भारत में आज भी मौजूद हैं। भारत में राजस्थान का रेगिस्तान भयंकर गति से बढता जा रहा है। होशियारपुर और कांगड़ा, शिवालिक (पंजाब) क्षेत्रों में, उत्तरप्रदेश में आगरा और ईटावा क्षत्रों में, बिहार के छोटा नागपुर तथा दक्षिण की नीलगिरी पहाड़ियों में रेगिस्तान के बढ़ते हुए चिन्ह देखे जा सकते हैं, यह बात जानी पहचानी है और यह हमें चेतावनी देती है फिर भी निर्दयतापूर्वक पेड़ों को काटे जाने का काम जारी है। मनुष्य की इन भूलों के कारण हरे–भरे स्थान उजाड़ भूमि में बदल गये हैं। इसलिए हम सब को मिलकर आगे आना है व पेड़ों को कटने से रोकना होगा तथा अधिक से अधिक संख्या में पेड़ लगाने होंगे जिससे हमारा देश एक उन्नतशील व समृद्ध देश कहलाये।

वृक्ष लगाकर स्वयं की, समाज की, देश की, पर्यावरण की रक्षा करें,
और वृक्ष से प्रेम, भाईचारे के गुण ग्रहण करने का प्रयास करें।

जीवन-रस

कुमारी शिप्रा नागर
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

एक दिन यूँ ही बैठे – बैठे, मैने खुद से पूछा,
– क्या है ये जीवन – रस ?

फिर मन ने कहा – चलो इसकी खोज करें,
एक रस जो, हम सबके दुखों को हरे।

खोजती रही उसे आकाश में, पाताल में,
कभी पर्वतों की गूंज में, सरोवरों के जाल में।

ओस के मोतियों में, अदृश्य होती भोर में,
अस्त होते सूर्य के प्रकाश के उस कोर में।

रात में जगमगाते तारों की छाँव में,
समुद्र तट पर लहराती लहरों के पाँव में।

सर्दियों की धूप में, बसंत की बहार में,
हृदय की पीड़ा में, प्रसन्नचित्त मलहार में।

वायु के वेग में, मेघों के प्राण में,
या सांसो से भी अधिक, प्रिय स्वाभिमान में।

भटकती रही इधर –उधर, जीवन रस की खोज में,
भारी हो चला था मन, अज्ञान के इस बोझ सें।

किंतु अब मैने ये अमूल्य ज्ञान जान लिया,
जीवन रस का रहस्य भली –भाँति पहचान लिया।

यह पवित्र जीवन रस, मुझ आत्मा में व्याप्त है,
यह सृष्टि सारी भी नही, जिसके लिए पर्याप्त है।

जीवन रस है, शक्तियों का आत्मबोध होना,
और सुकर्मों का सुगंधित, ज्ञानवर्धक बीज बोना।

यह भावों और विचारों का आत्म निर्भर अभ्यास है,
ये आंतरिक पूर्णता का शक्तिशाली अहसास है।

ये काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार से दूर है।
इन सब से उच्च, अतिइंद्रिय सुख से भरपूर है।

इस ज्ञान प्राप्ति से पूर्व, थी जीवन की गति मंद,
किंतु अब जीवन में है आनंद ही आनंद।

हिन्दी- हमारी राष्ट्रभाषा

श्रीमती गीता वोहरा
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

हिन्दी– हमारी राष्ट्रभाषा
आओ इसको करें नमन

कितनी सरल, कितनी सुगम
हर एक को यह भाती है
अ,आ, इ,ई के स्वर से
शुरू यह होती है
दोहे, छंद तथा अलंकारों से
सुशोभित यह होती है
आदरणीय, नमस्कार, भवदीय जैसे
कर्णप्रिय शब्दों से,
अपनी गरिमा का एहसास कराती है

अपनी पहचान बनाती धीरे–धीरे
पूरे राष्ट्र में छाई है
विश्व में भी संगीत से
हर दिल में अपनी जगह बनाई है।

है इसका रूप बड़ा ही विस्तृत
महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन
की कविताओं ने
इसका बोध कराया है।
अपनी लेखनी से
इसको उच्च स्तर पर पहुँचाया है

आओ, इक प्रण लें आज
इसको आगे बढ़ाएंगे
आगे आने वाली पीढ़ी को भी
इसका महत्व समझाएंगे।
कितने ग्रंथों की जननी है
यह उनको बतलाएंगे।
राष्ट्रभाषा को वास्तव में
केवल बोली से ही नहीं
अपितु
लेखन से भी राष्ट्रभाषा बनाएंगे।

हमको आगे बढ़ना है

कुमारी अंजलि दाधीच
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

हम को आगे बढ़ना है,

सबको ऊपर चढ़ना है।

आलस का अब नाम नहीं,

बेमतलब विश्राम नहीं,

कठिनाई अब नहीं सताती

चुस्ती फुर्ती सबको भाती

अब हमें नहीं ठहरना है।

हमको आगे बढ़ना है

हमें सीखना गणित व भाषा

बनें ज्ञानी सब, यह है अभिलाषा।

हमें सीखना ज्ञान–विज्ञान,

सभी पढेंगे देकर ध्यान,

परोपकारी बनेंगे तब,

दीन–बन्धु बनेंगे सब।

झूठ नहीं अब सहना है,

सदा सत्य अब कहना है।

ऐ मेरे प्यारे हिन्दवासियों,

सुनो सभी धर ध्यान,

देश बनेगा गौरवशाली

जब होगा शिक्षित हर इन्सान।

अंजलि की है यही पुकार

अच्छे बनो, हो जाओ तैयार।।

पर्यावरण

श्रीमती आफशाँ ज़ैदी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

आज प्रदूषण हर इक जन्तु पे अभिशाप है।
काटना पेड़ों का लोगों हर तरह से पाप है।।

वृक्ष धरती के हमेशा से रहे है पासबाँ।
इन के द्वारा वर्षा करता है हमेशा आसमां।।

पेड़ तो बरसात के मौसम पे इक वरदान।
आज का इन्सां इसे जाने है पर अनजान है।।

सारे भूमंडल को दूषित कर दिया मानव ने।
शहर तो बस शहर है, बचना नहीं अब गाँव ने।।

चार सू मानव को घेरे है अब पर्यावरण।
लग गया इन्सान के जीवन पे ये कैसा ग्रहण।।

इस से पहले नष्ट न हो जाये ये अपना चमन।
प्रकृति को बचाने का करो कोई जतन।।

युद्धस्तर पर लगाओं पेड़ हर स्थान पर।
आँच न आऐ तुम्हारे मान और सम्मान पर।।

जल, वायु, और सौर्यपात से जीवन मिला।
इन के नष्ट करने से क्या इन्सान का होगा भला।।

फिर से भूमंडल का आवरण बनाना चाहिये।
इस तरह सब जीव जन्तु को बचाना चाहिये।।

जिन्दगी

श्री रमाकान्त मिश्र
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

सुबह हुई भी नहीं कि हाय सांझ ढ़लने लगी
ए जिन्दगी, कोई गुरबत में भी जवान न हो।

ध्यान रखना उसे इतनी ही तवज्जो देना
जिन्दगी खेल ही रह जाए, इम्तिहान न हो।

मदद दिल खोल कर करना मगर ये याद रहे
मदद मदद ही रह जाए, अहसान न हो।

सनकी है, बूढ़ा और आदत से भी लाचार है
देखना बाप ही हो, कहीं भगवान न हो।

मुझे बुला लेना या फिर तू ही चले आना
एक मुलाकात की ख़ातिर तू परेशान न हो।

देखता हूँ कि वह पौधे लगाया करता है
जानता तो नहीं लेकिन कहीं इंसान न हो।

बूंद

श्री रमाकान्त मिश्र
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

बूंद स्वाती की गिरे सीपी में तो
मोती बने और मूल्य पाये
और केले के गिरे जो गाछ पर
कपूर बन ईश्वर की पूजा में मान पाये।
किंतु उसका क्या कि जो धरती पर गिरती
कवि नहीं करता कभी गुणगान उसका
क्योंकि मिट्टी में जो मिलती
फिर मिले क्यों मूल्य और मान कैसा ?
किंतु मुझको तो यही है दीखता
बूंद जो सीपी में पड़ती गाछ पर या
मौत ही उस बूंद के बस हाथ आई
और जो टपकी धरा पर
चाहे स्वाती की हो या कि ज्येष्ठा की
वो न है मोहताज सीपी या किसी की
मिल के धरती से गले वो मुस्कुराई
हो अमर वो,
जिंदगी बन लहलहाई।

लेखक परिचय

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून			
डॉ रवीन्द्र कुमार उप महानिदेशक विस्तार निदेशालय		श्री सुनील दत्त शर्मा सहायक महानिदेशक सांख्यिकी	
श्री राजपाल सिंह सहायक महानिदेशक मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय		श्री विजयराज सिंह रावत वैज्ञानिक – ई बी॰सी॰सी॰ प्रभाग	
डॉ. ओमकुमार वैज्ञानिक – सी जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग		डॉ. एस. के. शर्मा परियोजना प्रबन्धक स्लैम परियोजना विस्तार निदेशालय	
श्री रमाकान्त मिश्र अनुसंधान अधिकारी मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय		डॉ. आर. एस. रावत अनुसंधान अधिकारी जैव विविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग	
श्रीमती अर्चना जोशी निजी सचिव विस्तार निदेशालय		श्रीमती गीता वोहरा निजी सचिव मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय	
श्री छत्रपाल सिंह सैनी उच्च श्रेणी लिपिक प्रशासन निदेशालय			

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून			
श्रीमती जयश्री आरडे प्रमुख विस्तार प्रभाग		**डॉ. लोकोपूनी** प्रभागाध्यक्ष अकाष्ठ वन उपज प्रभाग	
डॉ. मोहम्मद यूसुफ वैज्ञानिक – एफ, प्रमुख वन कीट – विज्ञान प्रभाग		**डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी** वैज्ञानिक – ई, प्रमुख रसायन प्रभाग	
डॉ. विनय कुमार वार्ष्णेय वैज्ञानिक – ई वन व्याधि प्रभाग		**डॉ सुधीर सिंह** वैज्ञानिक – ई वन–कीट विज्ञान प्रभाग	
डॉ. एस.पी. चौकियाल वैज्ञानिक – सी वनस्पति प्रभाग		**डॉ. चरन सिंह** वैज्ञानिक – सी विस्तार प्रभाग	
श्री रामबीर सिंह वैज्ञानिक–बी विस्तार प्रभाग		**डॉ. के.पी. सिंह** वैज्ञानिक – बी वन कीट विज्ञान प्रभाग	
श्री वी.के धवन अनुसंधान अधिकारी संवर्धन प्रभाग		**श्री एस.आर. बालौच** अनुसंधान अधिकारी अकाष्ठ वन उपज प्रभाग	
श्रीमती सन्तोष गैराला अनुसंधान सहायक (आर्टिस्ट) प्रचार शाखा		**श्री विकास** अनुसंधान सहायक रसायन प्रभाग	
डॉ. राकेश कुमार वैज्ञानिक – सी रसायन प्रभाग		**श्रीमती आफशाँ ज़ैदी** अनुसंधान सहायक वन संवर्धन प्रभाग	
कुमारी शिप्रा नागर पी एच डी छात्रा रसायन प्रभाग		**श्री बाबू लाल शर्मा** अनुसंधान अधिकारी (से.नि.) काष्ठ शरीर शाखा प्रभाग	

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर			
श्री एस.आर. शुक्ला राजभाषा अधिकारी			
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर			
डॉ एम.एस.नेगी निदेशक		श्री नितिन कुलकर्णी प्रभागाध्यक्ष वन विस्तार प्रभाग	
डॉ. ममता पुरोहित अनुसंधान अधिकारी वन विस्तार प्रभाग		श्री संजय पौनीकर अनुसंधान सहायक – प्रथम वन कीट प्रभाग	
कुमारी नीतू वैश्य कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता वन कीट–विज्ञान प्रभाग			
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर			
डॉ रंजना आर्या वैज्ञानिक – ई एवं प्रमुख अकाष्ठ वनोपज प्रभाग		श्रीमती संगीता त्रिपाठी अनुसंधान अधिकारी अकाष्ठ वनोपज प्रभाग	
डॉ नवीन कुमार बोहरा अनुसंधान अधिकारी वन संवर्द्धन प्रभाग		श्री कैलाश चन्द्र गुप्ता हिन्दी अधिकारी	
श्रीमती अनुराधा भाटी पुस्तकालयाध्यक्षा		कु0 अंजलि दाधीच (सुपुत्री श्री जय प्रकाश दाधीच) विद्यार्थी	

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट			
श्री आलोक यादव वैज्ञानिक – बी पारिस्थितिकी एवं जैवविविधता प्रभाग		डॉ. वनीत जिस्टु वैज्ञानिक – बी पारिस्थितिकी एवं जैवविविधता प्रभाग	
श्री पवन कौशिक वैज्ञानिक–डी झूम खेती प्रभाग			
वन उत्पादकता संस्थान, रांची			
श्री रामेश्वर दास निदेशक		श्री संतोष कुमार सिंह एस.पी.ए यू.एन.डी.पी सैल	
श्री जितेन्द्र नाथ मिश्र एस.पी.ए यू.एन.डी.पी सैल		श्री एस.एन. वैद्य अनुसंधान सहायक – I(जी), विस्तार प्रभाग	
डॉ संजय सिंह वैज्ञानिक–डी एवं प्रभागाध्यक्ष वनस्पति, वानिकी एवं अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग			
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर			
श्रीमती पूंगोदै कृष्णन हिन्दी अनुवादक		श्रीमती आर.जी. अनिता तकनीकी सहायक	
श्री निखिलेश वी. बाचपाय (सुपुत्र श्री वी.के.डब्ल्यू. बाचपाय) विद्यार्थी		कु0 मनिषा वी. बाचपाय (सुपुत्री श्री वी.के.डब्ल्यू. बाचपाय) विद्यार्थी	

एशियाई शेर (गुजरात)

गायल (अरूणाचल प्रदेश)

कस्तूरी मृग (उत्तराखण्ड)

टाइगर (पश्चिम बंगाल)

विशाल गिलहरी (महाराष्ट्र)

पहाड़ी गीबोन (मिजोरम)

लाल पांडा (सिक्किम)

गौर (नागालैंड)

तेंदुआ (मेघालय)

भैंस (छत्तीसगढ़)

नीलगिरि तहर (तमिलनाडु)

चिंकारा (राजस्थान)

दलदली हिरण (उत्तर प्रदेश)

कश्मीरी हिरण (जम्मू और कश्मीर)

कस्तूरी मृग (आंध्रप्रदेश)

गौर (बिहार)

संगाई (मणिपुर)

झंडा ऊँचा रहे हमारा

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

सदा शक्ति बरसाने वाला,
प्रेम सुधा सरसाने वाला
वीरों को हरषाने वाला
मातृभूमि का तन–मन सारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

स्वतंत्रता के भीषण रण में,
लखकर जोश बढ़े क्षण–क्षण में,
काँपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जावे भय संकट सारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इस झंडा के नीचे निर्भय,
हो स्वराज जनता का निश्चय,
बोलो भारत माता की जय,
स्वतंत्रता ही ध्येय हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

आओ प्यारे वीरों आओ,
देश–जाति पर बलि–बलि जाओ,
एक साथ सब मिलकर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इसकी शान न जाने पावे,
चाहे जान भले ही जावे,
विश्व–विजय करके दिखलावे,
तब होवे प्रण–पूर्ण हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

– श्री श्यामलाल गुप्त पार्षद

हाथी (उड़ीसा)

राइनो (असम)

तितली मछली (लक्षद्वीप)

बारासिंहगा (मध्य प्रदेश)

हाथी (केरल)

फायरे लंगूर (त्रिपुरा)

प्रकाशित

मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग, विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
डाकघर –न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248006
भारत